संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

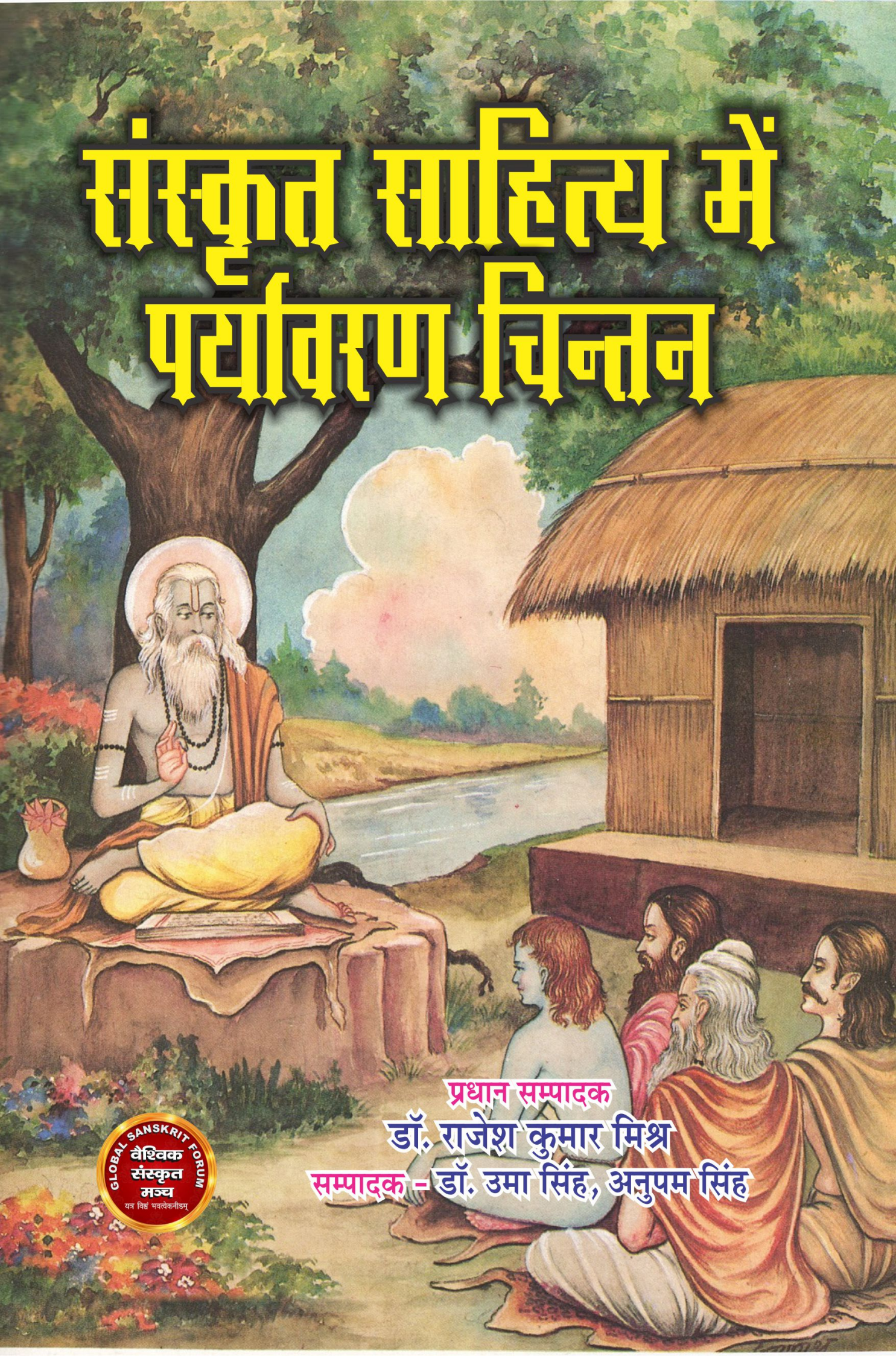

प्रधान सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सम्पादक - डॉ. उमा सिंह, अनुपम सिंह

GLOBAL SANSKRIT FORUM
वैश्विक संस्कृत मञ्च
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

GLOBAL SANSKRIT FORUM
वैश्विक
संस्कृत
मञ्च
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

पर्यावरण दिवस- 2025 के उपलक्ष्य में आयोजित
एक दिवसीय अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठी की प्रस्तुति

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

प्रधान सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सम्पादक
डॉ. उमा सिंह
श्रीमती अनुपम सिंह

प्रकाशक
ग्लोबल संस्कृत फोरम
नई दिल्ली

ISBN: 978-93-5655-509-9

प्रकाशक

ग्लोबल संस्कृत फोरम

(वैश्विक संस्कृत मञ्च)

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

प्रधान सम्पादक : डॉ. राजेश कुमार मिश्र

सम्पादक : डॉ. उमा सिंह, श्रीमती अनुपम सिंह

© ग्लोबल संस्कृत फोरम, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2026

मूल्य : 699/-

The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusion reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of Author. The publisher/Editors/Editorial Board bears no responsibility for them whatsoever.

पृष्ठ विन्यास

कृष्णा कम्प्यूटर संस्थान

दारागंज, प्रयागराज

मुद्रक

Infinity Imaging Systems

नई दिल्ली

प्रधान-संपादकीय

पर्यावरण मानव जीवन का आधार है। प्रकृति के संतुलन के बिना न तो सभ्यता का अस्तित्व संभव है और न ही भावी पीढ़ियों का सुरक्षित भविष्य। भारतीय परंपरा में पर्यावरण को केवल संसाधन नहीं, बल्कि माता के रूप में देखा गया है। यही कारण है कि हमारे शास्त्रों में वृक्ष, जल, वायु और भूमि की रक्षा को धर्म से जोड़ा गया है।

"पर्यावरणमारक्ष्यं सर्वेषां प्रयत्नतः।

कल्याणाय जनलोकः प्राणिनां देहधारिणाम्॥"

यह इस शाश्वत सत्य को स्पष्ट करता है कि समस्त प्राणियों के कल्याण हेतु पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है।

इसी विचार को केंद्र में रखते हुए पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य में एक एकदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी एवं लखनऊ मण्डल कार्यकारिणी बैठक (हाइब्रिड मोड) का आयोजन किया जाना अत्यंत प्रशंसनीय पहल है। इसप्रकार के आयोजन केवल विचार-विमर्श तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज में चेतना का संचार करते हैं और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करने की दिशा में प्रेरित करते हैं।

इस आयोजन का संयोजन वैश्विक संस्कृत मञ्च, उत्तर प्रदेश प्रान्त, महिला डिग्री कॉलेज, अमीनाबाद तथा अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों द्वारा किया जाना यह सिद्ध करता है कि संस्कृत, संस्कृति और पर्यावरण एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। संस्कृत साहित्य में निहित पर्यावरणीय दर्शन आज की वैश्विक समस्याओं- जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण और जैव विविधता ह्रास के समाधान हेतु मार्गदर्शक बन सकता है।

05 जून 2025 को अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, अलीगंज, लखनऊ में आयोजित यह कार्यक्रम विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और पर्यावरण प्रेमियों को एक साझा मञ्च प्रदान करेगा, जहाँ परंपरागत आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय से पर्यावरण संरक्षण की नई दिशाएँ खोजी जा सकेंगी।

आज आवश्यकता है कि ऐसे आयोजनों से निकले विचार केवल काग़ज़ों तक सीमित न रहें, बल्कि जन-आचरण में उतरें। वृक्षारोपण, जल संरक्षण, प्लास्टिक मुक्त जीवनशैली और प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण- यही इस पर्यावरण दिवस का वास्तविक संदेश है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि यह आयोजन केवल एक संगोष्ठी नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के बीच टूटते संवाद को पुनः स्थापित करने का सार्थक प्रयास है। यदि हम आज जागरूक हुए, तभी आने वाली पीढ़ियाँ सुरक्षित सांस ले सकेंगी।

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
महासचिव, ग्लोबल संस्कृत फोरम &
सहायक आचार्य, नव नालन्दा महाविहार
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

संपादकीय

चिरकाल से प्रकृति मानव की सहचरी व सहधर्मिणी रही है। इनका परस्पर संबंध भारतीय संस्कृति में सहजीवन का रहा है। यह सहजीवन केवल भौतिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रहा, अपितु आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित रहा है। संस्कृत साहित्य इस चेतना का अक्षय कोश है, जिसमें पर्यावरण संरक्षण न किसी आधुनिक आंदोलन के रूप में, बल्कि धर्म और कर्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत संपादित ग्रंथ का उद्देश्य इसी शाश्वत दृष्टि को समकालीन संदर्भों से जोड़ते हुए पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है।

संस्कृत वांग्मय केवल ज्ञान का स्रोत ही नहीं, वरन भारतीय समाज एवं जीवन–दर्शन का सजीव प्रकाशस्तम्भ है। मानव, प्रकृति तथा परम सत्ता के मध्य जिस प्रकार का गहन आत्मीय संबंध संस्कृत साहित्य में प्रतिष्ठित किया गया है, वह आज के पर्यावरणीय संकटों के समाधान का मूलाधार है। संस्कृत साहित्य केवल काव्य–रस, दर्शन या कर्मकाण्ड का संकलन मात्र नहीं, अपितु यह सृष्टि–संरक्षण की दिव्य दृष्टि का घोषक भी है। आज जब आधुनिक विश्व पर्यावरण संकट, जलवायु असंतुलन और जैव–विविधता के क्षय से आक्रांत है, तब संस्कृत साहित्य में निहित पर्यावरण चिंतन मानवता के लिए पथप्रदर्शक व प्रकाशस्तम्भ के रूप में उपस्थित होता है।

ऋग्वैदिक ऋषियों ने ' ***माता भूमिः* *पुत्रोऽहं पृथिव्याः*** ' के द्वारा पृथ्वी को 'माता' और मनुष्य को 'पुत्र' कहकर मानव की प्रकृति

के साथ आत्मीय सम्बन्ध की स्थापना की। वहीं पुराणों ने '***दशकूपसमा वापी, दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमो पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः॥'*** कहकर केवल काव्यात्मक नहीं, अपितु पर्यावरणीय नैतिकता का मूल सूत्र तथा पर्यावरण की महत्ता को प्रकट किया है। अथर्ववेद का 'भूमि सूक्त' पृथ्वी के संरक्षण, संतुलित उपयोग और कृतज्ञता भाव का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। यहाँ प्रकृति उपभोग की वस्तु नहीं, वरन् पूज्य सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित है।

उपनिषदों में प्रतिपादित पञ्चमहाभूत सिद्धान्त (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) मानव जीवन को प्रकृति के अविभाज्य अंग के रूप में स्थापित करता है। **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'** की भावना सम्पूर्ण जगत को ईश्वरावासित मानकर संयम, त्याग और संतुलन का संदेश देती है। यही दृष्टि पर्यावरण–संरक्षण की दार्शनिक आधारशिला है।

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में वन केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन संस्कारों की प्रयोगशाला हैं। वनवास मनुष्य को प्रकृति के समीप ले जाकर सहअस्तित्व का पाठ पढ़ाता है। कालिदास जैसे महाकवि के काव्य में मेघ, नदी, पर्वत, वन और ऋतु मानव भावनाओं के सहचर बनकर पर्यावरणीय संवेदनशीलता को सजीव करते हैं। ऋतुसंहार और मेघदूत में प्रकृति का चित्रण संरक्षणभाव को सहज ही जाग्रत करता है।

स्मृति ग्रंथों और नीतिशास्त्र में वृक्षारोपण, जलसंरक्षण और जीवदया को धर्म का अंग माना गया है। ***वृक्षो रक्षति रक्षितः*** की भावना पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का संक्षिप्त किन्तु गूढ़ मंत्र है। आयुर्वेदिक ग्रंथों में प्रकृति के अनुकूल जीवन शैली, ऋतुचर्या और

संतुलित आहार द्वारा स्वास्थ्य के साथ पर्यावरणीय साम्य की स्थापना की गई है।

"संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिंतन" विषयक संपादित यह पुस्तक न केवल अतीत की स्मृति है, अपितु भविष्य का दिशा सूचक भी है। संस्कृत वाङ्मय हमें सिखाता है कि विकास और विनाश के मध्य की रेखा संयम से खींची जाती है। आज आवश्यकता है कि हम इस शाश्वत ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में पुनर्पाठित कर, पर्यावरण संरक्षण को केवल वैज्ञानिक दायित्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक कर्तव्य के रूप में आत्मसात करें।

संस्कृत साहित्य का पर्यावरण बोध हमें यह स्मरण कराता है कि प्रकृति के बिना संस्कृति निरर्थक है और संस्कृति के बिना संरक्षण असंभव। इसी समन्वय में मानव जीवन की सार्थकता और पृथ्वी का भविष्य सुरक्षित है। संस्कृत वांग्मय में प्रकृति की शांति व संरक्षण के द्वारा संपूर्ण सृष्टि की शांति व कल्याण की कामना की गई है- **" *ॐ द्यौः शान्तिः। अन्तरिक्षं शान्तिः। पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिः। विश्वे देवाः शान्तिः। ब्रह्म शान्तिः। सर्वं शान्तिः। शान्तिरेव शान्तिः। सा मा शान्तिरेधि।"***

अर्थात् हे परमपिता परमेश्वर, आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, वनस्पतियों, सभी देवताओं, और संपूर्ण जगत में शांति हो। ब्रह्म (परम सत्य) शांति प्रदान करे, सब कुछ शांतिपूर्ण हो और वह शांति मुझे प्राप्त हो। यह एक वैश्विक प्रार्थना है जो सभी प्राणियों और प्रकृति के प्रत्येक कण में शांति की स्थापना की कामना करती है।

संपादित पुस्तक में संकलित लेख संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा को प्रकट करते हैं। विद्वान लेखकों ने शास्त्रीय संदर्भों के साथ–साथ समकालीन पर्यावरण संकटों, जलवायु परिवर्तन, वनों का विनाश, जैव–विविधता ह्रास पर संस्कृत दृष्टि से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

हमें विश्वास है कि यह ग्रंथ केवल अकादमिक विमर्श तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि पाठकों को प्रकृति-मैत्री जीवनशैली अपनाने की प्रेरणा देगा। संस्कृत साहित्य की यह शाश्वत वाणी आज के वैश्विक पर्यावरण संकट के समाधान हेतु पथप्रदर्शक सिद्ध हो सकती है। यही इस संपादकीय की आकांक्षा और इस ग्रंथ का मूल प्रयोजन है।

डॉ. उमा सिंह
अध्यक्ष, ग्लोबल संस्कृत फोरम, लखनऊ मण्डल, उत्तर प्रदेश प्रान्त
एवं सहायक आचार्या, नेताजी सुभाष चन्द्र बॉस महिला
महाविद्यालय, लखनऊ

विषयानुक्रमणिका

क्र.	आलेख	लेखक/लेखिका नाम	पृ.सं.
1.	वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चिंतन	सुधाकर त्रिपाठी	13
2.	Exploring Environmental concerns through the Vedic Texts.	Mrs Alka Malhotra	22
3.	Interrelation between Ayurveda and Environment	Dr. Sistla Sailaja	34
4.	मनुस्मृति में पर्यावरण संचेतना: एक अध्ययन	डॉ. उमा सिंह	45
5.	कालिदास कृत मेघदूतम् में पर्यावरण परिदृश्य	नीरज कुमार सोनी एवं प्रो. अर्चना	63
6.	दृश्य साहित्य में पर्यावरण चिन्तन	विनीता	71
7.	इतिहासपुराणकाव्येषु पर्यावरणचिन्तनम्	Dr. R.Seshadri Dr. R. Bharanidharan	80
8.	वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण	ममता	93
9.	वैदिक वाङ्गय में पर्यावरणीय संचेतना	डॉ. शैल वर्मा	107
10.	संस्कृत वाङ्मय : पर्यावरण संरक्षण एक चिन्तन	चन्दन यादव	114
11.	रामायण में पर्यावरणीय चिंतन	खुशबू प्रजापति	123
12.	ज्योतिषशास्त्रीय दार्शनिक-चिन्तन पद्धति में पर्यावरण संरक्षण विषयक चेतना और भारतीय ज्ञान परम्परा का सन्दर्भगत विशिष्ट दृष्टिकोण	डॉ. राजीव रंजन	130

13.	भासकृत 'प्रतिमानाटकम्' का पर्यावरणीय अध्ययन	अवंती अनिल वाडेकर & डॉ. अनिरुद्ध अशोकराव मंडलिक	145
14.	शाक्तदर्शनेषु पर्यावरणम्	डॉ. (श्रीमती) भवानी रामचंद्रन	153
15.	वाल्मीकि रामायण में पर्यावरणीय संचेतना व उसकी आधुनिक प्रासंगिकता	डॉ तृप्ति श्रीवास्तव	162
16.	वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिंतन	डॉ. सुलक्षणा त्रिपाठी	171
17.	भागीरथी दर्शनम् महाकाव्य के आलोक में पर्यावरण संरक्षण	श्रीमती अनुपम सिंह	177
18.	वेदों में पर्यावरण चिंतन: एक वैदिक दृष्टिकोण	डॉ. निरुपमा पाठक	187
19.	संस्कृत साहित्य में पर्यावरणीय दृष्टिकोण	जिनेन्द्र भिलवडे	198
20.	जैन दर्शन में पर्यावरण चिंतन की अवधारणा	सुनयना जैन	215
21.	वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिन्तन- एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक	226
22.	अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक पर्यावरणीय अध्ययन	सर्वजीत रावत	235
23.	Green Verses: Ecocritical Discourses in Indian English Poetry	Prof. (Dr.) Rajeev Yadav	244
24.	Role of vāyu (the air), jala (the water), deśa (the land) and kāla (the time or seasons) in development and management of epidemics as per Carakasaṃhitā- A narrative review	Dr. Pallavi Dattatray Nikam	253

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चिंतन

सुधाकर त्रिपाठी
शोधार्थी, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध-सार

वैदिक वाङ्मय में संहिता से लेकर उपनिषद् पर्यन्त विस्तृत वैदिक ज्ञान परम्परा में पर्यावरण की परिशुद्धता का विशेष महत्त्व है। समग्र वैदिक वाङ्मय पर्यावरणीय चेतना से ओत-प्रोत है। मुख्यतः यज्ञादि कर्म से सम्बद्ध विषय का प्रतिपादन करनें वाले इस वैदिक साहित्य में प्रकृति में देवत्व भाव का तादात्म्य स्थापित करके उसकी अनेंक स्थलों पर स्तुतियाँ की गयी हैं और इस देव स्वरूपा प्रकृति की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए यज्ञ प्रक्रिया का विधान किया गया है। यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि हमारे प्राचीन ऋषि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कितनें सजग और प्रयत्नशील रहते थे। प्राचीनकाल में ऋषियों, मनीषियों के द्वारा वैदिक मंत्रों से गुञ्जायमान यज्ञीय क्रियाओं से सुरभित सम्पूर्ण परिवेश में जब तक यह प्रक्रिया निर्बाध गति से चलती रही तब तक पर्यावरण में किसी विशेष प्रकार के प्रदूषण के लिए कोई स्थान नहीं था परन्तु आज आधुनिक समय के वैज्ञानिक व औद्योगीकरण के इस समय में उत्पन्न वैदिक संस्कृति के कमजोरी के कारण जीवन अनियमित और अनियन्त्रित होता जा रहा है। सम्पूर्ण प्रकृति में पर्यावरण असन्तुलन के रूप में सर्वत्र प्रदूषण व्याप्त है। यही आज भयावह चुनौती के रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित है। अतः पर्यावरण के प्रति सचेत रहने से ही प्राणिमात्र का कल्याण सम्भव है। हमारे वैदिक ऋषियों ने हमें मानव कल्याण ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणी जगत के लिए जो उपदेश दिए हैं उनके प्रति हमें सदैव कृत संकल्पित रहने की आवश्यकता है।

बीज शब्द- परिशुद्धता, चेतना, ओत-प्रोत, समग्र, अनुकूलता, परिचायक, मनीषी, सजग, प्रयत्नशील, गुञ्जायमान, निर्बाध, औद्योगीकरण, कृत संकल्पित

प्रस्तावना

पर्यावरण शब्द परि+आङ् उपसर्ग पूर्वक वृञ् धातु से ल्युट् प्रत्यय के संयुक्त करनें पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है-

"हमारे चारों ओर का विस्तृत आवरण"

मन में विचार आता है कि इस चारों और फैले आवरण का निर्माता कौन है। इस विचार की शान्ति ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त के इस मंत्र से हो जाती है कि जिसमें प्रजापति को इस जगत का प्रथम सृष्टिकर्ता माना गया है। वही इस समग्र जगत के धारक हैं-

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ऋग्वेद- 10.121.1

हमारे वैदिक वाङ्मय में अनेक मंत्र ऐसे हैं जो पर्यावरण संरक्षण से जुड़े हुए हैं। इन मंत्रों में उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण पृथ्वी के प्रति सम्मान दिया गया है और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनें का आवाहन किया गया है वो आदरणीय है। जैसै अर्थववेद में पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकार करते हुए आदर भाव प्रकट किया गया है और उसकी रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य बताया गया है-

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।

अथर्ववेद- 12.1.12

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। ऋग्वेद में वृक्षों को संरक्षित रखनें की प्रार्थना की गयी है- **वृक्षो अस्तु न: सन्तु।** अर्थात् हमारे पेड़ पौधे हमेशा हरे भरे रहें।

यजुर्वेद में सभी प्राणियों के प्रति सहृदयता व्यक्त की गयी है। सभी प्राणियों, जीवों और पेड़ पौधों के प्रति संतुलन, पर्यावरण संरक्षण के लिए परमावश्यक है-

मित्रास्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

यजुर्वेद *36.18*

अर्थववेद की ऋचाएँ पृथ्वी के दोहन के लिए निषेध करती हैं-

शिला भूमि रश्मा पांसु सा भूमि संधृता घृता।
तस्यै हिरण्य वक्षसे पृथिव्या आकरं नम:।।

शिला, भूमि, धूल और पत्थर इनके रूपों को पृथ्वी धारण करती है। भली प्रकार सुवर्ण की खान को अपनें वक्षस्थल पर धारण करनें वाली पृथ्वी को मैं प्रणाम करता हूँ।

वेदों के अनुसार वृक्ष और वनस्पति पर्यावरण संरक्षण के लिए परमावश्यक है वृक्षों को देव स्वरुप मानकर वैदिक ऋषियों ने इन वृक्षों की अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कि हैं-

नमो हिरण्यं बाहवो सेनान्ये दिशां च पतये नमो।
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेषेभ्य: पशूनां पतये नमो।।

यजुर्वेद *16.17*

पर्यावरण के सन्तुलन में पीपल के वृक्ष की अहम भूमिका रहती है इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं को पीपल का वृक्ष कहते हुए कहते हैं कि वृक्षों में मैं पीपल हूँ।

अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां गीता। 10.16

क्योंकि यह पर्यावरण की परिशुद्धता और संरक्षण का ही संकेत है। इतना ही नहीं पीपल के वृक्ष को पर्यावरण परिशुद्धता हेतु प्रमुख माना गया है इसीलिए इसके प्रति आदरभाव समर्पित करते हुए स्कन्दपुराण में भी कहा गया है कि-

मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु: शाखायां महेश्वर:।
पत्रे पत्रे तु देवानां वृक्षराज नमोऽस्तु ते।।

स्कन्दपुराण अध्याय- *9*

पीपल वृक्ष के मूल में ब्रह्मा निवास करते हैं और छाल में विष्णु, शाखाओं में देवाधिदेव महादेव तथा पत्ते-पत्ते में विभिन्न देवगण निवास करते हैं।

वेदों में वृक्ष लगाना परमावश्यक मानकर वृक्षारोपण का स्पष्ट आदेश दिया गया है-

वनस्पति वन आस्थापयध्यम्।

ऋग्वेद- 10.101.11

जल तत्त्व

जल की सुरक्षा एवं जल के संरक्षण का आदेश ऋग्वेद में मिलता जहाँ पर जल देवता से प्रार्थना कि जा रही है कि हे जल देवता! आप हम पर कृपा करें, आप हमें जीवन शक्ति दे, आप हमें शक्ति प्रदान करें-

आपो हि स्था मयो भुव: ता न ऊर्जे दधातन्। महे रणाय चक्षसे।
यो व: शिवतमो रस: तस्य भाजयतेह न: उशतीरिव मातर:।

ऋग्वेद- 14.1

यह मंत्र जल तत्त्व के महत्त्व और शुद्धता को दर्शाता है। यह मंत्र जल को एक शक्ति और आशीर्वाद का स्त्रोत मानता है।

अग्नि तत्त्व

हमारे जीवन में अग्नि का विशेष महत्त्व है इस कारण अग्निदेव से कल्याणकारी शुभकामनाएं की गयी है। पर्यावरण स्वच्छता हेतु अग्नि देव से अनेक प्रार्थनाएं करते हुए उसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है -

स: न: पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव सचस्व: न स्वस्तये।

ऋग्वेद- 1.1.9

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्
होतारं रत्नधातमम्। *ऋग्वेद-* 1.1.1
श्रद्धां मेधां यश: प्रज्ञां विद्यां पुष्टिं श्रियं बलं
तेज आयुष्यारोग्यं देहि मे हव्यवाहन।। *लौगाक्षि स्मृति*
पय: पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे
पयोधा: पयस्वती: प्रदिश: सन्तु मह्यम् *यजुर्वेद-* 18.36
अग्निर्देवता वातो देवता- *यजुर्वेद* 14.20
अग्रणीर्भवतीति अग्नि:। निरुक्त 2.5

पर्यावरण को संरक्षित रखनें के लिए प्रकृति तथा मानव का उचित समीकरण अत्यावश्यक है। हमारे वेद के मंत्रों में उल्लेख है कि वनस्पति जगत के बिना अन्य जीवन धारियों की उत्पत्ति ही सम्भव नही-

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

यजुर्वेद- *3.49*

वायु तत्त्व

वायु का पर्यावरण की परिशुद्धता तथा हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि वायु द्वारा ही श्वास-प्रश्वास कि क्रियाएँ सम्भव होती है। ऋग्वेद में वायु के लिए विश्वभेषज् शब्द का प्रयोग किया गया है-

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रप:
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत आयसे।

ऋग्वेद- 10.137.3

वैदिक वाङ्मय में अन्य स्थलों पर भी पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। जैसे वायु को परिशुद्ध कर वातावरण परिष्कृत करने हेतु यज्ञ पद्धति को अपनाना। इस यज्ञ प्रक्रिया के द्वारा प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने, प्रकृति को नुकशान न पहुचानें और उसके संरक्षण के लिए निरंतर प्रयास किये गये। क्योंकि यज्ञ वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बनाया जा सकता है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा वायुमंडल की पवित्रता विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा दीर्घायु की प्राप्ति सम्भव होती है। यज्ञ के द्वारा भू-प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण को दूर किया जा सकता है। यज्ञ वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वायुमंडल में आक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड का संतुलन बना रहता है और जिसके परिणाम स्वरूप हमारा पर्यावरण परिशुद्ध हो जाता है। इसीलिए यज्ञ को हमारे पूर्वजों ने संसार की सृष्टि का आधार बिन्दु कहा है-

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि:।

अथर्ववेद- 9.15.14

भूमि पर्जन्या:जिवन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नय:।

अथर्ववेद- 1.164.51

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:।
यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो यज्ञ: कर्म समुद्भव:।।

गीता- 3.14

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्टा पुरोवाचि प्रजापति:।
अनेन प्रविष्यध्वमेषं वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

गीता- 3.10

यहाँ तक की वैदिक शान्ति पाठ में पर्यावरण को सुरक्षित कर सुखमय एवं शान्तिमय जीवन जीनें का सन्देश दिया गया है-

ॐ द्यौ: शान्तिरन्तरिक्ष शान्ति:,पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति:। वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा:, शान्तिर्बह्मशान्ति, सर्व शान्ति शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि।। ॐ शान्ति:, शान्ति:, शान्ति: सर्वारिष्ट सुशान्तिर्भवतु

यजुर्वेद- 36.17

निष्कर्ष:-

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण को मुख्यतः के दो भागों में विभाजित किया गया है- आभ्यंतर (आध्यात्मिक) और बाह्य (भौतिक)। इसमें आभ्यंतर (आध्यात्मिक) पर्यावरण के शुद्धिकरण पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि वायु पुराण के अनुसार हमें बाह्य और आभ्यंतर पवित्र रहने की शिक्षा प्रदान की गई है

स बाह्याभ्यन्तर: शुचि:

वायुपुराण- 33.6

यदि हम बाहर और अन्दर से पवित्र नहीं है तो पर्यावरण स्वच्छ करनें की चर्चा परिचर्चा यथार्थ रूप न होकर केवल एक आडम्बर प्रतीत होगा, क्योंकि हमारी आन्तरिक अति महत्वाकांक्षाएं

ही हमारे सम्पूर्ण बाह्य (भौतिक) पर्यावरण को अधिक प्रदूषित कर रही हैं। जिसके फलस्वरूप हम सभी आधुनिकीकरण में संलिप्त होते जा रहे हैं और हम पेड़ के जंगलों की जगह ईटों के जंगल तैयार करनें में निरन्तर लगे हुए हैं। जिसका दुष्परिणाम प्रकृति का कोप भाजन बनना पड़ रहा है। यदि हमारा आन्तरिक (आध्यात्मिक) पर्यावरण परिशुद्ध हो तो हमें पचास रूपये के पेड़ को लगानें के लिए अधिक चिंतन नहीं करना पड़ेगा। पर आज विडम्बना यह है कि हम पचास रूपये के पेड़ को लगानें में तो सोचते विचारते हैं पर पचास हजार की ए.सी. लगानें में किञ्चित् मात्र का भी चिंतन नही करतें जो हमारे पर्यावरण की शुद्धता के लिए अधिक हानिकारक है।

इतना ही नहीं हम सुनते और पढ़ते आए हैं कि प्राचीन समय में ऋषियों और मुनियों के आश्रम में सिंह और मृग एक साथ पानी पीते और साथ-साथ रहते थे। पर ऐसा कैसे सम्भव होता था क्या हमनें इस तथ्य पर कभी चिंतन किया। अगर गहराई से चिंतन करें तो पायेगें की वहाँ का पर्यावरण बाह्य और आभ्यन्तर परिशुद्ध था, वहाँ का परिवेश परिष्कृत था। क्योंकि वहाँ आध्यात्मिक और भौतिक पर्यावरण परिशुद्धता स्थापित थी। इसीप्रकार यदि हम अपनें आन्तरिक पर्यावरण को परिशुद्ध बनाए तो आज दिनो-दिन बढ़ती जा रही आतकंवादी गतिविधियों के फलस्वरूप जो पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है उससे हमें शान्ति मिल सकेगी और आपसी वैमनष्यता भी अधिक सीमा तक दूर हो सकेगी और सदभाव, एकता की स्थापना होगी फलतः सभी आपस में मिलजुल कर रह सकेगें। पर इसके लिए परमावश्यक है कि हमें अपनें पंच कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश) के साथ पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश तत्त्व) को स्वच्छ व परिष्कृत रखते हुए अपनें आन्तरिक (आध्यात्मिक) पर्यावरण को परिशुद्ध करनें की जिसके फलस्वरूप हमारा बाह्य (भौतिक) पर्यावरण स्वत: परिशुद्ध हो जायेगा। क्योंकि किसी भी कार्य को करनें के लिए हमारे मन का संकल्प शुद्ध होना चाहिए तभी हम उस कार्यों को स्थूल रूप में

साकार रूप देने में सफल हो सकते हैं इसीलिए हमारे वैदिक वाङ्मय में मन को पवित्र भावों से युक्त रहनें के लिए प्रार्थना की गई है-

तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु

यजुर्वेद- *34.1*

जब हमारा मन शुभता युक्त होगा तो तभी हमारी भारतीय संस्कृति की आदर्श संकल्पना- सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामयाः परिपूर्ण हो सकेगी।

अत: पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करनें के लिए हमें एकबार पुन: महर्षि दयानंद सरस्वती जी के उस कथन का अवश्य स्मरण करना होगा कि ***"वेदों की ओर लौटो"*** हमें वेदों की शरण में जाना होगा क्योंकि हमारे पूर्वजों ने पर्यावरण के महत्त्व को बहुत पहले ही समझ लिया था और उन्होंने वेदों में पर्यावरण की रक्षा का सन्देश दिया है कि आप अपना भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना चाहते हो तो प्रकृति के नियमों तथा संसाधनों की रक्षा करते हुए इसका सदुपयोग करो यही पहला धर्म है। **तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्**। ऋग्वेद 10.90.16

मानव आज जो आधुनिकीकरण के इस युग में अपनें आस्तित्व को भूलता जा रहा है उसे एक बार पुन: स्मरण में लाना होगा और पर्यावरण संरक्षण की बातें जो वेदों ने हमारे समक्ष सर्वप्रथम प्रस्तुत कि हैं उनके प्रति हमें निरन्तर जागरूक रहते हुए उन्हें स्वीकार करना होगा। तभी हमारा पर्यावरण सन्तुलन बना रहेगा और इसके सन्तुलित रहने से हम सभी सुरक्षित रह सकेगें।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

- **ऋग्वेद**
- यजुर्वेद
- अथर्ववेद
- निरूक्त
- भगवद्गीता
- वायुपुराण
- स्कन्दपुराण
- लौगाक्षि स्मृति

- वैदिक साहित्य का इतिहास, प्रो. पारसनाथ द्विवेदी
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि
- वैदिक साहित्य और संस्कृति का समीक्षात्मक इतिहास, प्रो.ओम प्रकाश पाण्डेय
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास, पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय
- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी

Exploring Environmental concerns through the Vedic Texts

Mrs Alka Malhotra
Graphologist and Numerologist
Sahil Kothari and Training Institute

Focus: Explore ecological awareness, sustainability, and reverence for nature in Vedic texts.

Objectives:

Identify environmental principles in Vedic literature.

- Analyse how Vedic philosophy promoted ecological harmony.
- Compare ancient environmental ethics with modern sustainability concepts and.
- Adapting Vedic times environmental principles can make current living sustainable

1. Introduction

Environmental degradation has emerged as one of the most pressing challenges of the 21st century, prompting scholars and policymakers alike to seek sustainable models rooted not only in science but also in culture, ethics, and philosophy. While modern environmental discourse often centers around technological and policy solutions, traditional knowledge systems—especially those found in ancient texts—offer alternative paradigms for understanding and engaging with the natural world. Among these, the Vedic corpus of ancient India stands out for its profound ecological sensibility and spiritual vision of nature.

a) The Vedas, composed between 1500 and 500 BCE, represent some of the oldest religious and philosophical texts in human history. Far from being abstract or purely metaphysical, these texts offer a rich tapestry of hymns, rituals, and cosmological reflections that portray nature not as inert matter but as a living, divine reality. The elements—earth (*Prithvi*), water (*Apah*), fire (*Agni*), air (*Vayu*), and space (*Akasha*)—are consistently deified

and celebrated as manifestations of the sacred. The concept of *ṛta* (cosmic order) underpins this worldview, emphasizing harmony, balance, and ethical duty toward all forms of life.

b) This paper investigates the environmental thinking embedded in Vedic literature, focusing on how its philosophical and ritualistic frameworks align with modern sustainability principles. By analyzing key texts and verses, the study aims to bridge ancient ecological ethics with contemporary environmental challenges.

2. Ecological Themes in Vedic Texts

a) Rigveda: Cosmic Order and Elemental Reverene

The Rigveda, the oldest of the four Vedas, introduces the concept of Rta- a cosmic order that governs both the physical and moral universe. This principle underpins ecological balance, emphasizing the interdependence of natural forces. Verses stated below emphasis on the Ecological aspects of the Earth.

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥

-1.164.33

- *The sky is my nurturer and giver, the navel of the earth is my friend to me and this vast earth is my mother. Between the two raised characters is the space-like vagina, where the father of the sky transfusions the womb of the mother in the form of the earth located far away.*
- **मोघम् अन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यम् ब्रवीमि वध इत् स तस्य।**
  नार्यमणम् पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।।

-10.117.6

- *A person who does not have a feeling of charity in his mind receives food in vain. The food of such a person is like his death. He who neither strengthens the gods nor feeds the sakha, such a person who eats himself is only a sinner.*

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। -10.191.4

- *O hosts and priests! Your business is the same. Your hearts are the same and your mind is the same. You guys be organized in uniform.*

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥

-6.5.5

- *Balputra and immortal agni! The host who serves you through yajna, samidha, hymns and words is best known among men and adorns with wealth and bright food.*

Elemental deities like Agni (fire), Vayu (air), and Surya (sun) we are not only wor` shipped but also understood as vital forces sustaining life. The hymns reflected a deep respect for the cyclical rhythms of nature, encouraging humans to live in harmony with these forces.

b) Atharvaveda: Earth Hymns and Forest Wisdom

The Atharvaveda contains some of the most explicit ecological content in Vedic literature. The Prithvi Sukta (Book 12, Hymn 1) is a hymn referred/dedicated to Earth, celebrating her fertility, diversity, and sanctity. It describes Earth as the mother of all beings and calls for her protection through ethical living and restraint.

- यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥

-12.1.12

- *O Earth! Place me in the middle of your navel, the substances that strengthen everyone's bodies. Bhumi is my mother and Megh is my father. Both of them complete the yajna karma.-*

Emphasizes the sacred bond between humans and Earth.

- गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु। बभ्रुं
कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥

-12.1.11

- *O earth! May your snow-covered mountains and dense forests give us happiness. I should be*

established on the earth safe by Indra Dev in such a way that I am neither destroyed nor will I be familiar with anyone.→ Celebrates the diversity and sanctity of natural landscapes.

- अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु। अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥
- *Water holds agni. There is agni in the earth. There is agni in water, in men, in my ashwadi animals*- Fire (Agni) is omnipresent in all life forms and elements.

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥
-12.1.3

- *This earth is adorned with the water of the oceans, rivers, springs and lakes. Agriculture is done on this earth, from which food is produced. With that food, the living human beings, animals, etc. of the world get satisfaction. May this kind of earth establish us in the region where juicy fruits are produced*

The above stated verses establish a profound and spiritual connection between humans and the planet. The text also discusses the importance of forests, medicinal plants, and water purity, reflecting an early awareness of biodiversity and ecosystem services.

c) Yajurveda: Environmental Responsibility

The Yajurveda emphasizes natural forces as a worship medium in Indian society.

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन्
द्रविणोदाः॥ ."

-12.2

The sun travels with the same mind and day. These gods suitably nourish a baby with a completely different form from each other. The sun shines between heaven and earth. That is why the wealth-giving devas hold the agni.- Links ethical living with environmental stability.

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

-40.1

- **"Isha vasyam idam sarvam yat kincha jagatyam jagat."**

Whatever is in this root conscious world is by the grace of God. Enjoy the one forsaken by that God. Don't covet too much. Whose wealth all this belongs to? (i.e. of none other than God Encourages reverence for all forms of life.

d) Upanishads: Unity of Life and Deep Ecology

The philosophical Upanishads explore the unity of all existence through the Brahman- Atman principle. The Isha Upanishad begins with the verse: "Isha vasyam idam sarvam"- "All this universe is pervaded by the Divine." This metaphysical view fosters a deep ecological ethic, where harming nature is equivalent to harming oneself.

e) Vṛkṣāyurveda: Tree Care and Afforestation

The Vṛkṣāyurveda, a classical Sanskrit treatise on arboriculture, outlines methods for planting, nurturing, and protecting trees. It promotes afforestation as a sacred duty, equating the planting of a tree with the birth of ten sons. This text reflects a practical and spiritual approach to environmental conservation.

f) Environmental Reverence in Ancient Indian Epics:

I. Ramayana: Nature as Dharma's Companion

The Ramayana is a profound ecological text where nature is not a backdrop but a living participant in the journey of dharma.

- Forest as Sacred Space: Rama's exile in Dandaka and Panchavati forests reflects nature as a place of spiritual growth and ethical living.
- River Symbolism: Rivers like Sarayu, Ganga, and Yamuna mark transitions and purification.
- Animal Allies: Hanuman (vanara), Jatayu (vulture), and even squirrels help Rama, symbolizing interspecies cooperation.
- Sustainable Living: Rama, Sita, and Lakshmana live minimally, taking only what nature offers.

- Sacred Trees: Ashoka, Banyan, and Peepal trees are revered; Sita finds solace under the Ashoka tree.

II. Mahabharata: Dharma and Ecological Ethics

The Mahabharata embeds environmental consciousness within its spiritual and political narratives.

- Vana Parva & Aranyaka Parva: Pandavas' forest exile emphasizes sustainable living and respect for flora and fauna.
- Anushasana Parva (Chapter 58): Praises tree planting and water reservoir construction as acts of piety.
- Bhishma's Counsel: Advises Yudhishthira not to cut fruit-bearing trees and to protect forests.
- Ecological Symbolism: {1}Ganga as Bhishma's mother.{2}Draupadi born from fire.{3}Pandavas born from elemental deities (Air, Fire, Dharma, etc.).
- Khandava Forest Episode: A cautionary tale on deforestation and ecological imbalance.

1) **Methodology**
   a) This study adopts a qualitative, interdisciplinary methodology that combines:- Textual analysis of selected hymns from the Rigveda, Yajurveda, Atharvaveda, and Upanishads;- Interpretive hermeneutics to understand symbolism and deeper meanings;- Comparative analysis with contemporary environmental ethics and sustainability principles.
   b) Primary texts were studied using reliable Sanskrit-English translations by scholars like Ralph T.H. Griffith, Max Müller, and Swami Prabhavananda. To ensure contextual understanding, cross-references were made to classical commentaries (e.g., by Sayana) and modern Vedic scholars.
   c) The study focuses on identifying recurrent ecological motifs, cosmological patterns, and ritual practices that point to an environmentally conscious worldview. These are then categorized thematically to explore their contemporary relevance.

2) Thematic Analysis

   a) **Deification of Natural Elements:** In the Rigveda, natural elements are not inert resources but divine

entities. The Earth (*Prithvi*), Water (*Apah*), Fire (*Agni*), Wind (*Vayu*), and Sky (*Dyaus*) are revered through hymns and rituals. For example, Rigveda 1.164 declares: "Truth is one, the sages call it by many names- they call it Agni, Yama, Matarisvan." This deification promotes a reverential attitude, discouraging exploitation and emphasizing stewardship.

b) **The Concept of ṛta: Cosmic and Ecological Order** *ṛta*, the principle of cosmic order, implies that everything in the universe- from stars to rivers- functions in harmony. Human actions must align with *ṛta* to maintain ecological and spiritual balance. Violating *ṛta* through greed, pollution, or violence disrupts not just society but the natural world.

c) **Ahimsa and Interdependence:-** Although more elaborated in later traditions, the seeds of *Ahimsa* (non-violence) are present in the Vedas. The Atharvaveda offers hymns for peace among plants, animals, and elements: "May there be peace in the sky, peace in the atmosphere, peace in the eart." This reflects a biocentric ethic that values all forms of life and promotes coexistence.

d) **Yajnas and Ecological Balance:-** Vedic fire rituals (*Yajnas*) symbolize the cyclical exchange between humans and nature. Offerings to fire are meant to return blessings through rain, crops, and fertility. While the literal performance of such rituals may not be ecologically viable today, the underlying principle of reciprocity with nature is still relevant.

e) **Sacred Groves, Trees, and Rivers:-** The Vedas and later texts hold trees like the Peepal, Banyan, and **Ashvattha** as sacred. Rivers such as the Ganga and Saraswati are not just physical water bodies but goddesses. This sacralization of landscapes fosters a protective sentiment that can be instrumental in conservation.

3) <u>Relevance to Modern Sustainability</u>

Vedic principles offer practical insights for contemporary

environmental challenges:

Area	Vedic Practice	Modern Application
Agriculture	Cow-based manure, seasonal sowing	Organic farming
Water	River worship, purification rituals	Clean water initiatives
Forests	Tree worship, planting ethics	Afforestation and biodiversity
Energy	Solar reverence, Surya Namaskar	Renewable energy
Lifestyle	Minimalism, vegetarianism	Low carbon footprint

4) <u>Challenges and Opportunities</u>

6.1 Challenges

Environmental Concerns Due to Vedic Rituals

a) Resource- Intensive Rituals

i. Yajnas (Fire Rituals): Require large quantities of ghee, wood, and other offerings, which can contribute to deforestation and air pollution if not sourced sustainably.

ii. Air Quality Impact: While some claim yajnas purify the air, excessive or improperly conducted rituals may release particulate matter and carbon emissions.

b) Water Pollution from Ritual Immersions

- **Idol Immersions**: Festivals like Ganesh Chaturthi involve immersing idols in rivers, often made from non-biodegradable materials and toxic paints.
- **Contradiction to Vedic Values**: The Rigveda reveres rivers like Sarasvati as sacred and life-giving, emphasizing their purity and ecological importance.

c) Overharvesting of Sacred Plants

- **Demand for Ritual Materials**: Plants like Tulsi, Sandalwood, and Bael leaves are used extensively, sometimes leading to unsustainable harvesting.

- **Loss of Biodiversity**: Vedic texts like the Atharvaveda praise trees as divine beings, urging their protection and sustainable use.

d) Animal Exploitation vs. Reverence

- **Contradictory Practices**: While cows are revered in the Atharvaveda for their ecological role, modern dairy practices often involve industrial farming, which harms the environment.
- **Vedic Ideal**: Promotes organic agriculture using cow dung and urine, reducing chemical fertilizer use.

e) Use of Non-Eco-Friendly Materials

- **Modern Ritual Adaptations**: Use of plastic, thermocol, and synthetic fabrics in puja contradicts the Vedic ethos of natural simplicity.
- **Vedic Principle of Ahimsa**: Encourages non-harm to all beings and nature, aligning with eco-friendly living.

f) Urbanization and Ritual Pollution

- **Space Constraints**: Performing rituals in urban settings often leads to improper disposal of materials.
- **Noise Pollution**: Loudspeakers and firecrackers used during rituals disturb both humans and wildlife

6.2 Opportunities

Vedic philosophy- a detailed exploration of how ancient Vedic wisdom aligns with and enriches contemporary ecological thought:

a) Nature as Sacred and Divine

- **Vedic View:** Nature is not merely a resource but a sacred reality. Rivers, mountains, trees, and animals are deified- Agni (fire), Surya (sun), and Vayu (wind) are worshipped as divine forces.
- **Modern Parallel:** This reverence fosters ecological ethics similar to deep ecology, which values nature intrinsically, not just for human use.

b) Interconnectedness of All Life

- **Concept of Rta (Cosmic Order):** Rta represents the universal law of balance and harmony. It teaches that all beings are part of a cosmic system and must live in equilibrium.

- **Modern Parallel:** Mirrors systems thinking in ecology, where ecosystems are seen as interconnected webs of life.

c) Minimalism and Sustainable Living

- Vedic Teachings: Texts like the Isha Upanishad and Yajurveda advocate minimal consumption and renunciation of greed:
- "Enjoy life with renunciation; do not covet others' possessions." (Yajurveda 40.1)
- **Modern Parallel:** Aligns with sustainability principles like reducing ecological footprints and promoting circular economies.

d) Tree and Forest Conservation

- **Vedic Practices:** Trees are considered sacred. The Atharvaveda praises forests and medicinal plants as divine, and the Vṛkṣāyurveda equates planting a tree to having ten sons.
- **Modern Parallel**: Supports afforestation, biodiversity conservation, and recognition of ecosystem services.

e) Water and River Protection

- **Sacred Rivers:** Rivers like Sarasvati and Ganga are worshipped and revered for their life-giving properties.
- **Modern Parallel:** Inspires initiatives like *Namami Gange*, aimed at cleaning and conserving river ecosystems.

f) Animal Welfare and Agriculture

- **Cow Reverence:** Cows are seen as ecological assets-providing milk, manure, and agricultural support.
- **Modern Parallel**: Promotes organic farming and reduces reliance on chemical fertilizers.

g) Celestial Awareness and Climate

- **Planetary Worship:** The Navagraha system reflects awareness of celestial influences on Earth's climate and agriculture**.**
- **Modern Parallel:** Echoes scientific studies on solar cycles, lunar tides, and planetary impacts on ecosystems.

h) Ahimsa and Environmental Ethics

- **Non-Violence Principle:** Ahimsa extends to all living beings, promoting compassion and protection of biodiversity.
- **Modern Parallel:** Resonates with animal rights, veganism, and conservation ethics**.**

i) Educational and Policy Integration

- **Vedic Inspiration for Policy:** Ancient texts like the Mahabharata and Ramayana emphasize forest protection and ecological balance.
- **Modern Application:** Used to inspire environmental laws, community-driven conservation, and eco-education.

5) Conclusion

a) The Vedic worldview presents a deeply ecological philosophy, one in which nature is not an external object to be dominated, but a sacred and interdependent system governed by ṛta- the principle of cosmic order. Vedic literature demonstrates a sophisticated environmental consciousness that resonates strongly with contemporary sustainability discourses.

b) While the Vedic period did not face the scale of environmental crises we see today, the ethical and spiritual approach to nature it espouses provides timeless insights. It challenges the anthropocentric paradigms of modernity and encourages a shift toward biocentrism, reverence, and reciprocity with the natural world.

c) Rather than viewing Vedic environmentalism as prescriptive in a literal sense, this study advocates for interpreting it as a cultural philosophical framework- a foundation upon which ecologically responsible thought and action can be built. As the global environmental crisis deepens, returning to such ancient models of sacred ecology may offer not only philosophical clarity but moral direction in fostering a sustainable future.

References:-

- Griffith, Ralph T.H. (Trans.), *The Hymns of the Rigv eda*.
- Environmental Discourses in Vedic Period

- Ecological Ethics of Ancient India.
- https://vedsearch.org/search/yajurved/40.1
- https://vedsearch.org/search/rigveda
- https://sacred.text
- https://timesofindia.
- Study Material of SKTC Institute .
- Guidance by my Mentor, Mr. Siddharth .S. Kumar.

Interrelation between Ayurveda and Environment

Dr. Sistla Sailaja
Sr. Lecturer, Keshav Smarak Junior College, Hyderabad

(The saying captures the reciprocal relationship between humans and forests)

Abstract:

Ayurveda, the ancient Indian science of life and well being has attracted the globe with the holistic approach to medicine. For more than 5,000 years the tradition has emphasized the interconnectedness of everything including the environments major impact on human well being unfortunately, the environment is depleting day by day which is leading to a significant threat to the delicate balance.

Ayurvedic philosophy is an integral part of sustainability which emphasizes the interconnectedness of humans, nature and universe. Excessive air pollution aggrevates vata dosha which might cause it to inflame and result in asthma, anxiety and skin dryness. Polluted water lessens the jala dosha or water element that leads to skin problems, digestive and dehydration issues.

Ayurveda considers nature as the primary source of healing and well-being. The five elements- the Panchabhutas- air, water, earth, fire and space/akash from the Ayurvedic philosophy and everything in the universe is believed to be made up of these elements. Sustainability in Ayurveda is not just about protecting the environment but also ensuring the well-being of mankind.

Ayurvrdic practioners promote the cultivation and harvesting of medicinal plants in a way that ensures the long term survival which not only helps to protect the environment, but also ensures that these plants will be available for future generations too.

By adapting Ayurvedic principles, we not only improve our own health but also reduce environmental impact. The

climate change and environmental degration one of the major concerns.

Ayurveda offers a unique approach to sustainability that benefits both the health and also environment. By practicing an ayurvedic way of life, everyone can contribute to a healthier environment. Ayurveda offers to reduce waste and use all resources optimally.

Keywords: Ayurveda, Environment, Cultivation, Harvesting, Panchabhutas, Doshas, Vata dosha, Kapa Dosha, Pitta Dosha, Practitioners

Ayurveda, the ancient Indian Science of life and well being has attracted the globe with the holistic approach to medicine. For more than 5,000 years, the tradition has emphasized the interconnection of everything including the environments major impact on human well-being. Unfortunately, the environment is depleting day by day which is leading to a significant threat to the delicate balance.

Ayurveda, the traditional Indian healing system, deeply intertwines human health with the environment, viewing them as interconnected and interdependent. Ayurveda's core philosophy centers around the five elements, which are believed to be present in the universe and within the human body. Maintaining balance among these elements is the key to good health and this balance is also influenced by the environments balance.

Ayurvedic philosophy is an integral part of sustainability which emphasizes the interconnectedness of humans, nature and universe. Ayurveda considers nature as the primary source of healing and well-being. The five elements, the Panchabhutas-Air, Water, Earth, Fire and Space(Akash) from the Ayurvedic philosophy and everything in the universe is believed to be made up of these elements.

Sustainability in Ayurveda is not just about protecting the environment, but also ensuring the well-being of the mankind. Ayurvedic practitioners promote the cultivation and harvesting of medicinal plants in a way that ensures the long term survival which not only helps to protect the environment, but also ensures that these plants will be available for the future generations too.

Ayurveda recognizes that imbalances in the environment such as pollution or extreme weather, can negatively impact human health. Excessive air pollution aggravates Vata dosha which might cause to inflame and result in asthma, anxiety and skin dryness. Polluted water lessens the jala dosha or water element that leads to skin problems, digestive and dehydration issues.

Ayurveda's holistic approach to the health throws light that recognizes the well-being of environment and the community. Ayurvedic principles like Aparigraha(Non-possessiveness) and Sattvic lifestyle(Pure balanced) can contribute to a more environmentally conscious way of life.

Ayurveda emphasizes the importance of respecting and honouring nature, viewing it as a source of healing and well-being. Ayurveda sees the interconnectedness of all living things, including humans, plants and animals ans emphasizes the need to maintain balance within the interconnectedness.

The environment Act 198 defines the environment between water, air, land, human beings and other living creatures like plants and micro-organisms too.

Vedas are the first texts in the library of mankind. Vedas deal with knowledge both physical and spiritual. They are sources of all knowledge. According to Manusmriti 'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति'। Vedic views revolve around the concept of nature and life.

In environment all elements are related to each other. The whole process of nature is nothing but yajna, It is said- आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राण यज्ञेन कल्पताम् चाक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्। Ayurveda is a science of life and life is dependent on the environmental factor present around us.

The Panchabhuta evolvement in the human system is well explained in the Taitiriya Upanishad.

तसमाद्वा एतस्मादात्मानं आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अब्दयः पृथ्वी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभोन्नम्। अन्नात् पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।

This sloka tells us the evolution and connection of the human and the ecosystem. It states the conscious is first

manifested into Akash, the Akash makes space for particles to move resulting in the development of Vayu, Vayuignites and raises the temperature which results in the formation of Teja. Teja cools to form in aap or jal. The jal(water) condenses and solidifies into the Earth(Prithvi), Prithvi gives birth to various plants that ultimately feed and are responsible for the life cycle.

The complete concept of basic environmental factors and the ecosystem is well explained in Upanishads. This theory is used as a basic factor of Ayurveda Knowledge.

Vata dosha = Akash+Vayu

Pitta dosha = Teja+Jala

Kapha dosha = Jala+Prithvi

Ayurveda has yet another principle that shows the correlation between the human body and nature.

पुरुषोऽयं लोकसम्मितः। ie सर्वं द्रव्यं पांचभौतिकं अस्मिन् अर्थे In सु.सू 1/13 it is said

पञ्चमहाभूत शरिरीसमवायः पुरुषः।
स एषः कर्मपुरुषः चिकित्साधिकृताः॥

Sharira is the name given to the body that is composed of the Panchamahabhutas and Chetana Tatva is the Soul. This shows that the five elements present in the nature and environment are also present in the human body.

Five great elements (Panchamahabhutas)

- Space(Akasha)- Represents void, openness and potential. The element that contains all others.
- Air(Vayu)- Embodies movement, breath and wind. The force of mobility in nature.
- Earth(Prithvi)- Embodies solidity, structure and stability. The foundation of Physical existence.
- Fire(Tejas)- Symbolizes transformation, metabolism and heat. The power of change.
- Water(Jala)- Represents cohesion, fluidity and protection. The element of connection. **पञ्मचहाभूतात्मकमिदं जगत्**- This world consists of five great elements. This forms the foundation of Ayurvedic understanding of nature and environmental wisdom.
- Vata (Air+Space)- Governs movement and communication.

- Pitta (Fire+Water)- Governs transformation and metabolism.
- Kapha (Water+Earth)- Governs structure and stability.

Vata in environment manifests as air quality, wind patterns and cosmic radiation. Imbalance appears as irregular weather.

Pitta in environment manifests as climate change, global warming and solar cycles. Imbalance appears as extreme heat.

Kapha in environment manifests as soil health, water resources, and geological stability. Imbalance appears as flooding.

योगः कर्मसु कौशलम्- states that balance is skill in action. This principle guides sustainable practices both in body systems and ecosystems.

सर्वं सर्वात्मकम्- Everything contains everything else. No element exists in isolation. Human health directly links to environmental health. Each affects the other. Polluted environment creates imbalanced doshas. Environmental healing promotes human wellness.

यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे- As is the microcosm so is the macrocosm. This signifies the foundation of Ayurvedic environmental philosophy. In Ayurvedic concept we come across the science of seasonal rhythms which is Ritucharya, which is Winter(Hemanta/Shishira) which is building strength and immunity.

- Spring(Vasanta)- Detoxification and renewal
- Summer(Grishma)- Cooling and conservation.
- Monsson(Varsha)- Protection and moderation
- Autumn(Sharad)- Purification and balance
- Late Autumn(Hemanta)- Transition and preparation

ऋतुचर्यास्वाथ्यस्य मूलम्- Seasonal routine is the root of health. This wisdom emphasizes living according to natural cycles for optimal wee-being.

दिनचर्या स्वास्थ्यरक्षणाय- The daily routine protects health. Aligning with the natural rhythms counters disrupted modern lifestyles.

ओषधीः प्रतनध्वम्- May healing plants flourish. This ancient blessing reveals early recognition of biodiversitty's importance.

आपो ज्योती रसो अमृतम्- Water is light, essence and immortality. This verse acknowledges waters fundamental importance to all life forms.

The aspects of ayurvedic perspective on climate are Jangala(dry) where the Arid regions are with minimal rainfall. Predominance of Vata qualities plants are light, astringent and bitter. In-habitants develop more Pitta-Vata constitutions. Diet focuses on sweet, sour and salty tastes.

Aupa(Wet), humid regions with abundant water. Predominance of Kapha qualities. Plants are heavy, sweet and oily. Inhabitants develop more Kapha, Pitta constitutions. Diet focuses on pungent, bitter and astringent tastes.

Sadhana(M0derate), balanced regions with moderate climate. All the three doshas are in equilibrium. Diverse plant species. Inhabitants develop balanced tridoshic constitutions. Diet includes all six tastes in moderation.

देशानुरूपम् आहार विहारम्- Diet and lifestyle according to the region. This principle forms the foundation of environmental adaption in Ayurveda. Ayurvedic principle of 'Yuktahara' guides using only what's necessary. Excess creates imbalance. Traditional practices of recycling and up-cycling materials. Nothing wasted or discarded carelessly. Traditional focus on meeting genuine needs. Distinction between necessity and luxury.

मात्रशीतोष्णयोनिर्देशः युक्ताहारः- Moderation in cold, heat and food is wise living. This ancient guideline offers a framework for sustainable resources consumption. 85% of Ayurvedic medicines derive from plants. Botanical diversity is essential. Ancient knowledge of plant substitutes when species become scarce. Adaptive pharmacology. Growing threatened medicinal plants in home gardens, preserving genetic diversity.

सर्वं द्रव्यं पञ्चविधं कषायम्- All substances have five potential forms for healing. This acknowledges the versatile nature of plant remedies and their multiple applications. We

come across modern threats to Ayurvedic sustainability. Overharvesting- the endangered medicinal plants facing extinction due to commercial demand and market pressures exceed regeneration.

- Climate disruption- Changing growth patterns and potency of medicinal plants. The traditional timing, knowledge becoming unreliable.
- Habital loss- Deforestation and urbanization reducing biodiversity. Forest medicines disappearing before documentation.
- Genetic erosion- Standardization reducing genetic diversity in cultivation. Loss of regional plant varieties.

तमसोमा ज्योतिर्गमय- Lead men from darkness to light. This ancient verse recognizes energy as a precious resource to be used mindfully.

अन्नमयं हि सौम्य मनः- The mind is made of food. This recognizes importance of food to both mental and physical health. There is a very common saying- वृक्षो रक्षति रक्षितः i.e trees when protected, protect us in return. This ancient saying captures the reciprocal relationship between human beings and environment.

शुद्धिः स्वास्थ्यस्यप्रथमं सोपानम्- Purification is the first step to health. This principle emphasizes the importance of environmental cleanliness for well-being.

जलं जीवनम्- Water is life. This basic recognition of water's fundamental importance guides resource management.

वसुधैव कुटुम्बकम्- The world is one family forms the foundation for community based environmental stewardship. Few modern applications can give good results in the perspective of Ayurvedic living. Urban gardening- where medicinal plants can be grown in the apartments. Products based on ancient medicinal values or formulations like neem, lemon, ginger, essential oils etc.. help in various ways in protecting the available medicinal herbs.

यथादेशं यथाकालम्- according to place, according to time, guides the adaptations of ancient wisdom to contemporary contexts.

धर्मार्थिकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्- Health is the foundation of righteous ends, prosperity, joy and liberation. This holistic view guides ethical business including environmental health considerations.

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह- There is nothing as purifying as knowledge. This verse highlights the importance of tradition wisdom in facing contemporary challenges.

अभ्यासात् जायते बोधः- From practice comes awareness. This principle emphasizes the importance of daily environmental consciousness.

ऋतौ भवं ऋतुजम्- That which grows in season is seasonal. This principle guides sustainable food choices in harmony with nature. Ayurvedic ingredients have many practical applications and home remedies too. The most common elements like turmeric, ginger, cinnamon, clove etc.. are the most common herbs seen in the kitchen. Medicinal plants like Aloe vera, Tulsi, Mint, Lemon grass ect.. can also be grown.

स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्- Protecting the health of the healthy, emphasizes prevention and self care using local and natural resources.

The traditional validation can be done by scientifically verifying ecological knowledge from the available and precious ancient texts. The agricultural research can be studying traditional farming methods for climate resilience.

सा विद्या या विमुक्तये- Knowledge is that which liberates. This principle highlights the value of traditional wisdom for solving modern problems. To meet the challenges in modern integration usage of ethical knowledge, by preventing exploitation of indigenous wisdom. Fair compensation for traditional knowledge. The contextual adaptation by modifying ancient practices for modern contexts and maintaining essence while updating the applications. By protection of biodiversity

which can be by preserving plant species for future Ayurvedic practice and conservation of medicinal genetics.

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु- May all beings everywhere be happy. This represents the ultimate goal of environmental sustainability. The health of individuals remains inseparable from the health of our planet. The personal practices extend to community and global environmental healing. The integration of traditional wisdom with modern science creates powerful solutions. Ayurveda offers a time tested frame work for sustainable living.

Ayurveda and the environment are intrinsically linked. The connection is rooted in the fundamental Ayurvedic principle that humans are a microcosm of the universe and the five elements that constitute in the universe are also present within the human body. Hence, imbalances in the environment can directly impact the balance within the human body.

Ayurveda acknowledges that environmental factor like air and water pollution, poor soil quality and unfavourable weather patterns can directly impact human health. Pollution can lead to various ailments, as described in Ayurvedic texts highlighting the importance of environmental hygiene. Ayurveda promotes sustainable practices such as the use of local and seasonal foods, which are believed to be more nutritious and have a lower environmental impact.

The sense of smell has an incredible influence on our balance of doshas and holistic well-being. Aromatherapy is a form of treatment that uses natural plant extracts and aromatic compounds such as essential oils to promote physical and psychological health.

Ayurveda and aroma therapy aim to restore the balance , thereby restoring health and well-being. Utilizing the specific essential oil that complement an individual's specific doshas helps to bring about this harmony and perfect equilibrium.

Vata dosha tend to feel more anxious and fearful. Therefore, they benefit from using warming and calming oils such as sweet orange yin yang and frankincense. These oils may even be blended in equal parts for a relaxing massage.

People with pitta dosha on the other hand benefit from woody and floral oils with a cooling effect. These include

Jasmine, Lavender etc.. and also help in easing headaches, inflammation etc..

An excess of Kapha dosha tends to result in the feelings of heaviness and lethargy. Energizing aromas such as Eucalyptus, Peppermint, Basil and Lemon grass helps in stimulating the effect.

शरीरेन्द्रयसत्वात्मसंयोगो धारी जीवितम्
नित्यगश्चानुबंधश्च पर्यायैरायुरुच्यते ।। च.सू. १/४२ ।।

Constant and continuous union and amalgamation of body, sense, motor organs, mind as well as soul is defined as Ayu(Life).

सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत् ।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्रसर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ च .सू. १/४६॥

Mind, soul and body - these three are the pillars of life, which exists in all living beings.

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ वा. सू १/२॥

Persons desirous of long life, which means for achieving dharma(righteousness), Artha(wealth) and sukha(happiness) should have utmost faith in the principles of Ayurveda.

In Ayurvedic system each and every part of the environment is given importance. This helps in making of utilization of natural resources from daily usage to the drug. Neem plant - twigs are used for brushing and tongue cleaning, leaves for medicating the bathing water, seed oil for external application over scalp for healthy hair etc..

The medicines of Ayurveda are herbal or mineral or a mixture of both which are easy to dispose in the earth after their expiry. The pharmaceutical waste of Ayurveda is also biodegradable and some of them are good manure for cultivation.

The art of Ayurveda teaches that by aligning our living environment with our doshic needs taking into account our natural constitution i.e.. Prakruti and current state I.e Vikruti we can foster the optimal state of health and well being.

The ancient wisdom of Ayurveda not only enlightens us about the intricacies of our inner health,m but also gives extended guidance to the external factors that influence our well-

being. In the harmonious alignment with environment, Ayurveda offers a beacon of light guiding us towards environment where the spirits flourish and health thrives.

Ayurveda will survive till the environment exists and environment exists as long as Ayurveda exists. Ayurveda is the major system of medicine which uses small shrubs to big trees for various purposes and healing.

Ayurveda not only taught us to live healthy, but also taught us to love nature and live with nature.

Love Ayurveda- Live Ayurveda-
Give life to Environmnet.

मनुस्मृति में पर्यावरण संचेतना: एक अध्ययन

डॉ. उमा सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
नेताजी सुभाष चन्द्र बोस राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अलीगंज, लखनऊ

शोध सारांशः

प्राचीन भारतीय साहित्य में धर्मशास्त्रों की परंपरा न केवल धार्मिक और नैतिक जीवन के संचालन हेतु निर्देश प्रदान करती है, बल्कि वह एक समग्र जीवन दृष्टिकोण की भी स्थापना करती है। इन धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति को विशेष स्थान प्राप्त है, जो सामाजिक विधियों, दायित्वों और कर्म-सिद्धांतों के साथ-साथ प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति मानवीय उत्तरदायित्व को भी परिभाषित करती है। मनुस्मृति की पर्यावरणीय दृष्टि इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि भारतीय परंपरा में प्रकृति को केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि एक जीवंत इकाई के रूप में देखा गया है, जिससे मानव का आध्यात्मिक, नैतिक और जैविक संबंध है।

भारतीय दर्शन में पंचमहाभूत- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश- को ब्रह्मांड और जीवन का आधार माना गया है। इन तत्त्वों के साथ संतुलित संबंध बनाए रखना न केवल आवश्यक, बल्कि धार्मिक दायित्व भी माना गया है। मनुस्मृति इसी सिद्धांत को अपने शास्त्रीय विधान के माध्यम से स्पष्ट करती है। इसमें न केवल पर्यावरण के प्रत्येक घटक की धार्मिक महत्ता बताई गई है, बल्कि उनके संरक्षण के लिए कठोर नैतिक नियमों का प्रतिपादन भी किया गया है। उदाहरणस्वरूप, जल स्रोतों को दूषित करना, वृक्षों की

अकारण कटाई, पशु-पक्षियों की हिंसा जैसे कर्मों को पाप की श्रेणी में रखा गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता की संकल्पनाओं की पुष्टि करता है।

मनुस्मृति में उल्लिखित अनेक श्लोक यह सिद्ध करते हैं कि प्रकृति के प्रति संवेदना केवल भावनात्मक नहीं, अपितु धर्मशास्त्रीय कर्तव्यों से सम्बद्ध थी। इस दृष्टि से मनुस्मृति की पर्यावरण चेतना, एक प्रकार की धार्मिक पारिस्थितिकी का उदाहरण प्रस्तुत करती है जिसमें प्रकृति का सम्मान करना, उसकी रक्षा करना और उसके साथ सह-अस्तित्व की भावना को बढ़ावा देना मूल लक्ष्य रहा है।

प्रस्तुत शोधपत्र की विषयवस्तु इस बात को सिद्ध करती है कि मनुस्मृति एक धार्मिक विधान होते हुए भी पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को नैतिक और सामाजिक ढांचे में समाहित करती है और आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के समाधान की दिशा में उपयोगी संकेत प्रदान करती है। इसके अंतर्गत उन श्लोकों का विश्लेषण किया गया है जो जल, वृक्ष, जीव-जंतु, भूमि और आकाश के संरक्षण से जुड़े हैं। इस प्रकार, यह अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण चेतना के ऐतिहासिक स्वरूप को उद्घाटित करता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि भारतीय सभ्यता की जड़ें एक गहन पर्यावरणीय संतुलन और सह-अस्तित्व की भावना में निहित रही हैं।

मुख्य बिन्दुः मनुस्मृति, भारतीय संस्कृति, भारतीय परंपरा, पर्यावरण नैतिकता, धार्मिक पारिस्थितिकी।

मनुस्मृतिः एक संक्षिप्त परिचय

भारतीय धर्मशास्त्रीय परंपरा में मनुस्मृति को एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे धर्मशास्त्रों की श्रेणी में रखा जाता है और यह मनु द्वारा प्रतिपादित सामाजिक, धार्मिक, कानूनी और नैतिक नियमों का संकलन है। वैदिक समाज के उत्तरवर्ती चरण में जब वैदिक ऋचाओं की प्रामाणिकता को व्यवस्थित सामाजिक

व्यवस्थाओं में ढालने की आवश्यकता पड़ी, तब स्मृतिग्रंथों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें मनुस्मृति अग्रगण्य है।

मनुस्मृति के 12 अध्यायों में कुल 2,684 श्लोक हैं। इसकी भाषा संस्कृत है और यह छंदबद्ध शैली में रचित है। यह ग्रंथ व्यक्ति के जीवन के चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) और चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के कर्तव्यों, सामाजिक संबंधों, अपराधों और दंड, महिला धर्म, उत्तराधिकार, दान, विवाह और धार्मिक कर्तव्यों जैसे विषयों पर प्रकाश डालता है।

मनुस्मृति केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि उस कालखंड की राजनीतिक-सामाजिक नीति और धार्मिक नैतिकता का भी घोषणापत्र है। यह ग्रंथ धर्म (आचार), अर्थ (सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था), काम (इच्छाओं का संयम) और मोक्ष (परम लक्ष्य) के चार पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु विधियों का विधान करता है। इसमें पंचमहाभूतों (धरती, जल, अग्नि, वायु, आकाश) को पवित्र मानते हुए, उनके प्रति उत्तरदायित्व स्थापित किया गया है।

मनुस्मृति में पर्यावरणीय चेतना की भूमिका

यद्यपि मनुस्मृति का मुख्य उद्देश्य सामाजिक और धार्मिक जीवन को अनुशासित करना था, फिर भी इसमें प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण और उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। वृक्षों की कटाई, जल स्रोतों को दूषित करना, पशुओं की अनावश्यक हिंसा को दंडनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है।

जैसा कि पर्यावरण चिन्तक ओ.पी. द्विवेदी अपने शोध धार्मिक इकोलाजी में लिखते हैं। "The Manusmriti views the elements of nature not merely as lifeless resources but as divine entities to be revered and preserved." (मनुस्मृति प्रकृति के तत्त्वों को न केवल निर्जीव संसाधन मानती है, बल्कि उन्हें दिव्य सत्ता

मानती है, जिनका सम्मान किया जाना चाहिए और जिन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए।)[1]

मनुस्मृति की ऐतिहासिक प्रासंगिकता

मनुस्मृति की रचना काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है, परंतु अधिकांश शोधकर्ताओं का मानना है कि यह ग्रंथ ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी के बीच किसी समय लिखा गया।[2] यह वह समय था जब भारतीय समाज कृषि आधारित था और प्रकृति के साथ गहरा संबंध रखता था। ऐसे में मनुस्मृति के नियम न केवल धार्मिक थे, बल्कि वे पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक थे।

इस ग्रंथ में प्रकृति और समाज के बीच द्विपक्षीय संबंध को स्वीकृति दी गई है। यदि मनुष्य धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करे, तो प्रकृति भी उसे फल देती है, और यदि मनुष्य प्रकृति का उल्लंघन करे, तो प्रकृति प्रतिकार करती है। यह दृष्टिकोण आज के पारिस्थितिक संकटों के सन्दर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है।

पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व की अवधारणा

प्रकृति के प्रति मानव का संबंध केवल उपभोग का नहीं बल्कि कर्तव्य का भी रहा है। यह विचार भारतीय धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों में बार-बार प्रकट होता है। मनुस्मृति में यह दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसमें पर्यावरण के विभिन्न घटकों- जैसे जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि के प्रति मानवीय उत्तरदायित्व को नीतिशास्त्रीय और धार्मिक रूप से परिभाषित किया गया है।

मनुस्मृति का दर्शन मानता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से बना है, जिन्हें पंचमहाभूत कहा जाता है, इनका संतुलन बनाए रखना केवल भौतिक हित का विषय नहीं, बल्कि धार्मिक आचरण का अनिवार्य भाग है। यह उल्लिखित है कि "पृथिवीं धर्मणा धारयेत्" (मनुस्मृति

8.45)[3] अर्थात् पृथ्वी को धर्मपूर्वक धारण करना चाहिए। यह श्लोक पर्यावरण संरक्षण को धर्म का अनिवार्य हिस्सा घोषित करता है। मनुष्य को न केवल प्रकृति से लाभ उठाने का अधिकार है, बल्कि उसे संतुलन बनाए रखने की नैतिक जिम्मेदारी भी है।

जल को मनुस्मृति में अत्यंत पवित्र माना गया है। जल-स्रोतों को दूषित करना गंभीर पाप की श्रेणी में आता है। जल के प्रति यह संवेदनशीलता केवल भौतिक स्वच्छता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शुद्धता से भी जुड़ी है। **"अपां चैव विनाशेन पापीयान् न विद्यते" (मनुस्मृति 3.100)**[4] अर्थात् जल का विनाश करने वालों से बड़ा पापी कोई नहीं है। यह उद्घोष प्रकृति के संसाधनों की मर्यादा की ओर संकेत करता है, साथ ही जल-संकट के वर्तमान संकटों की पृष्ठभूमि में इसकी गूढ़ प्रासंगिकता है।

मनुस्मृति भूमि को केवल भौगोलिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत सत्ता के रूप में देखती है। भूमिज पर्यावरण के साथ धार्मिक एवं सामाजिक अनुशासन की गहराई से जुड़ा हुआ है। **"भूमेः पीडा भवेद्यत्र न तत्र कर्तव्यो यज्ञकर्म" (मनुस्मृति 4.193)**[5] अर्थात् जहाँ भूमि को पीड़ा होती है, वहाँ यज्ञ आदि धार्मिक कार्य नहीं करने चाहिए। यह कथन दर्शाता है कि प्रकृति की पीड़ा धार्मिक कर्मों को भी अपवित्र बना देती है। यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकीय नैतिकता के सादृश्य है, जिसमें पारिस्थितिकी और धर्म का सह-संबंध देखा जाता है।

मनुस्मृति में वायु और अग्नि को जीवन के आधार तत्त्व के रूप में स्वीकारा गया है। अग्नि की पवित्रता को विशेष महत्व देते हुए यह कहा गया है कि यदि अग्नि या वायु को दूषित किया जाए तो वह मानव जीवन के संतुलन को बिगाड़ देती है। **"वायोरपि निंदा कर्तव्या, स जीवन्मार्गो हि नः" (मनुस्मृति 4.200)**[6] वायु की निंदा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह जीवन का मार्ग है। इस प्रकार, मनुस्मृति समस्त प्रकृति के प्रति श्रद्धा, उत्तरदायित्व और संतुलन की

एक बहुस्तरीय दृष्टि प्रस्तुत करती है। यह स्पष्ट करता है कि धर्म केवल यज्ञ, व्रत, या कर्मकांड तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें प्रकृति की रक्षा का भी भाव निहित है।

पर्यावरणीय संतुलन और दंड विधान

जो व्यक्ति पर्यावरण को क्षति पहुँचाता है, उसे दंडित करने की संस्तुति भी मनुस्मृति करती है। यह केवल धार्मिक चेतावनी नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की भावना को भी दर्शाता है। **"यः पादपान् छिनत्ति हि स पापभाक् भवेत" (मनुस्मृति 8.282)**[7] अर्थात् जो वृक्षों को काटता है, वह पाप का भागी होता है। यह श्लोक पारिस्थितिकीय विनाश को सामाजिक अपराध की तरह देखता है, जो आज के पर्यावरण कानूनों की भूमिका को वैदिक काल से जोड़ता है। इसप्रकार मनुस्मृति की उस दृष्टि को विश्लेषित किया गया है, जो प्रकृति और मानव के बीच उत्तरदायित्व आधारित संबंध को स्थापित करती है। इसमें पंचमहाभूतों की पवित्रता, उनके संतुलन की आवश्यकता तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आचरण के नियमों का स्पष्ट वर्णन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति का दर्शन एक पारिस्थितिक धर्मशास्त्र के रूप में भी देखा जा सकता है, जो आज के पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु वैदिक काल से मार्गदर्शन प्रदान करता है।

इसको विस्तार से अध्ययन करके ही मनुस्मृति के पर्यावरणीय संचेतना को समझा जा सकता है जो इसप्रकार स्पष्ट हैः

जल और जल स्रोतों की पवित्रता

मनुस्मृति में जल को केवल भौतिक संसाधन नहीं बल्कि एक पवित्र तत्त्व और धार्मिक-नैतिक दायित्व के रूप में देखा गया है। भारतीय परंपरा में जल को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ऋग्वेद से लेकर मनुस्मृति तक जल को केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और धार्मिक शुद्धता का स्रोत माना गया है। मनुस्मृति में जल और उसके

स्रोतों की पवित्रता पर विशेष बल दिया गया है और उनके रक्षण को धर्म का अंग माना गया है।

1. जल का पवित्र और जीवंत स्वरूप: मनुस्मृति जल को पवित्रता और तपस्या का अनिवार्य अंग मानती है। जल स्नान, आचमन, श्राद्ध, यज्ञ और व्रत जैसे धार्मिक कार्यों का अभिन्न हिस्सा है। इसके अतिरिक्त, जल को शुद्धिकरण का साधन भी माना गया है। **"आपः पवित्राः सर्वत्र, न तासां मलिनं वचः" (मनुस्मृति 4.56)**[8] अर्थात् जल सर्वत्र पवित्र होता है, उसकी अपवित्रता की बात नहीं करनी चाहिए। यह श्लोक यह दर्शाता है कि जल न केवल शुद्ध है, बल्कि उसे मानसिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टियों से पवित्र बनाए रखना धार्मिक आचरण का भाग है।

2. जल-स्रोतों के प्रति संवेदनशीलता: मनुस्मृति में नदियों, तालाबों, सरोवरों और कुओं को केवल संसाधन नहीं माना गया, बल्कि उन्हें देवतुल्य स्थान प्राप्त हुआ है। जल-स्रोतों को दूषित करना या उनके पास अनुचित कार्य करना निषिद्ध बताया गया है। **"यत्र आपो निपतन्ति, न तत्र कर्तव्यम् मलं कदाचित्। (मनुस्मृति 4.70)**[9] अर्थात् जहां जल बहता है, वहां अपवित्र या मलयुक्त कर्म नहीं करना चाहिए। यह विचार आज के आधुनिक जल संरक्षण सिद्धांत को पुष्ट करता है, जहाँ जल-संरक्षण को सार्वजनिक उत्तरदायित्व समझा जाता है।

3. जल-प्रदूषण के प्रति कठोर चेतावनी: जल को दूषित करने वाले व्यक्ति को मनुस्मृति में पापी कहा गया है, और उसके लिए दंड की व्यवस्था भी है। यह दंड केवल भौतिक ही नहीं, आध्यात्मिक और सामाजिक भी हो सकता है। **"अपां चैव विनाशेन पापीयान् न विद्यते" (मनुस्मृति 3.100)**[10] अर्थात् जल का विनाश करने वाले से बड़ा पापी कोई नहीं है। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि

जल के साथ की गई कोई भी अनुशासनहीनता न केवल धार्मिक दृष्टि से निन्दनीय है, बल्कि सामाजिक रूप से अपराध भी माना जाता है।

4. जल संरक्षण की नैतिक प्रेरणा: मनुस्मृति जल संरक्षण को केवल नियम नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार, जल को दूषित करने वाला न केवल अपनी आत्मा को कलुषित करता है, बल्कि समाज के अन्य लोगों के लिए भी संकट उत्पन्न करता है। **"आपः पुष्णन्ति भूतानि, ताः पूज्याः सततं नृणाम्" (मनुस्मृति 3.105)**[11] अर्थात् जल समस्त प्राणियों का पोषण करता है, इसलिए वह पूजनीय है। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि जल संरक्षण के लिए धार्मिक भावना को भी जाग्रत करना आवश्यक है, क्योंकि प्राचीन भारत में पर्यावरणीय नैतिकता धर्म और आस्था से जुड़ी थी।

आज जब जल संकट और जल प्रदूषण वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है, मनुस्मृति की उक्तियाँ हमें जल संरक्षण हेतु सांस्कृतिक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती हैं। जल को केवल उपयोगिता की वस्तु मानने की अपेक्षा यदि उसे पवित्रता और उत्तरदायित्व से जोड़कर देखा जाए, तो समाज में जल संसाधनों के प्रति व्यवहार अधिक सजग हो सकता है। पर्यावरण चिंतक कपिला वात्स्यायन के अनुसार-

"Indian ecological traditions were never separated from the sacred; water was worshipped, not wasted."[12]

अर्थात् भारतीय पारिस्थितिक परम्पराओं को कभी भी पवित्रता से अलग नहीं किया गया, पानी की पूजा की जाती थी, उसे बर्बाद नहीं किया जाता था।

मनुस्मृति में जल के प्रति दृष्टिकोण केवल धार्मिक या प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि नैतिक और व्यावहारिक है। यह ग्रंथ हमें जल के प्रति श्रद्धा, संरक्षण और शुद्धता की चेतना प्रदान करता है।

जल की पवित्रता बनाए रखने के लिए उसमें अनावश्यक हस्तक्षेप को पाप और अधर्म की श्रेणी में रखा गया है, जो यह स्पष्ट करता है कि भारतीय परंपरा में जल संसाधनों का दुरुपयोग केवल सामाजिक त्रुटि नहीं, बल्कि धार्मिक अपराध भी है।

वृक्ष और वनस्पतियों का महत्त्व

मनुस्मृति भारतीय परंपरा में वृक्षों की धार्मिक, नैतिक, और पारिस्थितिक भूमिका को रेखांकित करता है। प्राचीन भारतीय चिंतन में वृक्षों को केवल जैविक संसाधन नहीं, बल्कि जीवंत चेतना युक्त इकाई और दिव्यता से परिपूर्ण सत्ता माना गया है। मनुस्मृति इस दृष्टिकोण को संस्थागत रूप प्रदान करती है, जहाँ वृक्षों और वनस्पतियों के प्रति न केवल कृतज्ञता व्यक्त की गई है, बल्कि उनकी रक्षा को धर्म का कर्तव्य भी माना गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय चिन्तन में अनेक दृष्टियों में अग्रणी है, क्योंकि यह मनुष्य और वृक्षों के संबंध को आध्यात्मिक सूत्र में निबद्ध करता है।

1. वृक्षों की धार्मिक पवित्रता: मनुस्मृति वृक्षों को पूजनीय मानती है, विशेषकर अश्वत्थ (पीपल), वट (बरगद), बिल्व (बेल), और आम्र (आम) जैसे वृक्षों को। इनमें देवताओं का वास माना गया है और इनकी अकारण कटाई या क्षति को पाप माना गया है। **"अश्वत्थं पूजयेत् नित्यं" (मनुस्मृति 3.85)**[13] अर्थात् अश्वत्थ वृक्ष की नित्य पूजा करनी चाहिए। यह वृक्षों की धार्मिक प्रतिष्ठा को दर्शाता है, जो केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि व्यवहारिक संरक्षण की नींव रखता है।

2. वृक्षों की कटाई के विरुद्ध चेतावनी: मनुस्मृति में वृक्षों की अकारण कटाई को घोर अपराध की संज्ञा दी गई है। इसे दंडनीय माना गया है और इसे करने वाले को पापकर्मी कहा गया है। **"यः पादपान् छिनत्ति हि स पापभाक् भवेत्" (मनुस्मृति 8.282)**[14] अर्थात् जो व्यक्ति वृक्षों को काटता है, वह पाप का भागी होता है। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारत में वृक्षों की रक्षा को केवल आस्था

का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और धर्म का हिस्सा माना गया था।

3. वृक्षारोपण और पर्यावरणीय पुनर्निर्माण: मनुस्मृति नकारात्मक कर्मों को दंडित करने के साथ-साथ पुनःस्थापन या प्रायश्चित के रूप में वृक्षारोपण की संस्तुति भी करती है। जैसे, कुछ अपराधों के प्रायश्चित के रूप में वृक्ष लगाने का विधान मिलता है, जिससे न केवल दंडित व्यक्ति सुधार होता है, बल्कि पर्यावरण का पुनर्निर्माण भी होता है। बृहद धर्मसूत्रों और अन्य स्मृतियों में भी प्रायश्चित के रूप में वृक्षारोपण का विधान है, जिसे मनुस्मृति की पर्यावरण चेतना के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

4. वृक्षों और मनुष्य के सह-अस्तित्व का भाव: प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में वृक्ष न केवल छाया, फल, औषधि और ईंधन का स्रोत हैं, बल्कि वे जीवन चक्र का अभिन्न हिस्सा हैं। मनुस्मृति इस सह-अस्तित्व को धार्मिक नैतिकता के साथ जोड़ती है। मनुष्य यदि वृक्षों की रक्षा करेगा, तो वृक्ष भी जीवनदायिनी शक्तियाँ प्रदान करेंगे। कपिला वात्स्यायन के अनुसार-

"The Indian ecological consciousness viewed the forest not as wild or separate, but as sacred, ordered and interrelated with human survival."[15]

अर्थात् भारतीय पारिस्थितिकी चेतना वन को जंगली या अलग नहीं मानती, बल्कि पवित्र, व्यवस्थित और मानव अस्तित्व के साथ अंतर्संबंधित मानती है।

आज के परिप्रेक्ष्य में जब वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता की क्षति जैसे संकट गंभीर रूप ले चुके हैं, मनुस्मृति का यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि वृक्ष संरक्षण केवल 'पर्यावरणीय नीति' नहीं बल्कि एक 'नैतिक-धार्मिक संकल्प' भी हो सकता है। पर्यावरणविद् ओ. पी. द्विवेदी लिखते हैं- "The dharmic approach to trees is not anthropocentric but ecocentric;

it stresses not how trees benefit humans, but how humans have a duty to preserve them."[16]

अर्थात् पेड़ों के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण मानव-केंद्रित नहीं बल्कि पारिस्थितिकी-केंद्रित है, यह इस बात पर केवल बल नहीं देता कि पेड़ मनुष्यों को कैसे लाभ पहुंचाते हैं, बल्कि इस बात पर बल देता है कि उन्हें संरक्षित करना मनुष्यों का कर्तव्य है।

मनुस्मृति में वृक्षों और वनस्पतियों के प्रति दृष्टिकोण आदर, उत्तरदायित्व और धार्मिक अनुशासन से परिपूर्ण है। वृक्ष केवल प्रकृति के हिस्से नहीं, बल्कि उस नैतिक व्यवस्था का मूल हैं, जो मानव और पर्यावरण को एक ही जैविक एवं आध्यात्मिक इकाई में बांधती है। वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकटों के समाधान में यदि हम इस दृष्टिकोण को व्यवहार में लाएं, तो यह न केवल जैव विविधता की रक्षा करेगा, बल्कि मानवीय चेतना को भी अधिक नैतिकतापूर्ण बनाएगा।

पशु-पक्षियों एवं जैव विविधता की रक्षा

स्पष्ट है कि भारतीय धर्मशास्त्र केवल मानव-केन्द्रित दृष्टिकोण नहीं अपनाते, बल्कि सभी जीव-जंतुओं के साथ सह-अस्तित्व और करुणा को प्रस्तुत करते हैं। भारतीय धार्मिक और दार्शनिक परंपरा में समस्त सृष्टि को एक अद्वैत चेतना से युक्त माना गया है। ईशावास्य उपनिषद का उद्घोष- "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"[17] -इस समस्त सृष्टि में दिव्यता की उपस्थिति की पुष्टि करता है। मनुस्मृति इसी भावना को नैतिक और सामाजिक नियमों में रूपांतरित करती है और पशु-पक्षियों, वन्यजीवों तथा जैव विविधता के प्रति मानवीय उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप स प्रतिपादित करती है।

1. अहिंसा और दया का सिद्धांत: मनुस्मृति के नैतिक मूल्यों में अहिंसा (अहिंसा परमो धर्मः) और दया को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। यह केवल मानवों के प्रति नहीं, बल्कि सभी जीवधारियों के प्रति

अनिवार्य मानी गई है। "सर्वभूतेषु दया धर्मस्य मूलं स्मृतं" (मनुस्मृति 6.60)[18] अर्थात् सभी प्राणियों पर दया करना धर्म का मूल है। यह श्लोक दर्शाता है कि धर्म का आधार करुणा है, जो समस्त जीवन के लिए न्याय और सुरक्षा सुनिश्चित करता है। यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकी के जीव-केन्द्रित नैतिकता के समान है।

2. हिंसा का निषेध और पशु-रक्षा की आवश्यकता: मनुस्मृति में अनावश्यक हिंसा, विशेषकर पशु हिंसा, को धर्म विरुद्ध माना गया है। केवल यज्ञीय प्रयोजन अथवा आजीविका के अत्यंत सीमित संदर्भों में पशुबलि की अनुमति दी गई है, वह भी विशेष शुद्धता और नियमों के अधीन। "अनवस्कृत्य हिंस्यान्न वै धर्मेण समन्वितम्" (मनुस्मृति 5.43)[19] अर्थात् बिना उचित कारण के की गई हिंसा धर्म के अनुसार नहीं मानी जाती। यह श्लोक दर्शाता है कि बिना प्रयोजन या लोभवश की गई हिंसा, चाहे वह किसी भी प्राणी पर हो, अधर्म है।

3. जैव विविधता और मानव जीवन का पारस्परिक संबंध: मनुस्मृति में यह मान्यता मिलती है कि समस्त जीव-जंतु इस सृष्टि की संतुलित संरचना का हिस्सा हैं। उनके अस्तित्व में हानि होने पर पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न होता है, जिससे अंततः मानव स्वयं पीड़ित होता है। पर्यावरण चिन्तक ओ.पी. द्विवेदी लिखते हैं- "The dharmic framework emphasizes interconnectedness-not only between humans but between all sentient beings and nature."[20] अर्थात् "धार्मिक ढांचा परस्पर जुड़ाव पर जोर देता है- न केवल मनुष्यों के बीच बल्कि सभी संवेदनशील प्राणियों और प्रकृति के बीच।"

यह विचार इस धारणा को पुष्ट करता है कि जैव विविधता की रक्षा केवल पर्यावरण नीति नहीं, बल्कि धार्मिक-नैतिक कर्तव्य है।

4. पक्षियों और वन्यजीवों के प्रति सम्मान: वेद और पुराणों की भाँति मनुस्मृति में भी पक्षियों को प्रतीकात्मक रूप से देवताओं के

वाहन या प्राकृतिक चेतना के प्रतिनिधि रूप में देखा गया है। उदाहरणस्वरूप, गिद्ध, कौवा, हंस, मोर, और तोता जैसे पक्षियों को विशेष धार्मिक महत्व प्राप्त है। इनका संरक्षण जीवन-पद्धति का हिस्सा था। **"शकुन्तानां च हिंसां तु निषिद्धां धर्मविद् बुधाः" (मनुस्मृति 5.43)**[21] अर्थात् पक्षियों की हिंसा को ज्ञानी पुरुष धर्मविरुद्ध मानते हैं।

आज जब जैव विविधता का ह्रास, विलुप्त प्रजातियाँ और वन्यजीव तस्करी जैसे संकट वैश्विक समस्या बन चुके हैं, मनुस्मृति की यह पर्यावरणीय चेतना हमें यह सिखाती है कि पशु-पक्षियों के प्रति दया और संरक्षण की भावना कोई आधुनिक अवधारणा नहीं है, बल्कि भारतीय परंपरा की मूल अवधारणा रही है। कपिला वात्स्यायन के अनुसार-

"Indian culture integrated all forms of life into its sacred geography- Beasts, birds, reptiles- all found place in rituals symbols and stories."[22]

अर्थात् "भारतीय संस्कृति ने जीवन के सभी रूपों को अपने पवित्र भूगोल में एकीकृत किया है- पशु, पक्षी, सरीसृप- सभी को अनुष्ठान, प्रतीकों और कहानियों में स्थान मिला है।"

मनुस्मृति में जैव विविधता के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से धार्मिक, नैतिक और व्यावहारिक स्तर पर स्थापित है। यह ग्रंथ समस्त प्राणी जगत को 'भूत' (सत्ता) के रूप में देखता है, जिसकी रक्षा करना मानव का नैतिक धर्म है। पशु-पक्षियों और अन्य प्राणियों के प्रति करुणा और संरक्षण की भावना मनुस्मृति को एक पारिस्थितिक धर्मशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करती है। आज के समय में यह दृष्टि हमें न केवल पर्यावरण की रक्षा करना सिखाती है, बल्कि समस्त जीवन के साथ सौहार्दपूर्ण सह-अस्तित्व का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

पारिस्थितिक संतुलन और मानव व्यवहार

प्रकृति और मानव के बीच का संबंध भारतीय चिंतन में केवल पारस्परिक लाभ तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह नैतिकता, धर्म और संतुलन की आधारशिला पर निर्मित रहा है। मनुस्मृति इस सम्बन्ध को सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों में रूपांतरित करती है। उसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों के अनुरूप आचरण करता है, तो पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है, परन्तु जब यह आचरण विकृत होता है, तब पर्यावरण असंतुलित हो जाता है, जिससे संपूर्ण सृष्टि प्रभावित होती है।

1. मानव का कर्तव्यमूलक स्थान: मनुस्मृति में मानव को ब्रह्मा की सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, किंतु यह श्रेष्ठता अधिकार नहीं बल्कि उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई है। मनुष्य का धर्म यह है कि वह अपने आचरण से न केवल समाज बल्कि प्रकृति का भी संरक्षण करे। **"धर्मेणैव हि पश्यन्ति सर्वाणि भूतानि मानवाः" (मनुस्मृति 8.15)**[23] अर्थात् मनुष्य यदि धर्म से विमुख हो जाए, तो समस्त भूतों (जीवों) की रक्षा नहीं हो सकती। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि मनुष्य का आचरण समस्त प्राणिजगत के लिए अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम ला सकता है।

2. उपभोग बनाम संतुलन: मनुस्मृति में उपभोग का निषेध नहीं है, परन्तु अति का स्पष्ट विरोध है। यदि प्रकृति का उपभोग विवेक और संयम से किया जाए तो वह संतुलन बनाए रखती है, किंतु लोभ और अनावश्यक दोहन पारिस्थितिक विनाश का कारण बनते हैं। **"युक्ताहारविहारस्य धर्मस्य च परायणम्"(मनुस्मृति 8.20)**[24] अर्थात् संयमित आहार और व्यवहार ही धर्म का मूल है। यह संतुलन ही वह सिद्धांत है जिसे आज पर्यावरणीय नीति में सतत विकास कहा जाता है।

3. दंड और संरक्षण के सिद्धांत में संतुलन: मनुस्मृति में दंड का विधान केवल सामाजिक अपराधों के लिए नहीं, अपितु पर्यावरणीय अपराधों के लिए भी है। वृक्षों की कटाई, जल स्रोतों की दुर्दशा, पशु हिंसा कृ इन सभी के लिए दंड का वर्णन मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति पारिस्थितिक संतुलन को सामाजिक स्थायित्व के साथ जोड़ती है-

"यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतं कृतम् ।
हन्यादेव ततः राष्ट्रं न कालेन न वर्षभि।।

(मनुस्मृति 8.22)[25]

अर्थात् जहाँ धर्म की उपेक्षा और अधर्म का पोषण होता है, वहाँ राष्ट्र का विनाश सुनिश्चित होता है। यह कथन आधुनिक पर्यावरणीय संकटों की जड़ को दर्शाता है, जब पारिस्थितिक धर्म की उपेक्षा होती है, तो सम्पूर्ण समाज संकट में आ जाता है।

4. सामाजिक आचरण और पारिस्थितिकी का सह-संबंध: मनुस्मृति में यह बार-बार कहा गया है कि किसी भी धर्मिक क्रिया, यज्ञ, संस्कार आदि का उद्देश्य केवल आत्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और प्राकृतिक संतुलन भी है। यज्ञ का उद्देश है- **"इन्द्राय वायवे च"** जिससे जल, वायु और अग्नि संतुलित रहें। इसका अर्थ है कि धार्मिक कर्मों का प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है।

कपिला वात्स्यायन लिखती हैं- "The rituals encoded in Dharmaśāstra were never isolated from the ecology—they were methods to ensure harmony between the human and the cosmic."[26] अर्थात् धर्मशास्त्र में वर्णित अनुष्ठान कभी भी पारिस्थितिकी से अलग नहीं थे- वे मानव और ब्रह्मांड के बीच सामंजस्य सुनिश्चित करने के तरीके थे।

5. मनुष्य को पर्यावरणीय अनुशासन का वाहक बनाना: मनुस्मृति एक ऐसे सामाजिक अनुशासन की बात करती है जहाँ मानव की भूमिका 'भोक्ता' से अधिक 'संरक्षक' की होती है। यह

दृष्टिकोण आज के "मानव-केन्द्रित युग" में अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ मनुष्य ही पर्यावरणीय संकटों का मूल कारक और समाधानकर्ता है। ओ.पी. द्विवेदी के अनुसार- "In the Manusmriti, the call is clear: without ecological balance, there can be no Dharma, no order, and no human flourishing."[27] अर्थात् मनुस्मृति में स्पष्ट आह्वान किया गया है: पारिस्थितिक संतुलन के बिना न तो धर्म हो सकता है, न व्यवस्था और न ही मानव समृद्धि।

मनुस्मृति पारिस्थितिक संतुलन को केवल प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग मानती है। इसमें मानव के लिए एक ऐसा आचार-संहिता प्रस्तुत की गई है जो पर्यावरणीय समरसता को धर्म का अनिवार्य अंग बनाती है। उपभोग के स्थान पर संतुलन, अधिकार के स्थान पर उत्तरदायित्व और दमन के स्थान पर संरक्षण-यही वह मूल अवधारणाएँ हैं जो मनुस्मृति को आज के पर्यावरणीय विमर्श के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक बनाती हैं।

निष्कर्ष: मनुस्मृति की पर्यावरण चेतना की आधुनिक प्रासंगिकता

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में मनुस्मृति एक ऐसा ग्रंथ है जो धर्म, समाज, राजनीति और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। इस शोध में स्पष्ट हुआ कि मनुस्मृति की दृष्टि मानव-प्रकृति संबंधों को केवल उपयोगितावादी या कर्मकांडीय संदर्भों में नहीं देखती, बल्कि उन्हें नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत करती है। वृक्षों की रक्षा, जल स्रोतों की पवित्रता, पशु-पक्षियों के प्रति करुणा, पंचमहाभूतों के संतुलन की आवश्यकता और मनुष्य के व्यवहार की भूमिका-ये सभी पक्ष मनुस्मृति को पर्यावरणीय चेतना के एक सुसंगठित और पूर्वदर्शी स्रोत के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

1. नैतिकता से जुड़ी पारिस्थितिकी: मनुस्मृति की प्रमुख विशेषता यह है कि वह पर्यावरण संरक्षण को केवल कानून या नीति

का विषय नहीं बनाती, बल्कि उसे धर्म और नैतिकता का भाग मानती है। यह धारणा कि जल का अपमान अधर्म है, वृक्षों की कटाई पाप है और पशु हिंसा दंडनीय है; आधुनिक पारिस्थितिकीय न्याय के आधार को दर्शाती है।

जैसा कि द्विवेदी ने कहा हैः % "In Indian scriptures, ecology is not outside of Dharma but integral to it."[28] अर्थात् "भारतीय शास्त्रों में पारिस्थितिकी धर्म से बाहर नहीं है, बल्कि धर्म का अभिन्न अंग है।"

2. सह-अस्तित्व की भावना: यह ग्रंथ सृष्टि को एक परस्पर निर्भर इकाई मानता है जिसमें मनुष्य, पशु, वृक्ष, जल, वायु और अग्नि कृ सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह विचार आज की eco-spirituality (पारिस्थितिकी-आध्यात्मवाद) और deep ecology (गहन पारिस्थितिकी) जैसे सिद्धांतों के समानांतर खड़ा होता है।

कपिला वात्सायन के अनुसारः "Indian ecological vision internalized interdependence—not as philosophy but as lived reality."[29] अर्थात् "भारतीय पारिस्थितिकी दृष्टि ने अन्योन्याश्रितता को आंतरिक रूप दिया है- दर्शन के रूप में नहीं बल्कि जीवित वास्तविकता के रूप में।"

3. आधुनिक समस्याओं का पारंपरिक समाधान: आज जब जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण, जैव विविधता ह्रास, और नैतिक उदासीनता जैसी समस्याएँ गहरी हो चुकी हैं, मनुस्मृति का यह दृष्टिकोण मार्गदर्शक बन सकता है। इसकी चेतावनियाँ- जैसे, जल का विनाश पाप है, वृक्ष काटना अधर्म है, प्राणी हिंसा से सामाजिक पतन होता है- आज के पर्यावरणीय विमर्श में एक सांस्कृतिक और नैतिक औचित्य जोड़ सकती हैं।

4. पुनर्पाठ और सांस्कृतिक पुनरुद्धार की आवश्यकता: यह आवश्यक नहीं कि हम मनुस्मृति के प्रत्येक सामाजिक नियम को

अक्षरशः अपनाएँ, किंतु उसकी पर्यावरणीय चेतना को आज के शैक्षिक पाठ्यक्रमों, नीति-निर्माण, और सार्वजनिक आचरण में सम्मिलित करना एक समकालीन सांस्कृतिक पुनरुद्धार होगा।

मनुस्मृति में निहित पर्यावरण दृष्टि आधुनिक वैश्विक चिंताओं के लिए न केवल एक दार्शनिक और नैतिक आधार प्रस्तुत करती है, बल्कि वह एक सांस्कृतिक पुनःसम्बद्धता की भी संभावनाएँ खोलती है। धर्मशास्त्र जब पर्यावरण का रक्षक बनता है, तो वह केवल आस्था नहीं, बल्कि संवेदनशील और उत्तरदायी नागरिकता का मार्गदर्शन करता है। इसलिए, मनुस्मृति को एक "पर्यावरण धर्मशास्त्र" के रूप में पुनःपढ़ा जाना न केवल प्रासंगिक है, बल्कि आवश्यक भी।

सन्दर्भ ग्रन्थः

- बुहलर, जॉर्ज, अनुवादक, लॉज ऑफ मनुः सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट, खंड 25, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1886।
- द्विवेदी, ओ.पी. "धार्मिक इकोलाजी": वर्डव्यूवस्, इन्वांयरमेन्ट, कल्चर, रिलीजन, खंड 2, संख्या 1, 1998, पृष्ठ 1-22।
- कपिला वात्स्यायन, ट्रेडिशनल इण्डियन थाट एण्ड इन्वांयरमेन्टल कान्सीयसनेस, आईजीएनसीए, 1997।
- मनुस्मृति, गंगानाथ झा द्वारा अनुवादित, मोतीलाल बनारसीदास, 2004।
- राधाकृष्णन, एस. भारतीय दर्शन, खंड 1, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006।
- शर्मा, अरविंद, क्लासिकल हिन्दू थाट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000।
- तिवारी, के.एन. क्लासिकल इण्डियन एथिकल थाट, मोतीलाल बनारसीदास, 1992।

कालिदास कृत मेघदूतम् में पर्यावरण परिदृश्य

शोधार्थी, **नीरज कुमार सोनी**
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं
प्रो. अर्चना, डॉ. अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय, रायबरेली

संस्कृत साहित्य के कविकुलगुरू कालिदास प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। महाकवि कालिदास प्रकृति के अनन्य उपासक भी हैं। महाकवि कालिदास का संपूर्ण साहित्य पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन की भावना से ओत-प्रोत है। महाकवि ने अपनी साहित्य साधना में जीवन के प्रत्येक सोपान पर प्रकृति का साहचर्य अपने काव्य में दर्शाया है। मेघदूत में प्राकृतिक तत्त्वों में सहानुभूति की भावना का भी अनुपम आरोपण किया गया है। यक्ष की विरह दशा से प्रकृति भी संवेदना प्रकट करती है। अभिज्ञान शाकुंतलम् नाटक में महाकवि कालिदास ने शिव की अष्टमूर्ति के माध्यम से प्रकृति के जैविक और अजैविक अंशों का वंदना की है।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥[1]

इस मंगलाचरण में आठ तत्त्वों के रूप में जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, वायु, सूर्य और चंद्र आदि प्रकृति तत्त्वों के साथ यजमान रूपी सजीव जैविक तत्त्व का भी उल्लेख किया है। यहाँ अष्टमूर्ति के रूप में प्रकृति के आठ तत्त्वों की कवि ने साक्षात् वंदना की है। यह भूमंडल जिसमें जैविक और अजैविक तत्त्वों का वास है, पंचतत्त्व से निर्मित है। सूर्य-चंद्र रूपी बाहरी शक्तियाँ इस पृथ्वी को

---

1. अभिज्ञान शाकुंतलम् प्रथम अंक- 1

ऊर्जा प्रदान करती हैं। सजीव तत्त्व के रूप में यजमान तत्त्व की उपस्थित दर्शायी गई है।

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड मर्मज्ञ एवं सहृदय आलोचक ए. डब्ल्यू. राइडर का इस सम्बन्ध में कहना है कि- प्राकृतिक सौंदर्य के अवलोकन में शेक्सपियर की विस्मय जनक गहन अंतर्दृष्टि स्वीकार की गई है, परन्तु वह भी मुख्यतः मानवीय भावनाओं के ही कवि थे। कालिदास के सम्बन्ध में न ही यह कहा जा सकता है कि वह मुख्यतः मानव हृदय के कवि थे और न ही यह कहा जा सकता है कि वह मुख्यतः प्राकृतिक सौंदर्य के कवि थे। यह दोनों ही गुण कवि में रासायनिक ढंग से मिले हुए थे।[1]

महाकवि कालिदास ने अपने प्रथम गीतिकाव्य ऋतुसंहार में प्रकृति के वस्त्ररूपी षड्ऋतु के वर्णन में जड़ प्रकृति की सभी रूपों का मनोहारी एवं अलंकारपूर्ण चित्रण किया है। ऋतुसंहारम् महाकवि की प्रथम रचना है।[2] ग्रीष्म ऋतु से आरंभ करके वसंत ऋतु तक सभी ऋतुओं का वर्णन इस काव्य में किया गया है। महाकवि कालिदास का प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम उनकी रचनाओं को अतुलनीय बनाता है। सूर्योदय वर्णन, इंद्रनील पर्वत वर्णन, तपोवन एवं आश्रम वर्णन, नदी एवं नगर वर्णन, गौ-सेवा आदि सभी प्राकृतिक रूपों पर महाकवि की तुलिका किसी सिद्धहस्त चितेरे के समान प्रकृति को जीवंत दर्शाने में संलग्न है।

प्रकृति प्रेमी महाकवि कालिदास ने प्रकृति के सौंदर्य को प्रेरणा स्रोत मानकर ऋतुसंहार और मेघदूत में उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदर्शित की है। उनके काव्य में नदी, बादल, वर्षा, वृक्ष,

---

2. https://www.socialresearchfoundation.com/new/publish-journal.php?editID=9388 (महाकवि कालिदास के काव्यों में प्रकृति चित्रण : संदीप कच्छावाहा, सहायक आचार्य, राजकीय कन्या महावि॰, पीपाड़, राज॰)
3. https://www.socialresearchfoundation.com/new/publish-journal.php?editID=9388

वनवासी, पर्वत, झरने, पुष्प, फल यहाँ तक कि कीड़े-मकौड़ों और मछलियों आदि का भी कालिदास की दृष्टि में अपना सौंदर्याकर्षण है। जिसको उन्होंने अपने काव्य में यथानुरूप नवीन दृष्टिकोण अपनाते हुए चित्रित किया है।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित अनुपम गीतिकाव्य मेघदूत में अचेतन मेघ को संदेश वाहक बनाकर अलकापुरी में अपनी प्रेयसी के पास अपना कुशलक्षेम पहुंचाने के छोटे से संदर्भ को लेकर महाकवि ने दो खण्डों में मेघदूतम् गीतिकाव्य की रचना की। इसके प्रथम खंड पूर्वमेघ में महाकवि कालिदास ने मेघ को संदेश देते हुए मेघमार्ग का निर्देशन किया है। द्वितीय खंड उत्तरमेघ में प्रत्याभिज्ञान हेतु अलकापुरी का अलौकिक वर्णन किया है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में कुल 32 भूचिह्नों का जिक्र किया है। यक्ष के द्वारा निवेदित संदेश को धारण करने के बाद मेघ दूतकार्य हेतु रामगिरि आश्रम से अपनी यात्रा का आरंभ करता है। अलकापुरी उसकी यात्रा का गंतव्य स्थान है। संपूर्ण मेघदूत तत्कालीन प्राकृतिक पर्यावरण का एक ज्वलंत आख्या पत्र है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति के चेतनाचेतन तत्त्वों का वर्णन किया है। इसमें अंतःप्रकृति एवं बाह्यप्रकृति दोनों को समान रूप से कवि ने महत्त्व दिया है। कालिदास कृत मेघदूत में प्रकृति के प्रमुख पक्षों का सिंहावलोकन करने पर यह पता चलता है कि कवि ने प्रकृति को जड़ तत्त्व के रूप में वर्णित ही नहीं किया बल्कि उसमें मानवीय संवेदनाओं और क्रियाकलापों का आरोपण कर उसे एक विशेष चेतनता प्रदान की है।

काले-काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुन्चतो वाष्पमुष्णम्।।[1]

अर्थात् रामगिरि पर्वत से प्रस्थान करते हुए मेघ से यक्ष निवेदन करता है कि आप अपने परम स्नेही मित्र रामगिरि पर्वत पर मानवों के समान विरह-चिह्न आंसुओं से वर्षा करते हुए जाना। यक्षराज कुबेर के शाप से महिमा शून्य हो जाने से एक यक्ष रामगिरि

4. पूर्व मेघ - 12

पर्वत पर निवास करते हुए अपने शापान्त-काल की प्रतीक्षा कर रहा है। आठ मास व्यतीत होने पर आषाढ़ मास में नभाच्छन्न मेघ को देखकर यक्ष मेघ की प्रकृति और अपनी दीनता का परिचय देते हुए प्रार्थना करता है-

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु॥[1]

मेघ इस भूमंडल पर समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है और उसका दर्शन मात्र ही प्रकृति में आशा का संचार कर देता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए कवि ने लिखा है कि दुःखी जनों का आश्रय तुम ही हो। इसलिए मेरी प्रिया तक मेरा संदेश पहुंचाने का कष्ट कीजिए -

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियायाः।
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।।[2]

प्रकृति के सभी तत्त्व एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करके इस भूमंडल पर जीवन का धारण करते हैं जिसका आलंबन मेघ है-

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥[3]

---

5. पूर्व मेघ - 5
6. पूर्व मेघ - 7
7. पूर्व मेघ - 9

यक्ष मेघ के मार्ग में अनुकूलता के लिए आकांक्षा करता है और कहता है कि प्रकृति के तत्त्वों के रूप में चातक, बलाका एवं मंद-मंद संचरणशील वायु आदि सब उसके सहगामी होंगे।

मेघ रामगिरि पर्वत से अपनी यात्रा आरंभ करके कैलाश पर्वत में स्थित अलकापुरी तक दूतकार्य के लिए यात्रा करता है। मेघ अपनी यात्रा में कुल 8 पर्वतों की यात्रा करता है। रामगिरि पर्वत, आम्रकूट पर्वत, विंध्याचल पर्वत नीचैगिरि, देवगिरि तुषारगौर, क्रौंच और कैलास पर्वत मेघ की यात्रा के अहम पड़ाव हैं। इन सभी स्थानों के सौंदर्य को महाकवि ने मुक्तकंठ से सराहा है। किसी पर्वत पर हरे बांस के पौधों से बचकर आकाश की ओर उड़ने का निर्देश किया है तो किसी पर्वत को पृथ्वी को आंचल बताया है।

नूनं यास्यत्यमरमिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां।
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः॥[1]

आम्रकूट पर्वत के चोटी पर श्याम वर्ण का मेघ और आसपास पके फलों से युक्त आम्र के वृक्ष हैं। कवि की कल्पना है कि व्योमचारी देव युगलों को मेघ के आगमन पर यह पर्वत पृथ्वी के स्तनों के समान शोभायमान होगा। हिमालय पर्वत के श्रृंखला में स्थित कैलास को देव सुंदरियों का दर्पण बताते हुए कवि उपमा करता है कि कैलास पर्वत भगवान शंकर के अट्टहास का एकत्रीकरण मात्र है।[2]

मेघदूत में महाकवि ने नदियों को मेघ की नायिका कहा है। कवि ने उपमा और रूपक अलंकारों से युक्त नदियों के मनोहारी नायिकत्व का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। मानिनी प्रेयसी की भाँति इठला कर नदियाँ अपनी तरंग रूपी भौंह संचालन से मेघ को आकर्षित करना चाहती हैं। प्रात:काल में सूरज अपनी प्रियतमा नलिनी के ओस रूपी नयनजल को अपने हाथों से पोंछता है। पुराने पत्तों से पीली और क्षीण हुई निर्विंन्ध्या नदी अपनी विरह दशा से

---

8. पूर्व मेघ - 18
9. पूर्व मेघ - 58

मेघ के सौभाग्य को प्रकट करती है।[1] मेघदूत में कुल 11 नदियों का वर्णन किया है। यमुना नदी और प्रयाग के संगम का नाम उल्लेख उपमा हेतु महाकवि कालिदास ने किया है। यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि हे मित्र! अपनी नायिका गम्भीरता से मिलने के बाद बड़ी मुश्किल से विदा लेकर के तुम मेरा काम अवश्य करना।[2]

रामगिरि पर्वत से हिमालय के कैलाश पर्वत तक जाने का सीधा मार्ग है। यक्ष कृषि योग्य भूमि के लिए मेघ वर्षा का महत्व समझता है। इसीलिए वह थोड़ा घूमकर मेघ को माल क्षेत्र की भूमि से होकर आगे बढ़ने का निवेदन करता है।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥

आज भी भारत भूमि में बहुतायत में कृषि वर्षा पर ही आश्रित है। किसान अपनी खेत की बुवाई-जुताई के लिए मेघा गमन की प्रतीक्षा करता है। श्रृंगार रस से सराबोर सुंदर कल्पना करते हुए कवि मेघ के आने पर भ्रूविलास से अनभिज्ञ युवतियाँ प्रेमपूर्ण नजरों से मेघ का स्वागत करेंगी।

मेघदूत में महाकवि कालिदास ने दस से अधिक स्थानों का उल्लेख किया है। कविकुल श्रेष्ठ महाकवि कालिदास ने मेघदूत में माल, दशार्ण, विदिशा, अवंती, उज्जयिनी, दशपुर, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, कनखल और अलका नामक स्थानों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ तो क्षेत्र या प्रदेश विशेष हैं और कुछ नगर क्षेत्र हैं। विदिशा, अवंती और उज्जयिनी प्राचीन भारत के प्रसिद्ध नगर हैं।

---

10. निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य, स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥ पूर्वमेघ 28
11. प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि, ज्ञातास्वादो वितजघनां को विहातुं समर्थः॥ पूर्वमेघ 41

माल प्रदेश, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, दशपुर और कनखल आदि आज भी विशेष पहचान के साथ विद्यमान हैं।

मेघदूत में महाकवि ने केकी, चातक, सारस, पारावर, कस्तूरी मृग, चटुल शफरी, राजहंस, शरभा और बलाकाओं आदि का अलंकारिक परिचय करवाया है। इनमें से कुछ मेघ के सहचर होंगे तो कुछ मेघ के आने से प्रफुल्लित होकर मेघ का स्वागत करेंगे। केतकी के फूलों और जामुन आदि फलों से लदे वृक्षों से संपन्न उपवनों में पक्षियों को घोसलों का निर्माण करते हुए सर्वत्र देख सकते हैं। आज भी हर गली मोहल्ले में नीड निर्माण में संलग्न पक्षियों को बहुधा देख सकते हैं।

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
नीडारम्भैर्गृहवलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।[1]

मेघ के मार्ग में जम्बूफल, कदली, निचुल, ताड़, कीचक, उदुम्बर और वानीर आदि वृक्षों के बारे में उपमानात्मक विवरण प्रस्तुत हैं। पुष्प प्रत्येक मनुष्य के जीवन में प्रसन्नता का द्योतक है। जीवन के हर सोपान में हमें उनकी आवश्यकता पड़ती है। महाकवि ने भी विभिन्न वर्ण एवं सुगंधि वाले पुष्पों का वर्णन मेघदूत में किया है। जपा, कमल, कुमुद कदम्ब, केतकी, कुवलय, यूथिका और नीप आदि का उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारादि युक्त वर्णन दिया है।

निष्कर्ष:-

महाकवि कालिदास विरचित मेघदूतम् प्रकृति प्रेम का एक अहम दस्तावेज है। इसमें प्राचीन भारत के पर्यावरण को बहुत ही सुन्दर एवं काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मेघदूत में कवि ने प्रकृति एवं मनुष्य का अन्योन्याश्रित संबंध दर्शाया है। मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन को एक आवश्यक और आनन्दपूर्ण सुगुंफन के रूप में चित्रित किया है। मेघदूत में कवि ने कल 32 स्थानों का जिक्र किया है। जिसमें से 29 स्थानों का वर्णन महाकवि कालिदास के यक्ष

---

12. पूर्व मेघ - 23

ने मेघ को निर्देश देने के लिए किया है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में प्रकृति के संसर्ग में मानवीय प्रेम के मधुर सम्बन्धों आरोपण किया है। उन्होंने प्रकृति के प्रतिमानों को नायिका या प्रेमिका के रूप में देखा है। मेघदूत का यक्ष चकित हरिणी की दृष्टि में अपनी यक्षिणी के कटाक्षों का अनुभव करता है। मेघदूत प्रकृति और मानवीय प्रेम के सह-अस्तित्व का सर्वोत्तम ग्रंथ कहा जाए तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति॥[1]

पिंजरे में बंद मैंना से अपनी विरह अवस्था की तुलना करते हुए यक्षिणी वार्तालाप करती है। रक्षिणी पूछती है कि "हे रसिके! स्वामी की याद कर रही हो।" क्योंकि तुम उनकी प्यारी हो। इस प्रकार मैना से आलाप करते हुए यक्ष की प्रेयसी अपने समय को बिता रही है। अपनी विरह दशा का वर्णन कर रही है। मेघदूतम् के प्रत्येक पद में प्रकृति के आकर्षण और अनुदान का चित्रण है। मेघदूतम् गीतिकाव्य में पद-पद पर प्रकृति के सौंदर्य का प्रतिनिधित्व पिरोते हुए महाकवि ने मेघदूतम् नाम से विलक्षण दूतकाव्य की रचना की है।

13. उत्तर मेघ - 22

दृश्य साहित्य में पर्यावरण चिन्तन

विनीता, शोधच्छात्रा
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

विश्व के समस्त साहित्यों में संस्कृत साहित्य प्राचीनता तथा व्यापकता की दृष्टि से श्रेष्ठतम है। यह न केवल भारत के प्राचीन भाषाओं और साहित्यों के लिए, बल्कि विश्व साहित्य के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करने वाला साहित्य है।

संस्कृत साहित्य लौकिक और अलौकिक भेद से दो प्रकार के हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य का तात्पर्य संस्कृत साहित्य के दृश्य तथा श्रव्य काव्य से है, जो कि रमणीयता, आह्लादकता तथा रसास्वादन की दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त अलौकिक साहित्य का तात्पर्य वैदिक साहित्य से है, जिसका संबंध वेदों से है।

संस्कृत साहित्य के प्रचीनतम ग्रन्थ वेदों में दृश्यकाव्य का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ ऋग्वेद के सूक्तों में सोम विक्रय के समय होने वाले अभिनय का प्रतिपादन अत्यन्त रोचक तरीके से किया गया है। वहीं यजुर्वेद के वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में "शैलूष" शब्द आया है। जिसका अर्थ अभिनेता होता है। सामवेद में संगीत है। अतः वैदिक युग में भी नाटक के विकास के लिए अपेक्षित उपादान प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था।

दृश्य काव्य को लौकिक साहित्य में नाट्य, रूपक, रूप आदि वाचक शब्दों से भी जाना जाता है। नाटक को रूपक के समस्त प्रकारों में प्रमुख माना गया है। नाट्य में सभी प्रकार के भावों और अवस्थाओं का सशक्त चित्रण किये जाने के कारण इसको कवित्व-शक्ति की अन्तिम कसौटी भी कहा गया है- **नाट्कान्त कवित्त्वम्** अर्थात नाटक कवित्त्व-शक्ति की अन्तिम सीमा है। इतना ही नहीं अपितु नाट्य की सशक्तता को महत्त्व देते हुये इसे **काव्येषु नाटकं रम्यम्** कहकर सभी काव्यों में भी श्रेष्ठतम माना गया है। संस्कृत के

कवि काव्य के सौन्दर्य तथा माधुर्य के उपासक रहे हैं। वे मानव-दृश्य के भाव को समझने में जितने कृतकार्य हैं, उतने ही वे बाह्य प्रकृति के रहस्यों को परखने में भी समर्थ हैं। बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म विवेचन संस्कृत साहित्य के प्रचीन ग्रंथ वेदों में प्राप्त हैं।

संस्कृत के सभी कवियों ने स्व-कृतियों में पर्यावरण के महत्त्व को अपने-अपने दृष्टिकोण से सूक्ष्म रूप से विवेचित किया है। संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि महाकवि कालिदास एक निपुण नाटककार रहे हैं। उन्होंने अपनी सभी कृति में पर्यावरण के सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध् नाटक "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" में पर्यावरण के प्रत्येक पक्षों का सूक्ष्म विवेचन किया है। "**कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्**" इस कथन के अनुसार अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में कालिदास की काव्य-नाट्य प्रतिभा अपने चरम पर दृष्टिगोचर होती है। यह नाटक न केवल संस्कृत वाङ्मय में बल्कि सम्पूर्ण विश्व साहित्य में पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन की शिक्षा देती है। कालिदास इस नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में पर्यावरण के प्राकृतिक तत्त्वों का निरूपण करते हुए कहते हैं-

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति वधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्याक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥[1]

महाकवि कलिदास ने अपने नाटक के नान्दी में अष्टरूपधारी भगवान शिव की स्तुति के साथ प्रकृति के मूल तत्त्वों का वर्णन किया है। स्रष्टा की आदि रचना जल, अग्नि, यजमान, सूर्य-चन्द्रमा, श्रुतिविषयगुणा आकाश, सर्वबीज प्रकृति, धरित्री पृथ्वी तथा प्राणस्वरूप वायु के रूप में अष्टमूर्ति शिव को सम्पूर्ण सृष्टि के धारक प्रकृति के सर्जन व संहारक देवता को पर्यावरणीय आभा के प्रतीक

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/१

बताया है। इस प्रकार इन सभी आठ तत्त्वों के क्रिया से समुद्र, नदी, पर्वत आदि भौतिक तत्त्व बने हैं तथा इन्ही से वनस्पतियाँ, जन्तु एवं मनुष्य आदि जैविक तत्त्व भी निर्मित हुए हैं।

कालिदास मानव सौन्दर्य से अधिक उत्कृष्ट प्रकृति सौन्दर्य को मानते हैं। क्योंकि मानव सौन्दर्य की अभिवृद्धि प्रकृति सौन्दर्य से ही होती है। इसलिए कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए सर्वत्र प्राकृतिक उपमानों का ही उपयोग किया है। जैसे कि कहा गया है-

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै।"[1]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई के समय वन तथा वृक्षों के द्वारा लाक्षारस, मांगल्य तथा क्षौमवस्त्रादि दी जाती है। जिसका वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं-

क्षौमं कनचिदिन्दु पाण्दतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्।
निष्ठयूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित।।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै।
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेद प्रतिद्वन्द्विभिः।।[2]

अर्थात् भर्तृगृह जा रही शकुन्तला को किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिए हैं, तो किसी वृक्ष ने पैरों को रंगने योग्य लाक्षारस (महावर) प्रदान किये हैं। इसी प्रकार अन्य वृक्षाधिष्ठित देवताओं के द्वारा अपने कर पल्लवों से आभूषण दिए गए। इसका अभिप्राय यह है कि वन-देवताओं के हाथों से प्राप्त आभूषणों से शकुन्तला के अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति को दर्शाता है। इसमें महर्षि कण्व के तपस्या के प्रभाव से वन-वृक्षों में चेतनत्त्व की विशेषता को प्रकट की गई है। शकुन्तला को महर्षि कण्व विदाई करते हुए कहते हैं कि जो तुम्हें बिना जल पिलाए स्वयं जल नहीं पीती थी,

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २/२५

2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/५

तुम्हारे प्रति प्रेमभाव के कारण जिस अलंकरणों के प्रेमी होने पर भी तुम्हारे नए पत्ते नहीं तोड़ती थी। तुम्हारे पुष्पोद्गम के समय उत्सव होता था, वह शकुन्तला अब पतिगृह जा रही है, अतः तुम सब अपनी स्वीकृति प्रदान करो।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेयुषया।
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।।
आद्ये वः कसुमप्रसूतिसमये यस्य भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[1]

उपर्युक्त पद्य के द्वारा कालिदास ने तपोवन वर्धिता शकुन्तला की वृक्षादि के ऊपर सहोदर-स्नेह की मार्मिकता को उपस्थित करते हुए प्रकृति और मानव के पारस्परिक संबंधों पर मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है।

संस्कृत साहित्य में कालिदास के अलावा अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं में पर्यावरण के महत्त्व का निरूपण किया है। इसी शृंखला में महाकवि भट्टनारायण आते हैं जिनकी रचना वेणीसंहार है जिसमें पर्यावरण के प्रत्येक पक्षों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। उन्होंनें पर्वत, वन, वृक्ष, पुष्प, ऋतुएँ, नदी, वन्यजीव आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। जो कि इस प्रकार है- कुछ पर्वत जैसे- दारूपर्वत पर जाने से सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं, परन्तु यहां का मार्ग अत्यंत दुर्गम बताया है। **दारूपर्वतप्रसादम् उद्वेगकारी खल्पयमुत्थितपरूषराजः कलुषीकृतनयन विदलिततरूवरशब्द-वित्रस्तमन्दुरापरिभ्रष्टवल्लभ-तुरङ्ग-पर्याकुलीकृतजन-पद्धतिर्भीषणः समीरणाऽऽसारः।**[2]

वेणीसंहार के षष्ठ अंक में द्रोपदी को जब भीम के वध की सूचना मिलती है तो वह कहती है- हे नाथ! मेरे तिरस्कार का बदला लेने के लिए आपने बक, हिडिम्ब, कीचक तथा जरासंध का वध

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/९

2 वेणीसंहार पृष्ठ ९५

किया, इतना ही नहीं बल्कि मुझे प्रसन्न करने के लिए आप गन्धमादन पर्वत पर होने वाले स्वर्ण कमल को लाकर देते थे। इससे स्पष्ट होता है कि गंधमादन नामक पर्वत पर स्वर्ण कमल प्राप्त होते होगें। उन्होंनें अनेक नदियों के बारे में भी बताया है। जैसे- सरस्वती, यमुना, चित्रोत्पला, सतलज आदि। वेणीसंहार में कवि सरस्वती नदी का वर्णन इस प्रकार से करते हैं- "**सरस्वती शिशिरतरङ्गस्पृशामारूता च अनेन विगत क्लमो भविष्यामि**" अर्थात् सरस्वती नदी की शीतल तरंगों वाली वायु से शारीरिक थकावट तथा जोर से लगी प्यास दूर हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि नदी का जल साफ-सुथरा व निरोग रहा होगा, जो कि पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिये सबसे जरूरी होता है। स्वच्छ पर्यावरण के लिए वन-वृक्षों जैसे पीपल, तुलसी, बरगद, नारियल, मदहा आदि अनेक वृक्षों की आवश्यकता होती है। उन्होंने ऐसे वृक्षों का भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वे पृथ्वी और वायु के सन्दर्भ में कहते है-

दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांसुदण्डोऽन्तरिक्षे।
झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकार्षैः सधूमः॥
प्रसादानां निकुन्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरघोर।
श्रण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरू! किं सम्भ्रमेण[1]॥

अर्थात् चारों ओर वृक्षों की शाखाओं को फैलाने वाला वायु मार्गों में रेत कंकड़ों से वृक्षों के तने की रगड़ से निकले हुए धुए वाला नवीन मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करते हुये प्रचण्ड पवन चारों ओर बह रहा है।

महाकवि भवभूति ने भी प्रकृति के समग्र रूपों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। दण्डकवन के सन्दर्भ में भवभूति कहते हैं- यह वन प्रान्त कहीं नितान्त शान्त है, तो कहीं भयावह पशुओं की प्रचण्ड ध्वनि से शब्दायमान है, कहीं-कहीं अपने आप ही प्रसुप्त सर्पों के

1 वेणीसंहार, २/९

प्रश्वास से अग्नि निकल रही है, कहीं छोटे-छोटे गड्ढों में जल भरा हुआ है, तो अन्यत्र प्यासे गिरगिट अजगरों के स्वेदद्रव का पान कर रहे हैं।

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रचण्डसत्त्वस्वनाः,
स्वेच्छासुप्तगभीरभोग भुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरल स्वल्पाम्भसो या स्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते।।[1]

इतना ही नहीं महाकवि भवभूति ने छोटी-छोटी पर्वतीय नदियों का परम मनोरम तथा सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। यह नदियां प्राकृतिक पर्यावरणीय महत्त्वों से युक्त हैं। उन्होंनें गोदावरी का वर्णन करते हुए कहा है कि- **'कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः। धर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमरर्चन्ति गोदावरीम्। छायापस्किरमाणाविष्किर मुखव्याकृष्टकीटत्वचः। कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुट-कुलाः कूले कुलायद्रुमा।**[2] अर्थात् गोदावरी नदी के तट पर छाया में रहने वाले पक्षियों के चोंच से कुरेदे जाने पर निकले हुए कीड़े, कलरव करते हुए तथा थके हुए कबूतर व मुर्गों के समूह से युक्त पक्षियों के घोसले वाले वृक्ष, हाथियों के खुजलाहट वाले कपोल भाग की रगड़ से गिरने वाले तथा धूप से शिथिल वृन्तो वाले पुष्पों से गोदावरी नदी की अर्चना की जा रही है।

भास ने अपनी रचना में पर्यावरण के प्राकृतिक तत्त्वों का निष्पक्ष और यथार्थ निरूपण किया है। तपोवन के महत्त्व का चित्रण दर्शनीय है- कहते हैं कि हे तपस्वियों! तीर्थजल, समिधाएं, फूल और कुश इन सब तपस्या के पदार्थों को तपोवन से प्राप्त करें। क्योंकि धर्म को पसन्द करने वाली राजकुमारी तपस्वियों में धर्म में बाधा को नहीं चाहेगी, अतः यह इनकी वंशपरम्परा का आचरण है।

तीर्थोदकानि समिधः कुसमानि दर्भान्स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।

---

1 उत्तररामचरितम्, २/१६

2 उत्तररामचरितम्, २/९

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडामिच्छेत् तपस्विषु
कुलव्रतमतदस्याः॥

सायंकालीन समय का वर्णन करते हुए तपोवन में होने वाले यज्ञादि कार्यो का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि- सभी पक्षी अपने-अपने घोसलों में चले गए हैं। तपस्वीजन स्नान करने लगे हैं। प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है। धुआँ तपस्वियों के वन में चारों ओर फैल रहा है। सूर्य भी किरणों को एकत्रित कर अपने रथ को मोड़कर शनैः-शनैः अस्त पर्वत की चोटी में प्रवेश कर रहे है।

खगाः वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः प्रदीप्तोऽग्निर्भाति
प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति
शनैरस्तशिखरम्॥

संस्कृत नाटककारों ने प्राचीन समय के अनेक वनों का उल्लेख किया है। महाभारत के समय में इन्द्रप्रस्थ के निकट खाण्डव वन बहुत प्रसिद्ध था। इस स्थान पर अर्जुन ने वन्य वस्तुओं को आहुत करके अग्नि को सन्तुष्ट किया था। "**पृच्छाग्निं भुजगाहुतिप्रणयिन यस्तर्पितः खाण्डवे**[1]। शुद्रक ने अपने नाटक में उज्जयिनी वर्णन के प्रसंग में पुष्पकरण्डक नामक जीर्ण उद्यान का मनोरम वर्णन किया है। इस उद्यान में चारूदत्त के भ्रमण करते हुए उनके व्यवहार का चित्रण किया है। यहाँ कृत व्यापारियों के तुल्य, पुष्प विक्रेय वस्तुओं के समान और मधुकर कर वसूलने वाले राजपुरूषों के समान हैं।

वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर-पुरुषाः प्रविचरन्ति।

भारतीय धार्मिक साहित्य में नैमिषारण्य का अधिक महत्त्व है। प्राचीन काल में इसमें घने वन हुआ करते थे और अनेक ऋषि अपना आश्रम बना कर रहते थे। कुन्दमाला नाटक के अनुसार राम ने अश्वमेधयज्ञ का आयोजन यहीं किया गया था। इसी वन के मध्य में

---

1 दूतवाक्यम्, १/२२

गोमती नदी बहती थी, जिसके तट पर कुश-कास तथा अन्य वनस्पतियाँ आदि थे। नदी के जल में कमल खिलते थे।

नलिनवनविकासैर्वासयन्ती दिगन्तान्।
नरवर पुरतस्ते दृश्यते गोमतीयम्।।[1]

संस्कृत नाटकों में नाटककारों ने वनस्पतियों के गृह तथा मण्डपों का उल्लेख किया है। यह पर्यावरण की अभिवृद्धि के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। प्रिय नामक नाटक में वर्णित है कि वाटिकाओं में लताओं व वृक्षों को गृह या मण्डप के रूप में लगाया जाता था। क्योंकि यह ग्रीष्म के सन्ताप को दूर करने, विनोद-विलास करने और विश्राम के लिए यह उपयोगी होता था। विश्राम हेतु कदलीगृह मनोरम स्थान होते थे। **कदलीगृहं प्रविश्य मुहूर्ते तिष्ठावः।।**[2] कदली के पौधे से परिवेष्टित निकुंजों में विश्राम करने के विलासी जन उत्सुक रहते थे और मनोविनोद करते थे। ऐसे स्थान पर विरह से पीड़ित जन भी अपने मन को बहला सकते थे। विरह से पीड़ित जन के मनोविनोद के लिए कवियों ने लतामण्डपों का भी उल्लेख किया है। इसके लिए नवमालिका और माधवी के लतामण्डप अधिक प्रिय थे। विरह से पीड़ित शकुन्तला वेतस लताओं से परिवेष्टित लता मण्डप में अपनी विरह पीड़ा की शान्ति के लिए जाती है। उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि पर्यावरण शारीरिक सुख-शान्ति के साथ-साथ मानसिक तनाव के निवारण का भी साधन व उपाय को निरूपित करते हैं। अतः वर्तमान सन्दर्भ के लिए संस्कृत-साहित्य में वर्णित वन-वृक्ष, लता, पुष्प, पशु-पक्षी तथा वन्य-जीव आदि की रक्षा के संकल्प का अनुपम सन्देश जनमानस को प्रदान करती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:

- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सम्पा. डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, आगरा, महालक्ष्मी प्रकाशन, १९९७

---

1 कुन्दमाला, ३/५

2 प्रियदर्शिका, पृ. ३७

- वेणीसंहारम्, व्या. आदित्यनारायणपाण्डेय, वाराणसी, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, २००३
- उत्तररामचरितम्, सम्पा. डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी, बनारस, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, १९४९
- दूयवाक्यम्, सम्पा. डॉ. गंगासागरराय, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, १९८९
- कुन्दमाला, अनु. वागीश्वर विद्यालंकार, जालन्धर, भारतीय संस्कृत भवन, १९९६
- प्रियदर्शिका, वाराणसी, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, २००६

इतिहासपुराणकाव्येषु पर्यावरणचिन्तनम्

Dr. R Seshadri
Dr. R Bharanidharan
Swami Dayananda College of Arts & Science
Manjakkudi, Tiruvarur Districr, Tamilnadu

परि+आवरण' इति संयोगेन परिवेशशब्दस्य निर्माणं भवति। 'परि' इत्यर्थः समन्ततः 'आवरण' इत्यर्थः परिवेशः। अन्येषु शब्देषु पर्यावरणस्य अर्थः वनस्पतयः, पशवः, मानवजातिः च समाविष्टाः सर्वे जीवाः सन्ति तथा च तेषां सह सम्बद्धं भौतिकं वातावरणं पर्यावरणम् इति कथ्यते। वस्तुतः वातावरणे वायुः, जलः, भूमिः, वृक्षाः, वनस्पतयः, पशवः, मनुष्याः, तेषां विविधक्रियाणां परिणामाः इत्यादयः सन्ति।

पर्यावरण संरक्षण-

विज्ञानक्षेत्रे असीमितप्रगतेः, नूतनाविष्कारस्य स्पर्धायाः च कारणात् अद्यतनः मनुष्यः प्रकृतिं पूर्णतया जितुम् इच्छति। अस्य कारणात् प्रकृतेः सन्तुलनं बाधितं जातम्। वैज्ञानिकसिद्धीनां कारणात् मनुष्यः प्राकृतिकसन्तुलनं अवहेलनापूर्वकं पश्यति। अपरपक्षे पृथिव्यां जनसंख्यायाः निरन्तरवृद्ध्या औद्योगिकीकरणेन, तीव्रनगरीकरणेन च प्रकृतेः हरितक्षेत्राणि नष्टानि भवन्ति। अपरपक्षे प्रकृतेः अतिशोषणात् न केवलं मानवजातिः अपितु पृथिव्यां सर्वे जीवाः एतादृशे वातावरणे धक्कायन्ते यत्र स्वस्थजीवनस्य कल्पना एव कर्तुं शक्यते। प्रकृतेः अतिशोषणेन समाजे ये विविधाः नवीनाः रोगाः उत्पन्नाः ते प्रकृत्या अतिआधुनिकत्वस्य अभिनयस्य परिणामेण मनुष्याय दत्ताः दानाः सन्ति।

पर्यावरणरक्षणस्य विधयः-

पर्यावरणस्य रक्षणं वर्तमाने सर्वस्य मानवजातेः कृते महती आवश्यकता अस्ति। आधुनिके काले प्रदूषणेन जातानि दुष्परिणामानि दीर्घकालिकानि च अतिशय घातकानि च सन्ति। यथा

आणवविस्फोटात् उत्पन्ना रेडियोधर्मिता, वायुमण्डले तापवृद्धिः, ओजोनमण्डलस्य हानिः, भूक्षरणं च। प्रत्यक्षदोषरूपेण जल-वायुव्यवस्थयोः दूषणं, वनस्पतीनां विनाशः, नवनवीनरोगैः मानवस्य पीडनं च दृश्यते।

विशालकारखतानां विषाक्तजलत्यागः, प्लास्टिकादिकचरेण च प्रदूषणस्य मात्रा सततम् वर्धते। अस्मिन् सन्दर्भे सर्वप्रथमं जलस्य रक्षणं अति आवश्यकं। गृहजनितं मलिनजलम्, कारखतानां दूषितम् उदकं, नालिकाभ्यः वहमानं मलं, सीवरनालिकाजलं च नद्यादिषु न पतन्तु। एषः प्रयत्नः आवश्यकः। रसायनयुक्तं कारखताजलं जलचराणां जीवनं नाशयति, कृषिक्षेत्राणि अपि विषाक्तानि भवन्ति, फलतः उत्पन्नानि धान्यानि अपौष्टिकानि सन्ति, यैः मानवः रोगग्रस्तः भवति।

अतः यदि स्वस्य भाविनं सुरक्षितं द्रष्टुं इच्छामः, तर्हि बालान् प्रतिअयं विषयः शिक्षायितव्यः। स्वास्थ्यं वस्त्रसौन्दर्यात् श्रेयः, यतः तदेव भविष्यस्य पूँजिः अस्ति। वायुप्रदूषणं अपि पर्यावरणस्य घातकशत्रुः जातम्। महानगराणां चिम्नीनः, यानवहनानां धूमः, इन्धनजन्यगैसः, वातायनयन्त्रेभ्यः, जनित्रेभ्यः च कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्रोजन, सल्फ्यूरिक अम्लः, नाइट्रिक अम्लः च निरन्तरं वायुमण्डले संमिश्र्यन्ते। वस्तुतः, वायुप्रदूषणं सर्वव्याप्तम् अभवत्।

एवमेव, ध्वनिप्रदूषणः अपि मानवस्वास्थ्याय अत्यन्तं हानिकारकः। ग्रामेभ्यः अपि इदानीं ध्वनिविस्तारकप्रयोगः आरब्धः। विवाहसमारम्भे, जन्मोत्सवे च उच्चकोलाहलः आवश्यकत्वेन स्वीकृतः। कलकलायमानानि वाहनानि, उद्योगसंस्थायाः यन्त्राणां घोषः च मानवस्य श्रवणशक्तिं हन्यते, मस्तिष्के च प्रतिकूलं प्रभावं

करोति। जलं, वायुः, ध्वनिः च इत्येतानि त्रीणि प्रदूषणरूपाणि मनुष्यस्य बालानां च स्वास्थ्यं विनाशयन्ति। ऋतुव्यवस्था विकृतिः, सुनामी, अतिवृष्टिः, अनावृष्टिः च एतेषां कारणानि प्रदूषणेन सह सम्बद्धानि। अतो हि 'पञ्चमे जूनमासे' 'पर्यावरणदिवसः' इत्याख्यया समस्ते विश्वे मन्यते।

सर्वं प्रदूषणं निवारयितुं यथाशक्ति प्रयत्नाः क्रियन्ताम्। प्रथमतः जनसंख्यायाः नियन्त्रणम्, द्वितीयतः वनों पर्वतानां रक्षणम् अपेक्षितम्। पर्वते वसन्तः जनाः दहनार्थं वृक्षान् छित्वा दग्धवन्तः। अनेन सम्पूर्णवनानि नश्यन्ति। अतः, लघुसंख्यकग्रामाणां पुनर्वासः समतले कर्तव्यः, येन पर्वत-वनरक्षा साध्यते।

भारतीयमहाकाव्येषु पर्यावरणरक्षणम्-

भारतीयसंस्कृतेः प्राचीनग्रन्थेषु यथार्थं पर्यावरणचिन्तनं सुस्पष्टं दृश्यते। विशेषतः रामायणमहाभारतयोः महाकाव्ययोः लोके प्रसिद्धयोः पर्यावरणरक्षणाय गम्भीरं सन्देशं दत्तं दृश्यते। रामायमहाभारते च पर्यावरणस्य रक्षणस्य महत्वं विशदीक्रियते। तत्र प्रकृतेः सह सौहार्दं, संसाधनानां सत्कारः च प्रतिपाद्यते, यत् अद्यापि प्रासंगिकं अस्ति। रामायणे रामः सीता च वने वसतः, प्रकृतेः सह यथायोगं जीवितं यापयतः। किष्किन्धायाः राजा सुग्रीवः, हनुमान् च वनस्पतीनां, पशूनां च आदरं दर्शयन्ति।

महाभारते पर्यावरणसंरक्षणम्-

महाभारतस्य शान्तिपर्वणि युधिष्ठिराय राजधर्मस्य उपदेशः दत्तः, यस्मिन् संसाधनानां संरक्षणं पर्यावरणस्य च सम्मानः समाविष्टः अस्ति। महाभारते वनानां अन्येषां च प्राकृतिकसंसाधनानां महत्त्वम् उल्लिखितम् अस्ति, यः अद्यापि प्रासङ्गिकः अस्ति।

वेदेषु पर्यावरणसंरक्षणस्य महत्त्वं स्पष्टं व्यक्तम् अस्ति। मानवः पृथिव्याः रक्षणाय आदेशितः अस्ति। कालिदासस्य काव्येषु प्रकृतेः सौन्दर्यस्य विस्तृतं वर्णनं कृतम् अस्ति। सः मानवतायै प्रकृतेः

सह सामञ्जस्यस्य संदेशं दत्तवान्। सन्तसाहित्ये अपि पर्यावरणे जागरूकता तथा प्राकृतिकसंसाधनैः सह सौहार्दस्य पालनं उपदिष्टम् अस्ति।

भारतीयेषु महाकाव्येषु च अन्येषु साहित्यकृतिषु पर्यावरणसंरक्षणस्य महत्त्वं प्रकाशितम् अस्ति। एताः कृतयः अस्मान् प्रेरयन्ति यत् वयं प्रकृतेः सह सामञ्जस्यं स्थापयेम तथा च तस्याः संसाधनानां सम्मानं कुर्म। **प्राचीनभारतीयसाहित्ये च संस्कृतीषु,** विशेषतः वेदेषु महाकाव्येषु च, पर्यावरणसंरक्षणस्य स्पष्टः संदेशः दत्तः अस्ति। भारतीयदर्शनं सर्वेषु मानवीयेषु प्रयासेषु सन्तुलनस्य आवश्यकता सम्यक् अवगतम्। एषः दृष्टिकोणः अद्यापि पर्यावरणेन सह अस्माकं सम्बन्धान् सुधारयितुं साहाय्यं कर्तुं शक्नोति।

रामायणे पर्यावरणम्-

रामायणे भगवतः रामस्य राज्यम् अयोध्या, किष्किन्धा, लङ्का च पर्यावरणदृष्ट्या विभिन्नरूपेण दर्शितम् अस्ति। अयोध्यायां नागरिकाणां जीवनं शान्त्या च सामञ्जस्येन च युक्तम् आसीत्, यत्र ते प्रकृतेः सह संतुलितं जीवनं यापयन्ति स्म। किष्किन्धा राज्यं वानरैः शासितम्, प्रकृतेः सह घनसम्बन्धं यत्र दृश्यते, जैवविविधतायाः संरक्षणं च तत्र दृष्टम्। लङ्कायाः रावणस्य अत्याचारयुक्तं शासनं प्रकृतेः अतिक्रूरशोषणं च अन्ततः तस्य विनाशाय कारणं जातम्।

रामायणे विविधानां आश्रमाणां गुरुकुलानां च उल्लेखः दृश्यते, ये जैवविविधतया परिपूर्णाः आसन्। ऋषीणां आश्रमेषु प्राकृतिकसंसाधनानां सामञ्जस्यपूर्णं उपयोगः कृतः। यदा भगवान् रामः, सीता च लक्ष्मणः च वनवासं गच्छन्ति स्म, तदा ते पर्यावरणेन सह सामञ्जस्यपूर्णं जीवनं यापयामासुः, आदर्शं च प्रस्तुतवन्तः। रामायणे प्रायः ५०० स्थलेषु भारतस्य ऋतुपरिवर्तनं, प्राकृतिकसम्पदा च उल्लिखिता अस्ति। तत्र १२५ वृक्षप्रजातयः, ३० स्तन्यप्रजातयः, १५ पक्षिप्रजातयः, अन्ये च समुद्रीजीवाः वर्णिताः

सन्ति। रामायणे भगवान् रामस्य चरित्रं केवलं धार्मिकं न, अपि तु प्रकृतिसंरक्षणस्य आदर्शरूपेण अपि वर्तते। रामः वनवासे स्थित्वा वृक्षान्, जलाशयान्, पशून् च सादरं पश्यति। तेन यत्र तत्र आश्रमेषु ऋषयः स्वभावतः जैवविविधतां संरक्षन्तः निवसन्ति। किष्किन्धायां वानराणां जीवनं वनजं, प्रकृतिसंयुक्तं च आसीत्। लङ्कायां तु रावणेन प्रकृतेः अतिक्रमः कृतः, यस्य फलरूपेण लङ्कानाशः जातः। एषा कथा प्रदर्शयति यत् प्रकृतेः अपमानः अन्ततः विनाशाय एव भवति।

अद्यतनकाले भारतस्य पारम्परिकज्ञानं प्राचीनमहाकाव्येषु दीयमानं पर्यावरणसम्बद्धं बोधं च पुनः अवगन्तुं आवश्यकता अस्ति। भारतस्य केषुचित् विश्वविद्यालयेषु, यथा **एम्.आइ.टी. वैदिकविज्ञानविद्यालये, पुणे**, पाठ्यक्रमाः सन्ति ये भारतीयमहाकाव्यानां प्रासङ्गिकतां च पर्यावरणशिक्षां च संगृह्णन्ति।

महाभारते पर्यावरणम्-

महाभारते अपि शान्तिपर्वे युधिष्ठिरेण वने जीवनं गत्वा प्रकृतिसौन्दर्ये रमणीयता अनुभूता। तेन प्रतिज्ञातं यत् वन्यप्राणिनः तेन न बाध्यन्ते। भीष्मपितामहः, वेदव्यासः च ऋतुकालस्य, जलवायुपरिवर्तनस्य, चन्द्रार्कादीनां पर्यावरणे प्रभावस्य विवेचनं कुर्वन्ति। वृक्षच्छेदनं पापरूपेण वर्ण्यते। एते सन्देशाः तात्त्विकं पर्यावरणबोधनं दर्शयन्ति।

युद्धस्य समाप्त्यनन्तरं महाकाव्यस्य अयं भागः शासनस्य, प्रशासनस्य, राज्ञः च कर्तव्येषु विस्तरेण चर्चां करोति। सः संसाधनानां संरक्षणस्य आवश्यकतां अपि बलवद् रूपेण प्रकाशयति। सर्वेषां प्राणिनां कल्याणं सुनिश्चितुं राज्ञः दायित्वं अस्ति इति एषः खण्डः प्रतिपादयति, च सर्वेषां प्राणिनां हिंसा न कर्तव्या इति अपि सूच्यते। बहिलकबूतरयोः कथा पाठकान् वन्यजीवानां रक्षणाय प्रेरयति, च शिकारात् पराङ्मुखं भवितव्यमिति बोधयति। युधिष्ठिरः

स्वेच्छया भौतिकजीवनं परित्यज्य वनं गन्तुं इच्छन् कथयति यत् सः तत्र विहङ्गानां मृगाणां च मधुरं निनादं श्रोतुम् इच्छति, यः चित्तं कर्णं च आकर्षयति। सः वने उत्पद्यमानानां पुष्पितवृक्षलतानां च गन्धेन आनन्दं अनुभवति इति वर्णयति। सः प्रतिजानाति यत् वनवासे कोऽपि प्राणी तेन न बाध्यते।

शान्तिपर्वणि महर्षिः वेदव्यासः ऋतुकालस्य महत्त्वं स्वानुभवस्य आधारपर्यन्तं प्रकृतेः दृष्टान्तैः सूचयति, यत् तस्मिन्काले पर्यावरणं विशुद्धम् अछिन्नं च आसीत्। चन्द्रस्य कला, तीव्रवाताः, आर्द्रमेघाः, दीर्घरजनी, पूरितनद्यः इत्यादयः कालपरिस्थित्या नियोजिताः भवन्ति इति तेन विवृतम्। सः सरसां सौन्दर्यं, पुष्पैः विराजितवृक्षान्, ऋतुनुसारं प्रमोदितान् विहङ्गमृगांश्च वर्णयति। अन्यस्मिन् स्थले, सः वनं छित्त्वा वृक्षच्छेदनं पापरूपेण निरूपयति। भीष्मः अपि स्वं ज्ञानं विवृण्वन् एकस्य तपस्विनः दृष्टान्तं दत्तवान्, यः महावने वसन् केवलं फलानि मूलानि च सेवनं कृत्वा योगाभ्यासं च कुर्वन् आत्मेन्द्रियजयः प्राप्तवान्। तस्य तपस्विनः सर्वेषु प्राणिषु प्रेम आसीत्। सिंहाः व्याघ्राः गजाः च तेन सह निर्विघ्नं वर्तन्ते स्म। एषः दृष्टान्तः योगेन प्राप्तशक्तेः च वन्यजीवविविधतायाः च साक्षात्कारं ददाति।

भगवद्गीतायां पर्यावरणसंरक्षणम्-

भारतदेशे एव न केवलं, अपितु समग्रे लोके पूजिता भगवद्गीता केवलं कर्तव्यानां कर्मणां च निर्देशं न ददाति, अपितु स्थैर्यस्य च सन्तुलनस्य च व्यापकचिन्तनं प्रकाशयति। गीता असङ्ख्यशः उपभोगे लोलुपता असुरीप्रवृत्तेः लक्षणम् इति प्रतिपादयति। सः भौतिकवादं च संरक्षणं च संतुलयितुं मनसः स्थैर्यं आवश्यकं इति बोधयति। विचलनशीलं मनः यदि संयम्यते तर्हि स्थिरता साध्या भवति। अतः गीता भौतिकपटलतः आरभ्य आध्यात्मिकतां प्रति नेतुं प्रयत्नं करोति। गीता अन्नभोजनाय जीवितं वा जीवनेन अन्नसेवनं इति भेदं स्पष्टं करोति। योगस्य सम्यक्

अवबोधनं तस्य च आचरणं, इन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च अनुशासनाय आवश्यकम् इति गदति। गृहस्थेऽपि अपि सन्, संतुलितजीवनं यः आचरति, सः प्रसन्नः भवति, तस्य कर्माणि स्वस्य च जगतः च हिताय भवन्ति। लोकमान्यतिलकस्य गीतारहस्ये, भगवद्गीता मनुष्यं स्वपरिवारस्य समाजस्य च कर्तव्येभ्यः विमुखं कृत्वा, केवलं संन्यासमार्गं न स्वीकरोतु, अपि तु कर्तव्यानुष्ठानं कुर्वन् अपि आध्यात्मिकं लक्ष्यं प्राप्तुं शक्यते इति प्रतिपादयति। गीता प्रतिपादयति यत् एकं सार्वभौमचैतन्यं सर्वेषु सजीवनिर्जीवेषु विद्यमानम् अस्ति। एषा दृष्टिः सर्वाणि भूतानि सखायः इति बोधं जनयति। गीता संसाधनानां "शोषणं" न, अपि तु "दोहनं" इति तत्त्वं प्रस्तौति। नवीकरणीयसंसाधनानां युक्त्या उपयोगः कर्तव्यः, अपि तु तान् समाप्तान् न कर्तव्यः। अतीव उपभोगे यः प्रवृत्तः, सः संयमं सम्यक् न जानाति इति गीता बोधयति। एवं भगवद्गीतायाम् अपि मनसः शुद्धिः, सन्तुलितजीवनं, असङ्गः, संयमः च पर्यावरणरक्षणस्य मूलानि प्रतिपाद्यन्ते। "युक्ताहारविहारस्य" इति सूत्रेण सात्त्विकजीवनम् उपदिश्यते, यत्र प्रकृत्या सह सामञ्जस्यं भवति।

एवं दृष्ट्वा ज्ञायते यत् भारतीयमहाकाव्येषु पर्यावरणस्य विषयः केवलं भौतिकस्तरस्य चिन्तनं न, अपि तु आध्यात्मिकदृष्ट्या अपि महत्त्वपूर्णं आसीत्। एते ग्रन्थाः अस्मान् प्रेरयन्ति यत् प्रकृतिः न केवलं उपयोगाय अस्ति, अपि तु उपास्येया इति। प्रकृतेः संरक्षणं धर्म एव इति तत्त्वं प्राचीनभारतीयदर्शने प्रतिपादितम्।

भारतीयमहाकाव्येषु पर्यावरणचिन्तनं गूढरूपेण निहितम् अस्ति। आधुनिके काले, अस्माभिः तस्य पुनरवलोकनं कृत्वा, पर्यावरणरक्षणे तानि सिद्धान्तानि व्यवहारतः अवलम्बनीयानि स्युः।

महाकवेः कालिदासस्य काव्येषु पर्यावरणचिन्तनम्-

भारतीयकाव्यपरम्परायाम् कालिदासः प्रकृतिचिन्तनस्य शिरोमणिः इति ख्यातः। सः कवितायाः माधुर्येन, रसबोधेन, च प्रकृतिसौन्दर्यस्य चित्रणेन विशेषतः प्रसिद्धः। तस्य काव्येषु केवलं प्रकृतेः वर्णनं न दृश्यते, अपि तु तस्य संरक्षणे गम्भीरः सन्देशः अपि निहितः अस्ति। कालिदासस्य *ऋतुसंहारे*, *मेघदूते*, *कुमारसम्भवे*, *अभिज्ञानशाकुन्तले* च प्रकृतेः विविधरूपेषु विमर्शः दृश्यते।

ऋतुसंहारे-

ऋतुसंहारः कालिदासस्य प्रथमकाव्यम् इति गण्यते। अस्मिन् काव्ये छः ऋतूनां सौन्दर्यं, पर्यावरणीयपरिवर्तनं, च जीवजन्तूनां आचरणं सजीवमिव चित्रितम् अस्ति। प्रत्येकस्य ऋतोः विशिष्टा भूमिका, प्रकृतिसह जीवनस्य सौन्दर्यं च वर्ण्यते। एषः ग्रन्थः ऋतुविज्ञानं च प्रदर्शयति।

मेघदूते-

मेघदूतम् एकं दूतकाव्यम् अस्ति, यत्र यक्षः मेघं दूतं कृत्वा स्वप्रेयस्यान्तिकं सन्देशं प्रेषयति। तत्र मार्गवर्णनं कुर्यात् सन्देशः, तत्र हिमालयः, गङ्गा, काननानि, पशुपक्षिणः, पुष्पाणि, पर्वतानि च अत्यन्तं रमणीयरूपेण वर्णितानि सन्ति। यक्षस्य दृष्ट्या, मेघः न केवलं जलदः अस्ति, किन्तु जीवितस्य धारणायः आधारः अपि अस्ति। तेन जलचक्रस्य, वनस्पतिपोषणस्य च महत्त्वं अप्रत्यक्षरूपेण प्रतिपादितम्।

कुमारसम्भवे-

कुमारसम्भवे हिमालयस्य वर्णनं कालिदासेन अत्युत्तमरीत्या कृतम् अस्ति। ***अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।*** *(कुमारसम्भवम् 1.1)* एषः श्लोकः दर्शयति यत् हिमालयः केवलं पर्वतः न, अपि तु देवतात्मा -

दिव्यस्वरूपः च। हिमालये वसन्ति वनानि, सरितः, मृगाः, पक्षिणः, ऋषयः च - इदं सर्वं दर्शयति प्रकृतिसंरक्षणस्य आदर्शम्।

अभिज्ञानशाकुन्तले-

अभिज्ञानशाकुन्तले अपि प्रकृतिः एकः प्रमुखः पात्रः इव वर्तते। शकुन्तलायाः बाल्यं कन्याश्रमस्य वने व्यतीतम्। तस्याः सहपाठी मृगाः, पक्षिणः, पुष्पाणि च। सा प्रकृतेः आत्मभावेन पालनं करोति ***मृगशावकं वात्सल्येन पालयन्ती शकुन्तला।*** एते दृश्याः दर्शयन्ति यत् कालिदासस्य दृष्ट्या मनुष्यः प्रकृतेः रक्षकः, न तु स्वामी। कालिदासस्य काव्येषु प्रकृतिः न केवलं भङ्गीमात्रा, किन्तु एकं सजीवं तत्त्वम् इति अनुभूयते। सः प्रकृतिं सहचर्येण पश्यति, न केवलं उपभोगाय। अस्य दर्शनं अस्मान् शिक्षां ददाति यत् यथार्थे प्रकृतिः पूजनीया, रक्षणीया च।

अत एव, कालिदासस्य काव्येषु पर्यावरणचिन्तनं केवलं सौन्दर्यप्रशंसा न, अपि तु संरक्षणाय जागरूकता च अस्ति। आधुनिके काले, तस्य चिन्तनं अस्माकं पर्यावरणीयनीतिषु मार्गदर्शकं भविष्यति।

आयुर्वेदपर्यावरणयोः अन्तःसंबन्धः-

भारतीयं परम्परागतं वैद्यशास्त्रम्, आयुर्वेदः च केवलं रोगनिवारणाय न, अपि तु समग्रस्वास्थ्यविज्ञानस्य आधारभूतं शास्त्रं अस्ति। अस्य आयुर्वेदस्य मूलं प्रकृतेः समीपस्थं चिन्तनं अस्ति। आयुर्वेदे "जीवितस्य आयुः वेदः" इति परिभाषा दृश्यते, यत्र स्वस्थजीवनस्य हेतुः प्रकृतिसंवत्सरं जीवनम् उपदिश्यते।

पञ्चमहाभूतसिद्धान्तः-

आयुर्वेदे पञ्चमहाभूतानि पृथिवी, आपः, तेजः, वायुः, आकाशः च सर्वेषां जीवितव्यवस्थायाः मूलानि इति कथ्यन्ते। देहः, मनः, आहारः, औषधं च एतेषां महाभूतानां सन्तुलनतः एव स्वस्थं

भवति। यदि पर्यावरणे अयं सन्तुलनं बाध्यते, तर्हि देहे अपि विकाराः जायन्ते।

त्रिदोषसिद्धान्तः-

वातः, पित्तम्, कफः इति त्रयो दोषाः अपि पञ्चमहाभूतनिष्पन्नाः सन्ति। पर्यावरणस्य विकृतिः यथा वायुप्रदूषणं, जलदूषणञ्च एते दोषान् असन्तुलितान् कुर्वन्ति। अतः आयुर्वेदः पर्यावरणस्य शुद्धतायाः महत्त्वं प्रतिपादयति।

ऋतुकालः एवं आहारविहारः-

आयुर्वेदे "ऋतुचर्या" इत्यपि एकः विशेषः भागः अस्ति, यत्र ऋतूनुसारं आहारविहारविधानं निर्दिष्टम् अस्ति। ऋतूनां परिवर्तनं, जलवायुसम्बन्धः च आरोग्ये प्रभावं कुरुतः। तस्मात् ऋतुविज्ञानं, पर्यावरणबोधनं च आवश्यकं भवति।

औषधीयवनस्पतयः-

आयुर्वेदे प्रायः सर्वाः औषधयः वनस्पतिमूलकाः भवन्ति। अश्वगन्धा, तुलसी, नीमः, हरिद्रा, ब्राह्मी इत्यादयः औषधयः पर्यावरणे एव सम्भवन्ति। यदि वनानि न स्युः, तर्हि आयुर्वेदः निष्फलः स्यात्। अतः औषधीयपादपसंरक्षणं, वनरक्षणं च आयुर्वेदस्य मूलं भविष्यति।

द्रव्यगुणविज्ञानम्

प्रत्येकं औषधीयद्रव्यं पृथिव्याः, जलस्य, तेजसः च प्रभावं वहति। द्रव्यगुणविज्ञाने द्रव्यस्य देशः, कालः, अग्निः, मात्रा, चित्तवृत्तिः च विचार्यते। एषा विचारणा दर्शयति यत् पर्यावरणस्य गुणाः औषधगुणेषु परावर्तन्ते।

एवं दृष्ट्वा ज्ञायते यत् आयुर्वेदे पर्यावरणस्य स्थानं अत्यन्तं प्रमुखम् अस्ति। स्वास्थ्यं केवलं शरीरस्य स्थितिः न, अपि तु मानवः प्रकृतेः सह सुसंबद्धं जीवनं यापयेत् इति तत्त्वं आयुर्वेदे स्पष्टम्।

यद्यद्यत् वयं पर्यावरणं रक्षामः, तावत् आयुर्वेदस्य प्रभावः अपि दीर्घकालपर्यन्तं स्थित्यर्थं भवति। अनेन प्रकारेण "आयुर्वेदः" च "पर्यावरणः" च अन्योन्याश्रितौ, अपृथग्भावौ च सन्ति।

दृश्यसाहित्ये पर्यावरणचिन्तनम्-

दृश्यसाहित्यं नाम चलचित्राणां, नाट्यकृतीनाम्, दूरदर्शनकार्यक्रमाणां च समूहः अस्ति, यत्र शब्दैः सह दृष्टिपथेनापि संदेशप्रसारणं क्रियते। अस्य माध्यमस्य प्रभावः अतीव गम्भीरः अस्ति, यतः इदं प्रत्यक्षं दर्शकमनसि संवेदनां जनयति।

अद्यतनकाले दृश्यसाहित्यम् अपि पर्यावरणरक्षणस्य महत्त्वं बोधयति, चेतनां जनयति, च मानवजीवनस्य प्रकृतिसम्बद्धस्य स्वरूपं चित्रयति।

चित्रपटेषु पर्यावरणम्-

बहुषु चलचित्रेषु वृक्षाणां, वन्यजीवनस्य, जलप्रदूषणस्य च वर्णनं दृश्यते। कानिचन चलचित्राणि पर्यावरणविनाशस्य दुष्परिणामान् चित्रयन्ति। एतेषां द्वारा दर्शकाः वनरक्षणं, जलसंरक्षणं, पर्यावरणीयसन्तुलनस्य आवश्यकीयत्वं च बोधयन्ति। दृश्यरूपेण प्रकृतिसौन्दर्यस्य दर्शनं मनसि प्रभावं करोति यः शब्दैः दुराराध्यः।

नाट्यकृतीषु पर्यावरणचिन्ता-

भारते प्राचीनात् एव नाट्यकला अस्ति। कालिदासेन रचितं *"अभिज्ञानशाकुन्तलम्"* नाम नाटकं वनजीवनस्य महत्त्वं प्रकटयति। शाकुन्तला ऋषिकण्वस्य आश्रमे प्रकृतिसंरक्षणयुक्तं जीवनं यापयति। आधुनिकनाट्यकृतिषु अपि *"वनरक्षा नाटकं"*, *"जलमेव जीवनम्"*, *"वृक्षारोपणाय"* इत्यादिषु पर्यावरणसंरक्षणस्य स्पष्टसंदेशः दृश्यते।

दूरदर्शनं व पर्यावरणविज्ञानम्-

दूरदर्शने पर्यावरणविषये वृत्तचित्राणि, वार्ताः, कार्यक्रमाश्च सम्प्रेष्यन्ते। *"मौत का कुआँ"*, *"जलसंकटम्"*, *"प्रदूषणस्य पीडनम्"* इत्यादीनि कार्यक्रमाणि जनमानसि पर्यावरणबोधं जागरयन्ति। दृश्यश्रव्यप्रभावेन बालाः, वृद्धाः, युवानः च सम्यग्ज्ञानं प्राप्नुवन्ति। अयं प्रभावः पुस्तकेभ्यः अपि अधिको भवति।

दृश्यसाहित्यं न केवलं मनोरञ्जनस्य साधनं, अपि तु शिक्षायाः, जागरणस्य च प्रभावी माध्यमं अस्ति। अस्मिन दृश्यसाहित्ये पर्यावरणचिन्तनं सम्यग्व्यक्तीकृत्य चेतनायाः विकासः शक्यते। यतः दृश्यः मनसि स्थायित्वं जनयति, तस्मात् दृश्यसाहित्येन यदि पर्यावरणरक्षणस्य सन्देशः सम्यक् दीयते, तर्हि जनमानसि महान् परिवर्तनं संभवति।

पुराणेषु पर्यावरणचिन्तनम्-

भारतीयसंस्कृतेः अमूल्यं साहित्यं यत् "पुराणम्" इत्युच्यते। एतेषु धर्मं, इतिहासं, भूगोलं, खगोलं, आयुर्वेदं, समाजनीतिं, पर्यावरणं च विस्तीर्णरूपेण विवेचितम्। पर्यावरणस्य रक्षणं, संवर्धनं च केवलं आधुनिकचिन्तनस्य विषयः न, अपि तु पुराणेषु अपि अनेके स्थलेषु स्पष्टं प्रतिपादितम् अस्ति।

वनचिन्तनम्-

पुराणेषु वनेषु ऋषीणां आश्रमाः, वनदेवताः, वनवासवृत्तान्ताः च अनेकवारं वर्णिताः। स्कन्दपुराणे वने वासस्य पुण्यं विशदं व्याख्यातम् – **"दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। यो वनं रोपयित्वा तु कालेन तु विलङ्घते॥"** एषः श्लोकः वनरोपणस्य महत्त्वं प्रकाशयति। वृक्षस्य प्रत्येकस्य पूजनं, तस्य देवत्वं च वर्णितं दृश्यते- यथा अश्वत्थः विष्णुरूपः, पीपलः ब्रह्मरूपः, वटवृक्षः शिवरूपः इत्यादि।

नद्याः पवित्रता-

गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी इत्यादीनां नदीनां पावनता, जीवनदायिनी भूमिका च पुराणेषु वर्ण्यते। गङ्गामाहात्म्यं स्कन्दपुराणे विस्तरेण वर्णितम् अस्ति। **"त्रिभिः स्पृष्टं जलं येन, स गङ्गायां निमज्जति। पुण्यं लभते देवि! पापं क्षीयति तत्क्षणात्॥"** इदं दर्शयति यत् जलस्रोतसां शुद्धता प्राचीनकाले अपि प्रमुखा आसीत्।

भू-पूजनं एवं भूमाता-

पृथिव्याः पूजनं पुराणेषु अतीव व्यापकं दृश्यते। विष्णुपुराणे पृथिवी 'भूमाता' इति निर्दिष्टा। पृथिवी केवला भौतिकसंपदा न, अपि तु देवीरूपेण पूज्या। **"पृथिव्यां यानि भूतानि तानि सर्वाणि किल्बिषम्। आहत्यैकं शुद्ध्यन्ति मन्त्रेण भूमिपूजनम्॥"** इदं सूचयति यत् भूमि-संस्कारः, भूमिपूजनं च न केवलं धार्मिककर्म, अपि तु पर्यावरणस्नेहस्य प्रतीकं भवति।

पशुपक्षिणां संरक्षणम्-

गरुडपुराणे, मत्स्यपुराणे च प्राणिनां हिंसायाः निषेधः दत्तः। मनुष्येण यथाशक्ति सर्वेभ्यः जीवेषु दया कर्तव्या – **"दया सर्वभूतेषु धर्मः परमो मतः।"** पुराणेषु प्रत्येकं जीवः ब्रह्मस्वरूपः इति दृष्टिकोणः अस्ति। अतः गोकुलस्य, पक्षिणां, मृगाणां च रक्षणं पुण्यकर्म रूपेण उल्लिखितम्।

एवं पुराणेषु यः पर्यावरणविषयकः दृष्टिकोणः दृश्यते, सः अत्यन्तं सम्यक्, धार्मिकः च अस्ति। प्रकृतिः देवस्वरूपा, वनानि, नद्यः, भूमिः च पूज्यत्वेन स्वीकृता। अतः अद्यतनकाले, पर्यावरणविनाशस्य सन्दर्भे, वयं यदि पुराणोक्तदृष्टिं अनुयेम, तर्हि प्रकृतिसंरक्षणं सहजतया संभवेत्।

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण

ममता, असिस्टेंट प्रोफेसर
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश-

हमारे चारों ओर व्याप्त सभी जैविक तथा भौतिक तत्त्वों का समूह पर्यावरण में समाहित है। पर्यावरण और प्रकृति दोनों एक ही है। वैदिककाल से ही मानव पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक था। वह प्राकृतिक तत्त्वों को देवता समान मानकर उनकी पूजा करता था। वैदिक साहित्य के पश्चात भी संस्कृत कवियों ने पर्यावरण जागरुकता की भावना को अपनी कृतियों के माध्यम से प्रदर्शित किया है। लौकिक संस्कृत साहित्य में महाकवि वाल्मीकि विरचित रामायण को आदिकाव्य माना गया है। रामायण में न केवल तत्कालीन समय की धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि व्यवस्थाओं का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है अपितु यह पर्यावरणीय भावना को भी उजागर करता है। इसमें कवि ने पग पग पर पर्यावरणीय तत्त्वों के सौंदर्य को अभिव्यक्त करके हरित पर्यावरण का दिग्दर्शन सहृदयों को कराया है। इस शोध पत्र में पर्यावरण घटक (भौतिक, जैविक) तत्वों के आधार पर महाकवि वाल्मीकि की पर्यावरणीय भावना को चित्रित किया गया है।

कूट शब्द- पर्यावरणीय, आच्छादित, कृष्णवर्णीय, सप्तच्छद, शुद्धान्त:करणी, प्रस्त्रवणगिरी।

भूमिका-

रामायण महर्षि वाल्मीकि की अदभुत काव्य प्रतिभा का परिणाम है। कवि ने रामायण में सभी विषयों का मुक्त हृदय से स्वाभाविक चित्रण किया है। महर्षि वाल्मीकि पर्यावरणीय चेतना से ओत प्रोत है। इनके काव्य में पग पग पर पर्यावरणीय चेतना

परिलक्षित होती है। रामायण में भौतिक तथा जैविक पर्यावरणीय तत्त्वों की सुन्दर छवि के दर्शन सहृदयों को पग पग पर होते हैं।

जैविक पर्यावरण-

इसके अन्तर्गत जीव जन्तु तथा वनस्पतियों का वर्णन किया जाता है, जिनका रामायण में यथाप्रसंग वर्णन प्राप्त होता है। रामायण में जैविक पर्यावरण की सुन्दर छवि अनेक स्थानों पर दिखाई देती है।

जीव जन्तु-

जीव जन्तु पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण कारक है। पर्यावरण संतुलन में पशु पक्षी इत्यादि सभी जीव जन्तुओं का समान योगदान होता है, इसलिए हमारे शास्त्रों में जीव हिंसा का निषेध किया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने भी जीव हिंसा का विरोध किया है। रामायण का प्रारंभ ही पर्यावरणीय भावना से होता है। तमसा नदी के तट से लौटते हुए महर्षि वाल्मीकि मार्ग में निषाद द्वारा किये गये क्रौञ्च के वध को देखकर दुखी हो जाते हैं तथा दुखी होकर निषाद को शाप दे देते हैं।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यह क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।1

उसके बाद ही ब्रह्मा की कृपा से वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की रचना की थी। करुण रस को आधार बनाकर लिखित यह महाकाव्य पशु पक्षियों इत्यादि सभी जीवों पर करुणा करने का संदेश देता है। महाकाव्य में पग पग पर जीव हिंसा का निषेध किया गया है। वातावरण में पशु पक्षी भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है इसलिए बिना अपराध किसी का भी वध नहीं करना चाहिए। अरण्यकाण्ड में माता सीता श्रीराम से प्राणियों का वध न करने का

---

1 रामायण, बालकाण्ड, 2/15

आग्रह करती हैं। वन में रहने वाले जीव जंतु, पशु-पक्षी इत्यादि का वध करना सर्वथा अनुप्रयुक्त है।[1]

महाकाव्य में पशु पक्षियों से सम्बंधित अनेक स्थानों पर जानकारी प्राप्त होती है। जीव जंतु पर्यावरण को संरक्षित करने में सहायता करते है। कवि ने उनकी विभिन्न ऋतुओं में की गई गतिविधियों का सुन्दर चित्रण किया है। वर्षाकाल में हंस मानसरोवर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं तथा चकवें अपनी प्रियाओं से मिलने हेतु उत्सुक हो रहे है।[2] वही वर्षाकाल में पृथ्वी इंद्रगोप नामक कीड़ों से आच्छादित हो जाती है[3] तथा वन मयूरों के नृत्य से सुशोभित हो रहे हैं। सांड गौओं के प्रति कामभाव से आसक्त हो रहे है। पृथ्वी हरी-भरी घासों से मण्डित हो रही है।[4] वर्षाकाल में गजेंद्र (हाथी) मतवाले हो रहें हैं। गजेंद्र आनन्दमग्न है, मृगेन्द्र (सिंह) वनों में अपने पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए विचरण कर रहे है।[5] महाकाव्य में अन्य पशु पक्षियों का भी वर्णन प्राप्त होता है- सारसपक्षी[6], सर्प[7], चक्रवाक[8], कुरर[9], कारणडव[10], गजराज, भ्रमर, मयूर[1], मेढक[2] इत्यादि।

---

1 वही, अरण्यकाण्ड 9/14

2 वही,किष्किंधाकांड, 28/16

3 वही, 28/24

4 रामायण,किष्किंधाकांड, 28/26

5 वही, 28/43

6 वही, 30/5

7 वही, 30/44

8 वही, 30/31

9 वही, 30/63

10 वही, 30/41

वनस्पतियाँ-

ऋतु वर्णन में कवि ने विभिन्न प्रकार के वृक्षों का वर्णन किया हैं, जो वातावरण को संतुलित करने में अपना योगदान देते हैं। वर्षाकाल में कृष्णवर्णीय भ्रमरों की भांति दिखने वाले जामुन के वृक्ष के फलों को लोग प्रसन्न होकर खाते हैं तथा इस समय अत्यंत तीव्र हवा के वेग से पके हुए आम पृथ्वी पर गिर रहे हैं।[3] कदम्ब, अर्जुन, कमल से संपन्न वनों की भूमि मदमस्त होकर नृत्य करने वाले मयूर समूह से अलंकृत होकर मधुशाला की भांति प्रतीत हो रही है।[4] सप्तच्छद अर्थात् छितवन के फूलों की सुगंध को धारण करने वाला शरदकाल स्वाभाविक रूप से वायु का अनुसरण कर रहा है।[5] उसी प्रकार सरकंडे तथा असन नामक वृक्ष वर्षाकाल में अपने पूर्ण सौंदर्य से युक्त हो जाते हैं।[6] इसके अतिरिक्त कवि ने कमल[7], कोविदार, श्याम तमाल[8], केवड़ा तथा अर्जुन[9], केसर[10], मालती[11], कदम्ब[12]

---

1 वही, 28/33

2 वही, 28/36,

3 वही, 28/19

4 वही, 28/34

5 वही, 30/30

6 वही, 30/56

7 वही, 13/7,

8 वही, 30/62

9 रामायण,किष्किंधाकांड, 28/9

10 वही, 28/42

11 वही, 28/52

12 वही, 28/29

इत्यादि वृक्षों का भी वर्णन रामायण में प्राप्त होता है। लंका में हनुमान जी सरल (चीड़) कनेर, खजूर, चिरौंजी (प्रियाल), निम्बू, कुटज, केतक (केवडा), पिप्पली, नीप (कदम्ब या अशोक), छितवन, असन्, कोविदार इत्यादि अनेक प्रकार के वृक्ष देखते है।[1] रामायण में वर्णित विभिन्न वृक्षों का वर्णन कवि के पर्यावरणीय ज्ञान की पुष्टि करता है।

अतुल्य संपदा के धनी वनों में विभिन्न प्रकार के वृक्ष विद्यमान होते है। वनों से हमें लकड़ी, फल, फूल, छाया इत्यादि प्राप्त होते हैं। वनों का रमणीय सौंदर्य मानव की थकान को क्षणभर में दूर कर देता है। वहां पर निरंतर पुष्पों की वर्षा होती रहती है। संपूर्ण पृथ्वी पुष्पों से सुसज्जित हो जाती है। वहां पर चातक तथा कोयल की मधुर ध्वनि चारों ओर सुनाई देती रहती है-

एष क्रोशति नृत्यहस्तं शिखी प्रतिकूजति।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तर संकटे।।[2]

अरण्यकाण्ड के षष्टितम सर्ग में माता सीता के न मिलने पर श्रीराम के विलाप को वर्णित किया गया है। श्रीराम सभी वृक्षों (अर्जुन, ककुभ, कदम्ब, अशोक, ताल वृक्ष, जामुन, कनेर) से सीता के विषय में पूछते हैं। प्रकृति हमेशा से ही मानव की सहयोगिनी के रूप में स्थित रही है। श्रीराम को वन में अपने मित्र के रूप में वृक्ष, पशु-पक्षी इत्यादि दिखते हैं जिनसे वह सीता के बारे में पूछते है।

चूतनीपमहासालान् पनसान् कुरवान् धवान् ।
दाडिमानपि तान् गत्वा दृष्टवा रामो महायशाः।।
बकुलानथ पुन्नागांश्चन्दनान् केतकांस्तथा।
पृच्छन् रामो वने भ्रान्त उन्मन्त इव लक्ष्यते।।[3]

---

1 वही, सुन्दरकाण्ड, 2/9,10,11

2 वही, अयोध्याकाण्ड, 56/9

3 वही, अरण्यकाण्ड, 60/21, 22

भौतिक पर्यावरण- इसके अंतर्गत स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल का वर्णन किया जाता है। महाकवि वाल्मीकि विरचित रामायण में चित्रित भौतिक पर्यावरण की छवि सभी को आनंदित कर देती है।

जलमंडल-

नदियाँ- नदियाँ पर्यावरण का महत्त्व पूर्ण भाग है। सभी प्राणियों तथा कृषि इत्यादि हेतु जलापूर्ति नदियों से ही की जाती है। नदियाँ जल का प्रमुख स्रोत है। धार्मिक गतिविधियों के सम्पादन हेतु भी नदियों का प्रयोग किया जाता है। नदियों के तट पर विद्यमान आश्रम स्वस्थ पर्यावरण का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। रामायण में गंगा तथा सरयू नदी के संगम पर शुद्धान्त: करणी महर्षियों के आश्रम विद्यमान थे ।

तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम्।
बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः।।6।।[1]

उस समय नदियों के तट पथिकों के विश्रान्ति हेतु उपयुक्त स्थान होते है। विभिन्न तीर्थस्थलों का प्रयोग तपस्या हेतु भी किया जाता था। तीर्थस्थलों से जलापूर्ति तथा धार्मिक गतिविधियां दोनों ही सम्पन्न की जाती है।[2] जलापूर्ति हेतु निर्जल स्थानों में निर्मित कूप, बावडी इत्यादि का निर्माण भी कराया जाता है।[3] नदियाँ विभिन्न प्रकार के वृक्षों तथा वनों से सुशोभित होती थी। शीतल जल से युक्त नदियों में बडे-2 मत्स्य भी निवास करते थे। नदियों के समीपस्थ वाला मार्ग मानव को आनन्दित कर देता था।[4] नदियाँ जलापूर्ति में बहुत सहायक होती है। प्राचीनकाल में ऋषि मुनि नदियों के तट पर

---

1 रामायण, बालकाण्ड, 23/ 6

2 वही, 61/3

3 वही,अयोध्याकाण्ड, 80/12

4 वही, 80/21

ही स्नानादि क्रियाएं संपन्न करते थे- "तात! यहाँ पर ही कलश रख दो तथा मुझे मेरा वल्कल वस्त्र दे दो। मैं तमसा नदी के जल में स्नान करूंगा।"[1]

रामायण में बहुत सी नदियों का नाम आया है। जिनका प्रयोग अनेक कार्यों की संपन्नता हेतु किया जाता था- तमसा[2], सरयू[3], गंगा[4], शोणभद्र[5], यमुना[6], गोदावरी[7] नदियों का जल प्रदूषण रहित स्वच्छ होता था। जलापूर्ति आकाश से गिरते पानी से भी होती है। आकाश में पग-पग पर स्थित मेघ (अपनी गर्जना से समुद्र की ध्वनि को तिरस्कृत करने वाले) अपने जल से नदी, तालाब, सरोवर, बावली इत्यादि सम्पूर्ण पृथ्वी को आप्लावित कर देते हैं।[8]

सरोवर- जलस्रोत के रूप में विद्यमान सरोवर भी पर्यावरण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। महाकवि वाल्मीकि ने रामायण में पम्पा सरोवर, बिन्दुसरोवर, मानसरोवर, सुदर्शन सरोवर, पंचाप्सर तीर्थ इत्यादि का यथाप्रसंग वर्णन किया है। जब भगवान राम अपनी पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण के साथ पर्वतों, वनों, रमणीय नदियों को देखते हुए आगे बढ़ रहे थे, तब उनको एक योजन तक फैला हुआ सुंदर सरोवर दिखाई दिया। वह सरोवर श्वेत तथा लाल कमल से

---

1 वही,बालकाण्ड 2/6

2 वही, 2/3,

3 वही , 23/5

4 वही, 35/8,

5 रामायण, बालकाण्ड, 35/4,

6 वही, अयोध्याकाण्ड, 55/31

7 वही, अरण्यकाण्ड, 13/18

8 वही, किष्किन्धाकाण्ड, 28/44

युक्त था। उसमें हाथियों का झुंड क्रीड़ा कर रहा था तथा सारस, राजहंस, कलहंसादि पक्षियों तथा जल में व्याप्त मत्स्यादि से व्याप्त था।[1]

स्थलमंडल-

पर्वत- पृथ्वी पर स्थित पर्वत पर्यावरण को संतुलित करने में योगदान देते है। पर्वतों का मानव जीवन को आनंदमय बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। रामायण में अनेक स्थानों पर विभिन्न पर्वतों का नाम आता है। भगवान राम को निवास स्थल हेतु महामुनि भारद्वाज ने चित्रकूट पर्वत के विषय में बताया था।[2] चित्रकूट पर्वत अनेक प्रकार के वृक्षों से हरा-भरा है। वहां पर विभिन्न प्रकार के किन्नर तथा सर्पों की जातियां हैं। मोर तथा गजराज इत्यादि पशु-पक्षियों से सुशोभित वह पर्वत है।[3] यह पर्वत कोकिलाओं तथा टिड्डियों के मधुर गुंजन से यात्रियों का मनोरंजन करता है। यह बहुत ही सुखद तथा कल्याणकारी पर्वत है।[4] उसी प्रकार सुंदरकांड में महाबली हनुमान अगाध समुद्र को पार करके त्रिकूट नामक पर पर्वत पर चढ़कर लंकापुरी की शोभा को देखते है।[5] जब वानर सुग्रीव का राज्याभिषेक हो जाता है, उसके बाद भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ प्रस्रवणगिरी नामक पर्वत पर चले जाते हैं।[6] इस प्रकार अन्य पर्वतों का नाम भी रामायण में आता है जैसे- हिमालय, ऋष्यमूक, कैलास पर्वत इत्यादि।

---

1 वही, अरण्यकाण्ड, 11/6

2 वही, अयोध्याकाण्ड, 54/38

3 वही, 54/39-40

4 वही, 54/43

5 वही, सुन्दरकाण्ड, 2/1

6 रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 27/1

आश्रम- आश्रम पर्यावरण को हरा भरा रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राचीनकाल में असंख्य आश्रम विद्यमान थे। आश्रमों का वातावरण मन को शांत रखता है। आश्रमों में कुश तथा वल्कलवस्त्रों को ब्रह्मचारियों द्वारा स्नान के बाद वृक्षों पर सुखाया जाता था।[1] आश्रम साफ-स्वच्छ होते थे। वहां पर पशु पक्षी भयरहित होकर विचरण करते रहते थे।[2] वहाँ पर स्थित बड़ी-बड़ी अग्निशालाएं, मृगचर्म, कुश, समिधा, जलपूर्ण कलश, फल-मूलादि उसकी शोभा को द्विगुणा कर देती थी। आश्रम स्वादिष्ट फलों से युक्त वन्य वृक्षों से आच्छादित रहता था।[3] वहाँ पर प्रतिदिन होता हवन तथा मंत्रों की ध्वनि वातावरण को स्वच्छ बना देती थी।[4] आश्रम में फल फूल का आहार करने वाले सूर्य तथा अग्नि के सदृश महातेजस्वी मुनि निवास करते थे।[5]

आश्रमों में प्रात: सायं किये गये हवन के धुएं से आसपास का वातावरण स्वच्छ रहता है। हवनवेदिका को कुश, समिधा तथा फूलों से सुसज्जित करके यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जाता था।[6] उसके बाद शास्त्रोक्त विधि से वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञ को आरंभ किया जाता था।[7] वेद मंत्रों का उच्चारण वातावरण में पवित्र तरंगों को उत्पन्न करता था। जिससे नकारात्मक ऊर्जा के स्थान पर सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता था। रामायण काल में ऋषि

---

1 वही, अरण्यकाण्ड, 1/2

2 वही, 1/3

3 वही, 1/4,5

4 वही, 1/6

5 वही, 1/7

6 वही, बालकाण्ड, 30/9

7 वही, 30/10

मुनियों द्वारा संपादित हवन में राक्षस विघ्न उत्पन्न करते थे[1] इसलिए भगवान राम को राक्षसों के दमन करने हेतु विश्वामित्र जी लेकर जाते हैं। राम अपने दिव्यास्त्र से राक्षसों का वध कर देते हैं।[2] रामायण में पुत्रेष्टि यज्ञ[3] तथा त्रिशंकु को दिव्यलोक की प्राप्ति हेतु किया गया हवन[4]इत्यादि का भी वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न धार्मिक क्रियाओं के सम्पादनार्थ हवन करके वातावरण को स्वच्छ बनाया जाता था।

वायुमंडल-

वायु को जीवन का आधार माना गया है। रामायण में विभिन्न ऋतुओं में परिवर्तित वायु के स्वरूप का बहुत सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। वर्षाकाल में पृथ्वी पर चारों ओर उड़ती हुई धूल शांत हो जाती है। इस समय वायु में शीतलता आ गयी है। गर्मी का अत्याचार बन्द हो गया है।[5] उसी प्रकार हेमंत ऋतु में आनंदकारी वायु का स्पर्श शीतल हो जाता है। वायु की अत्यधिक शीतलता प्राणियों को प्रताड़ित करने लगती है।[6]

ऋतुगत पर्यावरण- महाकवि वाल्मीकि ने महाकाव्य में ऋतुओं का भी बहुत सुंदर वर्णन किया है। ऋतुओं में भौतिक तथा जैविक तत्त्वों के स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है। प्राकृतिक सौंदर्य की वृद्धि में ऋतुओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। हेमंत ऋतु में अत्यधिक ठंड के कारण शरीर शुष्क हो जाता है। खेतों में रबि की फसल लहराने लगती है। जल शीतलता के कारण पीने योग्य नहीं रहता है। इस समय अग्नि ही एकमात्र सहारा होती है।[7] हेमंतकाल में

---

1 वही, 30/11-12

2 रामायण, बालकाण्ड, 30/16,17

3 वही,15/2

4 वही,60/3

5 वही, किष्किन्धाकाण्ड, 28/15

6 वही, अरण्यकाण्ड, 16/15

7 वही, 16/5

मध्याह्न में धूप का स्पर्श अच्छा लगता है। इस समय कवि सूर्य को सौभाग्यशाली तथा जल और छाँव को अभागा बता रहा है।[1] इस ऋतु में रातें लंबी तथा दिन छोटे हो जाते हैं। इस ऋतु में चंद्रमा तथा सूर्य अपने-अपने स्वभाव को एक दूसरे को दे देते हैं। अत्यधिक शीतलता के कारण चंद्रमंडल असेव्य तथा सूर्य का प्रकाश सेव्य हो जाता है।[2]

रामायण में कवि ने वर्षा ऋतु की रमणीयता का भी सजीव चित्रण किया है- "जो वसुन्धरा ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से जल सी गई है, वह पृथ्वी वर्षाकाल में जल से सिंचित होकर नूतन सुन्दरता को धारण कर रही है'।[3] अत्यन्त गम्भीर गर्जना करने वाले पर्वतों, नगरों, वृक्षों के ऊपर से गुजरने वाले मेघ वर्षा ऋतु में पृथ्वी को जल से तृप्त करके शरद ऋतु में शान्त हो गये है।[4] इस ऋतु में नदियां बह रही है, बादल पानी बरसा रहें हैं, मतवाले हाथी प्रसन्न होकर चिघांड़ रहे हैं। सभी वनो में नूतन पुष्प फल आने से उनकी शोभा बढ़ गयी है। प्रियतमा के वियोग से दुखी प्राणी चिन्तामग्न हो रहे हैं। भगवान राम भी सीताजी के वियोग में दुखी है। वानर जंगल में प्रसन्नचित है।[5] वनों में कहीं पर भ्रमरों का गुंजन सुनायी दे रहा है तथा कहीं पर मोर नाचते हुए दिख रहे है। कहीं पर गजराज मदमस्त होकर विचरण कर रहे हैं।

वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु का आगमन होता है। इस समय आकाश श्वेत हो जाता है। चंद्रमंडल स्वच्छ हो जाता है। वहीं पर मेघों की गड़गड़ाहट तथा बिजली की ध्वनि सुनाई नहीं दे रही है

---

1 वही, 16/10

2 वही, 16/13

3 रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 28/7

4 वही, 30/23

5 वही, 28/27

तथा सभी ओर सारस पक्षियों की वाणी सुनाई देती है[1] लेकिन विरही जनों के लिए यह ऋतु सुखदायी नहीं होती है। सीता के विरह से व्याकुल श्रीराम को नदी, तालाब, बावली, कानन, वनादि सुख प्रदान नहीं कर रहें हैं।[2] इस समय नदी, मेघ, झरनों के जल, प्रचंड वायु, मोर, मेंढ़कों की आवाज़ इत्यादि निश्चित रूप से शांत हो जाते हैं।[3]

निर्जन वन में पर्यावरणीय तत्त्व मानव की सहायता भी करते है। जब भगवान श्रीराम वनयात्रा हेतु माता कौसल्या से जाने की अनुमति मांगते हैं, तब कौसल्या प्राकृतिक तत्त्वों द्वारा रक्षा करने का आशीर्वाद देती है- "नरश्रेष्ठ! कुश, पवित्र वेदियां, मंदिर, ब्राह्मणों के देव पूजन संबंधी स्थान, पर्वत, वृक्ष, जलाशय, पक्षी, पशु, सर्प इत्यादि वन में तुम्हारी रक्षा करें।[4] वह समस्त पर्वत, समुद्र, वरुण, द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, वायु, चराचर प्राणी, नक्षत्रगण, दिन रात, दो संध्याएं इत्यादि से वन में रक्षा करने का आशीर्वाद देती है।[5] वन में मनुष्य के पंच महाभूत तथा उनके उपादान सहायक हो जाते हैं। यहां पर कवि ने पर्यावरणीय तत्त्वों को सहायक के रूप में चित्रित किया हैं।

रामायण में अन्य स्थानों पर भी पर्यावरणीय तत्वों की महत्ता के दर्शन होते है। जब श्रीराम महर्षि भारद्वाज के आश्रम में रात्रि व्यतीत करके चित्रकूट पर्वत की ओर जाने हेतु उद्यत होते हैं, तब भारद्वाज मार्ग में स्थित श्यामवट (बरगद) से हाथ जोड़कर सीता

---

1 वही, 30/5

2 वही, 30/11

3 वही, 30/43

4 वही, अयोध्याकाण्ड, 25/7

5 वही, 25/13-14

से याचना करने को कहते हैं।[1] यहाँ पर वृक्षों को देवत्व स्वरूप प्रदान करके उनके महत्व को बताया गया है और उसी श्यामवट से एक कोस की दूरी पर नील वन है, जहां पर साल (चीड़) तथा बेर के पेड़ दिखाई देंगे।[2] तात्पर्य है वह तुम्हें छाया तथा बुभुक्षा को शांत करने में सहायता करेंगे। वही सीता जी मार्ग में यमुना नदी को प्रणाम करके उससे नदी को पार करने का आशीर्वाद भी मांगती है।[3]

सुन्दरकाण्ड में अशोकवाटिका का वर्णन प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य को प्रकट करता है। वाटिका अर्थात् उद्यान हमेशा से ही पथिकों की थकान को दूर करने का केन्द्र रहा है। कवि कहता है कि इस वाटिका में साल, अशोक, निम्ब, चंपा इत्यादि के वृक्ष विद्यमान थे। वहां पर नागकेसर तथा बंदर के मुख की भांति लाल फूल प्रदान करने वाले आम के वृक्ष भी थे।[4] इस वाटिका में चारों ओर से पक्षियों का कलरव की आवाजें मानव मन को आनंदित कर देती थी।[5] वाटिका में आने पर मनुष्य मन प्रमुदित हो जाता था। पशु पक्षी यहां आकर मदमस्त हो जाते थे।[6] वाटिका में अनेक जगहों पर विभिन्न आकारों वाली बावड़ियाँ भी विद्यमान थी। जिनका जल बहुत ही स्वच्छ था।[7] उनके जल का प्रयोग प्राणियों की पिपासा को शांत करने हेतु किया जाता था इसलिए इनकी स्वच्छता का ध्यान रखा जाता था। वाटिका के समीपस्थ बहती, तटवर्ती वृक्षों से सुशोभित,

---

1 रामायण, अयोध्याकाण्ड, 55/6,5

2 वही, 55/8

3 वही, 55/19

4 वही, सुन्दरकाण्ड, 14/3,4

5 वही, 14/5

6 वही, 14/8

7 वही, 14/22,23

अमृत की भांति जल से परिपूर्ण सुखदायनी सरिताऐं चारों ओर से बावड़ियों का जल स्वच्छ बनाये रखती थी।[1]

कवि के महाकाव्य में पर्यावरणीय चेतना पग पग पर दिखायी देती है। रामायण स्वच्छ वातावरण का प्रतिनिधित्व करती है। रामायण के सुन्दरकाण्ड में चित्रित अशोकवाटिका का वर्णन प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य को प्रकट करता है। प्राकृतिक सौंदर्य की वृद्धि में ऋतुओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ऋतुओं में भौतिक तथा जैविक तत्त्वों के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहता है, जिसकी प्रतीति रामायण में पग पग पर होती है। हमें रामायण से स्वच्छ वातावरण की अनुभूति करके वर्तमान में निरंतर बढते हुए प्रदूषण को रोकना होगा, तभी हम स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण कर सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, महाकवि वाल्मीकि, गीताप्रेस गोरखपुर।

1 वही, 14/25

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरणीय संचेतना

डॉ. शैल वर्मा
प्रोफेसर संस्कृत (सेवानिवृत्त)

संस्कृत वाङ्गय सार्वकालिक, सार्वदेशिक, शाश्वत एवं नित्य नवीन अर्थों को अभिव्यक्त करने में सक्षम साहित्य है। युगानुरूप समस्याओं के समाधान की इसकी अद्भुत क्षमता है। पर्यावरणीय राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, कैसी भी समस्या हो, उसके निराकरण की सामर्थ्य संस्कृत साहित्य में संचित है। यदि कहीं कमी है तो हमारे चिंतन में, क्यों कि अभी तक हम इस वाङ्मय निहित रहस्यों को समग्र रूप से समझ नहीं पाये हैं।

वैदिक काल से लेकर आज तक के उपलब्ध वाङ्मय में कुछ भी ऐसा नहीं जिसे हम निरुपयोगी कहकर नकार सकें। आज वेदों, पुराणों, महाकाव्यों में निहित तथ्यों को समझ कर उनके गूढ़ रहस्यों को प्रकट करने की परम आवश्यकता है। संस्कृत वाङ्मय में निहित रहस्यों को समझना आज के युग की अपेक्षा है। हम जिस युग में जी रहे हैं वह युग अनेकानेक समस्याओं से घिरा युग है। वाह्य प्रकृति एवं अंतः प्रकृति दोनो के दूषित होने पर हमारा पर्यावरण ही हमारे लिये घातक हो रहा है।

पर्यावरण और जीवन का परस्पर घनिष्ट सम्बंध है, पर्यावरण के बिना जीवन नहीं हो सकता और जीवन के बिना पर्यावरण नहीं हो सकता। पर्यावरण शब्द के अंदर व्यक्ति, परिवार, समाज, उसके निवास, ग्राम, नगर, प्रदेश, देश, महाद्वीप, सम्पूर्ण सौरमंडल में होने वाली पारिस्थितिक शक्तियां हैं जो मानवीय क्रिया कलापों तथा अन्यान्य पदार्थों को प्रभावित करती हैं।

पर्यावरणीय चेतना का प्रयोग आज हम कर रहे हैं वस्तुतः ये चेतना नवीन न होकर प्राचीन है। प्राचीन काल में पर्यावरण प्रकृति

और वातावरण दो अलग-अलग नामों से जाना जाता था, आज इसे ही पर्यावरण कहते हैं जो अपनी व्यापकता में सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को आत्मसात किये है। जब कोई वस्तु या स्थिति क्षय की ओर बढती है तो जनचेतना की एक लहर चलती है, यही लहर आज पर्यावरण चेतना के रूप में प्रचलित है।

पर्यावरण संरक्षण में हमारे प्राकृतिक संसाधन आते हैं जो हमारे अज्ञान या दुरुपयोग के कारण दुर्लभ होते जा रहे हैं जिन्हें हम अपने क्रिया कलापों से दूषित करते जा रहे हैं क्षय की प्रक्रिया इतनी अधिक हो गयी है कि अब इनका संरक्षण मानव अस्तित्व के लिये आवश्यक हो गया है।

पर्यावरण की व्यापक परिधि में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ऋतु, पर्वत नदियां, सागर, सरोवर, वृक्ष, लता, सभी जीव जंतु, गृह, नक्षत्र, समग्र चराचर का जीवन चक्र समाविष्ट होता है। ये सभी पर्यावरण तत्त्व समग्र जीवन चक्र को सृजित संचालित प्रभावित करते हैं। पर्यावरण और जीवन चक्र परस्पर पूरक हैं।

प्राणियों के लिये जीवनदायक प्राकृतिक तत्त्वों में जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान काल में भौतिक विकास का दम्भ करने वाले मानव ने वस्तुतः भौतिक निधियों का निरंतर क्षय किया है। निरंतर वृक्षों की कटाई, नदियों में औद्योगिक अपशिष्टों का प्रवाह तथा प्रदूषित वस्तुओं के प्रवाह से शुद्ध जल का निरंतर अभाव होता जा रहा है। इसके साथ ही यज्ञीय क्रियाओं को अंधविश्वास मानकर उनका तिरस्कार करने से जल संवर्धन की भी उपेक्षा हो रही है, जिससे पृथ्वी पर उपस्थित रासायनिक कारकों से एवं दूषित पदार्थों के सम्पर्क से अवांछित तत्त्व जल में मिलकर उसे विकृत कर रहे हैं और प्राणियों के लिये पेयजल का संकट उत्पन्न कर रहे हैं। ऋग्वेद के अनुसार "अप्स्वंतरममृतम अप्सुभेषजम" अर्थात शुद्ध जलों में अमृत एवं औषधि का निवास रहता है ।

जलीय समस्याओं के निराकरण हेतु यदि हम संस्कृत वाङ्मय का अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि वैदिक काल से ऋषि जल

संवर्धन एवं जल संरक्षण हेतु पूरी तरह सजग थे। उन्होंने जल की महत्ता को स्वीकार करते हुये यज्ञ जैसी वैज्ञानिक पद्धति को नित्यकर्म के रूप में ग्रहण किया था तथा जल संरक्षण हेतु पूरी आचार संहिता तैयार कर रखी थी। जिसके उदाहरण हमें वैदिक वाङ्मय, पुराणों स्मृतियों, वृहत्संहिता तथा आयुर्वेदीय ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। जल संवर्धन एवं जल संरक्षण हेतु बहुधा निर्देश दिये जाने पर भी आज का मानव पेय जल संकट से ग्रस्त हो रहा है। यह इस बात का द्योतक है कि संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से गम्भीरता पूर्वक नही किया गया। इसे आचरण में नही संस्कारित किया गया। सैकडों वर्षों की उपेक्षा का परिणाम आज हमारे सामने है। ऋग्वेद में जल द्वारा शरीर के मलों की विशुद्धि का उल्लेख है इदमापः प्रवहत यत किं च दुरितं मयि ।

अथर्ववेद में शुद्ध जल प्रवाहित होने की कामना की गयी है- शुद्धा न आपस्ल्वे क्षरंतु मत्र दृष्ट ऋषि जल की प्रदूषण निवारक शक्ति से परिचित थे अतः उन्होने प्रत्येक जलस्रोतों के सुखदायक होने की कामना की है-

शं ते आपो हेमवतीः शं ते संतूत्स्याः।
शं ते संनिष्यंदा आपः, शमु ते संतु वर्ष्याः।

आज संस्कृत वाङ्मय के पुनः वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन की पुनः अपेक्षा है, जिससे हम सामयिक समस्याओं का समाधान खोज सकें ।

वैदिक युग के वैज्ञानिक इस रहस्य को भी जानते थे कि शुद्ध वायु (भेषजवात) हृदय के लिए शान्तिदायक एवम् सुखकारक होती है और आयु को भी बढ़ाती है। इसलिए एक अन्य मंत्र में ऋषि ने प्रार्थना की है कि वायु हमारे हृदय के लिए भेषज रूप में शान्तिदायक एवम् सुखकारक होकर बहे और वह हमारी आयुओं को बढ़ावे-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो इदे।
प्रण आयूँषि तारिषत्।। (ऋग्० १०.१८६.१)

वेदमन्त्रों में वर्णित जीवनदायक वायु अथवा भेषजवात के मूल स्रोत वे वृक्ष एवम् वन हैं, जिनको नमन करते हुए वैदिक ऋषियों ने उपर्युक्त मन्त्रों में उनके महत्त्व का वर्णन किया है। पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए एक मन्त्र द्वारा वन में वनस्पति-आरोपण का स्पष्ट आदेश दिया गया है-

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्। (ऋग् १०.१०१.११)

इतना ही नहीं, यजुर्वेद के एक मन्त्र में "मापो मौषधीर्हिँसीः (यजु० ६.२२) कहकर, वृक्षों की हिंसा अथवा उनके काटने का निषेध किया गया है।

पर्यावरण के शोधन में भूमि का पर्याप्त योगदान है। वेद में भूमि को माता कहा गया है

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। अथर्व० १२.१.१२

एक मंत्र में भूमि को विश्व का भरण-पोषण करने वाली, धनों की खान, सब की प्रतिष्ठा, सुवर्ण से युक्त तथा जगत् को बसाने वाली बताया गया है-

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
अथर्व० १२.१.६

पृथ्वी के ये विशेषण पर्यावरण की दृष्टि से भी सार्थक कहे जा सकते हैं, क्योंकि विश्व का भरण-पोषण पर्यावरण की अनुकूलता पर ही निर्भर है।

वस्तुतः देखा जाये तो रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोग द्वारा भूमि की उर्वरा शक्ति को चूस लेना, कीटनाशक दवाओं के अनुचित प्रयोग एवम् उद्योग-धन्धों के ठोस तथा जलीय दूषित पदार्थों की भूमि में निकासी एवम् मल-मूत्र, कूड़ा-करकट आदि के अनियन्त्रित विसर्जन से पृथिवी को दूषित करना करना ही पृथिवी की हिंसा सा है। एक मंत्र में पृथ्वी को संबोधित करते हुए कहा गया है कि-

'हे भूमे, मैं तेरे वृक्षों को इस प्रकार काटूं कि वे पुनः शीघ्र अंकुरित हो जाये। हे विमृग्वरि (बिशेष रूप से शोधन करने वाली) मैं तेरे मर्मस्थल पर प्रहार न करूँ।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।

(अथर्व० १२.१.३५२)

वैदिक मान्यतानुसार पर्यावरण की शुद्धि का सर्वोत्तम साधन अग्निहोत्र है। यज्ञ की प्रक्रियानुसार अग्नि में घी, सामग्री व अन्य जो भी पदार्थ, आहुति के रूप में डाले जाते हैं, वे सभी वायु, जल, पृथ्वी तथा समस्त वातावरण की शुद्धि व पुष्टि करने वाले हैं। इसीलिए सामवेद के एक मन्त्र में हवि (आहुति) द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध करने की प्रेरणा दी गयी है।

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्।। (साम० १.७.१)

अथर्ववेद के एक मन्त्र में वर्णन है कि अग्नि में दी हुई आहुति वायुमण्डल के रोगाणुओं को उसी प्रकार दूर कर देती है, जिस प्रकार नदी झागों को "**इदम् हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवावहत्**"। अथर्व० १.८.२ ।

यजुर्वेद का वह मन्त्र अत्यन्त प्रासंगिक है, जिसमें होता को कहा गया है कि 'तू यज्ञ कर, जिससे वनस्पतियां हवि को ग्रहण कर सकें देवो वनस्पतिर्जुषतां हविर्कोतर्यज।। यजु० २१.४६' इतना ही नहीं वृक्ष एवं वनस्पतियों की शाखाओं, जड़ों तथा उनके फलों व ओषधियों पर होने वाले अग्निहोत्र के प्रभाव से भी वैदिक ऋषि परिचित थे। इसीलिए मन्त्रों में इनके लिए पृथक् पृथक् आहुतियां देने का विधान है-

मूलेभ्यः स्वाहा, शाखाभ्यः स्वाहा, वनस्पतिभ्यः
स्वाहा, फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा।

यजु.- २२.२८

विश्व में सुख और शान्ति के लिए आचार-विचार एवम् चरित्र-शुद्धि की भी आवश्यकता है, अन्यथा यदि केवल भौतिक अथवा प्राकृतिक वातावरण शुद्ध हो जाये और मानव का आचार-विचार एवम् परस्पर व्यवहार दूषित बना रहे तथा जन-मानस में ईर्ष्या, राग, द्वेष एवम् प्रतिशोध की अग्नियां जलती रहें, तो एक सुखी संसार की कल्पना तक नहीं की जा सकती। वैदिक द्रष्टाओं का ध्यान पर्यावरण के इस बिन्दु पर भी गया था और उन्होंने व्यक्ति के मन, वाणी एवम् चरित्र के शोधन की दिव्य प्रेरणा भी प्रदान की थी।

समाज में सौहार्दमय वातावरण बनाने के लिए व्यक्तियों के मन में सद्विचार एवम् शुभसंकल्पों का होना अनिवार्य है, अतः वेद में प्रार्थना की गयी है-

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। यजु. ३४.१

अर्थात् मेरा मन शिव संकल्प (उत्तम विचार वाला) हो।

जहाँ सद्बुद्धि समस्त सुख एवम् सम्पदाओं की आधारशिला है, वहीं दुर्बुद्धि समस्त अनर्थों की जननी है। इसीलिए यजुर्वेद में 'दुर्मतिं जहि' यजु. ११.४७ कहकर दुर्बुद्धि को दूर करने की भावना व्यक्त की गयी है। इस भांति वेद के अनुसार एवम् बुद्धि शुद्ध होने पर ही समाज में सुख और शान्ति की स्थापना सम्भव है।

मन एवम् बुद्धि के अतिरिक्त वाणी की शुद्धि भी आवश्यक है, क्योंकि परिवार एवम् समाज के अधिकांश झगड़ों की जड़ दूषित एवम् कटुवाणी है। अतः वेद में वाणी की शुद्धि की स्पष्ट रूप से प्रेरणा दी गयी है वाचं ते शुन्धामि। यजु. ६.१४

वेदों में पर्यावरणीय तत्त्वों में शंति व्यवस्था की कामना की गयी है-

ऊं द्यौ शांतिरंन्तरिक्षं शांतिः, पृथिवी शांतिरायः
शांतिरषो धयः शांतिः वनस्पतयः शांतिः।
यजु०३६.१७।

वैदिक काल में पर्यावरणीय संचेतना का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। भौतिक पर्यावरण प्रदूषित होने पर मानव का आचार विचार, परस्पर व्यवहार भी दूषित होता है। आज राग द्वेष प्रतिशोध की अग्नि चारो ओर जल रही है। अतः मन वाणी एवं चरित्र के शोधन की ओर भी वैदिक ऋषियों का ध्यान था। मानव मन में शुभ संकल्प एवं सद्विचार हेतु ये प्रार्थना प्राप्त है:

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। यजु. ३४.१
मानव बुद्धि सही दिशा में प्रेरित हो अतः कहा गया
धियो योनः प्रचोदयात्। यजु. ३६.३
दुर्बुद्धि समस्त अनर्थों की जननी है अतः यजु. में

दुर्गतिं जहि। ११.४७ कहकर दुर्बुद्धि दूर करने की भावना व्यक्त की गयी है। इस प्रकार परिवार एवं समाज में सुख शांति की स्थापना करना सम्भव है। अधिकांश झगडों का कारण दूषित एवं कटु वाणी है। अतः वेदों में वाणी शुद्ध रखने की प्रेरणा दी गयी है। वाचं ते शुंधामि। यजु. ६.१४

अतः वैदिक काल में भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के साथ ही समाज के सुख एवं शांति की भावना एवं प्रार्थना की गयी है। वस्तुतः वेदों में प्राकृतिक स्रोतों के प्रति हमारी चेतना में देव भाव विकसित करने का कार्य किया गया है जिससे हम पंच महाभूतों एवं समस्त प्रकृति को हानि न पहुंचायें, सदैव इनका रक्षण एवं संवर्धन करें। इस भाव को जन-जन की चेतना में विकसित करें जिससे भौतिक विकास के साथ ही मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण दोनों संरक्षित रहें।

संस्कृत वाङ्मय: पर्यावरण संरक्षण एक चिन्तन

चन्दन यादव, शोधार्थी, संस्कृत विभाग
जे.एस. हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरोहा

प्रस्तावना-

मनुष्य और प्रकृति का अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। **श्रीमद्भागवतगीता** में प्रकृति के आठ अंग बताते हुए इसे **'अष्टधा प्रकृति'** कहा गया है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के साथ-साथ मन, बुद्धि और अहंकार को भी प्रकृति का हिस्सा माना है। संसार में प्रकृति का इससे गहन चिंतन और क्या हो सकता है, जहाँ बाह्य घटकों के साथ-साथ मनुष्य के आंतरिक घटकों को भी प्रकृति का अंग माना गया हो। वस्तुतः बाहरी प्रकृति (मन, बुद्धि और अहं) को भी प्रभावित करती है और मनुष्य आंतरिक प्रकृति के प्रभाव वश जो कृत्य करता है, उनसे बाह्य प्रकृति प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के समष्टि का नाम पर्यावरण है। मनुष्य भी इन्हीं पंचमहाभूत तत्वों की निर्मिति है। मनुष्य और पर्यावरण में घनिष्ठ संबंध होने के कारण यह दोनों परस्पराश्रित, अन्योन्याश्रित और एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी कर पाना असंभव है। मनुष्य प्रकृति का संवर्धन शिशु के समान एवं संरक्षण माता के समान करता है। वहीं प्रकृति अपने बहुमूल्य उपहारों से मनुष्य का भरण-पोषण करती है, उसे जीवन प्रदान करती है। वैदिक संस्कृति में प्रकृति को देव रूप में पूजा गया है। प्राकृतिक शक्तियों में देवी स्वरूप अवधारणा समाज को उसकी रक्षा करने, उससे प्रेम करने तथा उससे अनुराग रखने के लिए प्रेरित करती है। अथर्ववेद में पर्यावरण के प्रति जागरूक करते हुए कहा गया है कि-

यदस्य कश्मैचिद् भोगाय बलात कश्मिद्ध प्रक्रितांते।
तत क्रिस्तेन प्रियन्ते वत्सोश्च धानुको वृकः।।[1]

अर्थात् जो मात्र उपभोग एवं अतिलिप्सा के कारण प्रकृति का कर्तन एवं दोहन करते हैं उनकी संताने और पशु-पक्षी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश की पर्यावरणीय उपयोगिता का निदर्शन है।

❖ **बीज शब्द-** समष्टि, अन्योन्याश्रित, भारतीय संस्कृति, प्राकृतिक संतुलन, तादात्म्य, पर्यावरणीय दृष्टि।

बृहदारण्यक उपनिषद् के पाँचवें अध्याय में प्रकृति और मनुष्य के बीच परस्पर सामंजस्य और समरसतापूर्ण संबंधों पर बल देते हुए कहा गया है कि हम प्रकृति से उतना ही ग्रहण करे जितना हमें आवश्यक हो तथा प्रकृति की पूर्णता को क्षति न पहुँचे। इस तरह प्रकृति का मर्यादित उपभोग करे, उसका दोहन न करें- यही यह मंत्र शिक्षा देता है।

अथर्ववेद में जल शुद्धि विषयक कई मंत्र है। पृथ्वी के महत्त्व को निरूपित करने वाले **'पृथ्वी सूक्त'** को विश्वभर के पर्यावरणविदों ने सराहा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रकृति को परमात्मा, माता, पिता, मित्र तथा सहचरी आदि के रूप में देखा व माना गया है। ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों में व्यक्तित्त्व आरोपित कर न सिर्फ उन्हें देवत्व के पद पर सुशोभित किया बल्कि उनकी स्तुति भी की है। देवता का अर्थ है- जो कुछ देता है और सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, वन, नदियाँ और पर्वत आदि प्राकृतिक उपादानों से अधिक हम किससे प्राप्त करते हैं? इन प्राकृतिक शक्तियों के अभाव में क्षण भर के लिए भी जीवन की कल्पना असंभव है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति की चैतन्य रूप में परिकल्पना करते हुए इनका स्तुति गान किया है।

---

[1] अथर्ववेद (4/7)

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 91वें सूक्त में सोम देवता की स्तुति दृष्टव्य है-

त्वमिमा ओषधीः सोम विद्यास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्धोर्व अन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषां वि तमो ववर्थ।।[1]

हे सोम! आपने सभी औषधियाँ, वृष्टि, जल एवं समस्त गायें बनाई है। आपने इस व्यापक अन्तरिक्ष को प्रकाशित कर उसका अन्धकार नष्ट कर दिया।

वैदिक संस्कृति में सूर्य और चंद्रमा के अलावा अग्नि, वायु, पृथ्वी, वरुण, आकाश, पर्वत, नदी, वन, वनस्पति और पृथ्वी आदि की भी श्रद्धा भाव से स्तुति की गई है। वैदिक ऋषि इस सत्य से परिचित थे कि पंचतत्वों से ही मानव शरीर की निर्मिति हुई है।

'इमानि पंचमहाभूतानि पृथिवी, वायुः आकाशः आपज्योतिषी।[2]

विश्व की अन्य संस्कृति में शायद ही प्रकृति के इन पंच तत्त्वों (पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि) का इतना गुणगान किया गया हो। प्राकृतिक उपादानों की स्तुति करते समय वैदिक ऋषियों में विस्मय का भाव झलकता है। विविध प्राकृतिक उपादानों की देवता रूप में की गई स्तुतियों में रूप, गुण के साथ-साथ मानवीकरण भी दृष्टव्य है। पृथ्वी को माता के रूप में मानते हुए ऋषि कहते हैं- **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यां।[3]**

यह मात्र एक मंत्र नहीं, पर्यावरण के साथ हमारे सम्बद्धता की घोषणा है। **अथर्ववेद** के **'भूमि सूक्त'** में ऋषि कहते हैं- देवता जिस भूमि की रक्षा, उपासना करते हैं वह मातृभूमि हमें मधुसम्पन्न करे। **'भूमि सूक्त'** के ही एक अन्य मंत्र में यह प्रार्थना की गई है कि भूमि हमें देवताओं के लिए अलंकृत हव्य प्रदान करें। उसी भूमि में

---

[1] ऋग्वेद ((1/91/22)

[2] ऐतरेयोपनिषद् (3/3)

[3] अथर्ववेद ((12/1/12)

मरणशील मनुष्य स्वधा एवं अन्न से जीवन धारण यज्ञ भूमि में करते हैं। वह भूमि हमें वृद्धावस्था तक प्राणप्रद वायु प्रदान करे। पृथ्वी की गोद हमारे लिए सब रोगों से रहित निरोग हो।[1]

पृथ्वी की भांति जल की भी ऋषियों ने आदर भाव से स्तुति की है। वैदिक ऋचाओं में जल को **'अमृत'** की संज्ञा से विभूषित करते हुए इसे 'पाप नाशक', 'महौषधि' तथा 'जीवनदायिनी' कहा गया है- **यआपः इद् वाउ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीः।।**[2]

जल ही औषधि और जल ही रोगनाशक है। जल सब रोगों की एक मात्र औषधि है। **अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्।**[3] जल के भीतर अमृत है, औषधि है।

ऋग्वेद में वरुण देवता की नानाविध तरीके से प्रार्थना की गई है। ऋषि जल प्रदाता के रूप में वरुण देवता की उपासना करते हैं तो इसके कोप से भयभीत भी रहते हैं। **बृहदारण्यकोपनिषद्** में जल को सृजन का हेतु स्वीकार करते हुए इसकी शुद्धता और संरक्षण पर बल दिया है। **शतपथ ब्राह्मण** में जल की महिमा का बखान करते हुए **'आपो वै प्राणः'** कहकर जल को ही प्राण तत्त्व बताया गया है। **वैदिक साहित्य** में पर्जन्य अर्थात् बादलों को भी प्रकृति का महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। ऋग्वेद के पाँचवें मंडल के 83वें सूक्त की कई ऋचाओं में बादल को प्रदूषण का नाशकर्ता तथा

कृषि और वनस्पतियों का मित्र माना गया है-

'मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु"[4]

(मानसून वायु द्वारा चलित मेघ पृथिवी पर खूब वर्षा करें।)

मेघों को जल का अभिन्न अंग मानते हुए यजुर्वेद के तैतिरीय आरण्यक में कहा गया है-

---

[1] अथर्ववेद (12/1/ 22 तथा 12/1/62)

[2] ऋग्वेद (10/137/6)

[3] ऋग्वेद ((1/23/19)

[4] अथर्ववेद (4/15/7)

चत्वारि वा अपां रूपाणि, मेघो विद्युत्स्तनयित्नुर्वृष्टि।[1]

(अर्थात् जलों के चार रूप है- बादल, बिजली, गर्जन और वर्षा।)

पर्यावरण की शुद्धता के लिए वैदिक ऋषि-मुनियों ने वायु की शुद्धता पर भी बल दिया है। वेदों में इसे प्राणवायु कहा गया है। ऋग्वेद में वायु की स्तुति करते हुए ऋषि कहते हैं-

नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि तन्मामवतु।[2]

अर्थात् वायु को नमस्कार है। आप प्रत्यक्ष ब्रह्म है। मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। आप हमारी रक्षा करें। ऋग्वेद का यह मंत्र **यजुर्वेद (36.9)**, **अथर्ववेद (19.9.6)** तथा **तैत्तिरीय उपनिषद् (1)** में यथावत आया है। वायु के गुणों का गान करते हुए ऋग्वेद के दसवें मंडल के 186वें सूक्त में कहा है:-

'वात आ वायु भेषजं मयोभु नो हृदे, प्रण आयुषि तारिषत।[3]

अर्थात् शुद्ध वायु ऐसी अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए उपयोगी है दरअसल वायु शुद्ध होने पर ही जीव-जन्तु, पशु-पक्षी तथा वनस्पतियों का जीवन सुरक्षित रहता है।

पृथ्वी, जल, वायु की भांति आकाश की विराटता के सम्मुख वैदिक ऋषि अभिभूत होकर नतमस्तक हो गए। पंचतत्त्वों से बनी इस सृष्टि में प्रथम उत्पत्ति आकाश की मानी जाती है-

'तस्माद्वा एतस्मात् आत्मनः आकाशः सम्भूतः।[4]

उन्होंने अदृश्य आकाश (द्युलोक) और अंतरिक्ष (नक्षत्र युक्त आकाश) दोनों के पापमुक्त अर्थात् प्रदूषण रहित होने की कामना की है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 35वें सूक्त के 5वें मंत्र में अंतरिक्ष के

---

[1] तैत्तिरीय आरण्यक (1/24/1)

[2] ऋग्वेद (1/90/9)

[3] ऋग्वेद(10/186/1)

[4] तैत्तिरीयोपनिषद् (2/1/2)

शांतिप्रद होने की प्रार्थना की गई है। ऐसे ही यजुर्वेद के 5वें मंडल के मंत्र में आकाश को हानि पहुँचाने अथवा प्रदूषित करने वाले की घोर भर्त्सना की है-

'द्यां मां लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः।[1]

सम्भवतः यहाँ अन्तरिक्ष को हानि पहुँचाने से तात्पर्य ध्वनि एवं वायु प्रदूषण रहा होगा।

ऋग्वेदीय देवों में इन्द्र के बाद अग्नि देव की सर्वाधिक स्तुति की गई है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल का पहला सूक्त ही अग्नि देवता को समर्पित है। वेदों में अग्नि की स्तुति संबंधी 2483 मंत्र है। अकेले ऋग्वेद में अग्नि विषयक 200 सूक्त है। अग्नि को प्रकाशस्वरूप मानते हुए वैदिक ऋषि यज्ञ अनुष्ठान में इसका आह्वान करते हैं-

'अग्न ना याहि'[2]

अर्थात् अग्नि रोगनाशक है, पापनाशक है। यज्ञ में वातावरण को शुद्ध,अग्नि ही करती है-

'ऊँ अग्नेय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोघस्मज्जुहराण मेनो भुइष्ठान ते नमः उक्ति विधेम्।।[3]

अर्थात् 'हे देव सबके मार्गदर्शक भगवन् आप सब ज्ञानों के ज्ञाता है। अतः हम आपकी बहुत-बहुत स्तुति करते हैं। आप हमें सुपथ पर ले चलिए। हमसे कुटिल पाप को परे रखिए।'

वैदिक समाज में अग्नि देवता को आदर-सम्मान के साथ देखा जाता था। इस प्रकार वैदिक साहित्य में पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और अग्नि के महत्व को सराहा गया है तथा इनकी स्वच्छता एवं संरक्षण के उपायों पर विशद् चर्चा भी की गई है।

यजुर्वेद में संपूर्ण सृष्टि की शान्ति की कामना की गई है -

---

[1] यजुर्वेद (5/43)

[2] सामवेद(1/1)

[3] ऋग्वेद (1/189/1)

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिः रोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिब्रह्मा शान्तिः सर्वः शान्तिः। शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

यह स्पष्ट करता है कि हमारी संस्कृति में प्राकृतिक संतुलन और सौहार्द सर्वोपरि रहा है।

ईशोपनिषद का उद्घोष है:

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन् भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[1]

यह बताता है कि संपूर्ण जगत में परमात्मा का वास है, इसलिए हर वस्तु की रक्षा और मर्यादा आवश्यक है।

श्रीराम का वनवास मात्र एक दंड नहीं, प्रकृति से तादात्म्य का प्रतीक है। महाभारत में पाण्डवों का वनवास काल प्रकृति के संरक्षण का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

स्कन्द पुराण में वृक्ष के महत्त्व का उल्लेख प्राप्त होता है-

वृक्षाणां यः प्रदाय स्वं छायां सुकृतिनां नरः।
स वै स्वर्गे महीयते सदा देवैः समर्चितः॥

जो वृक्षारोपण करता है, वह स्वर्ग का अधिकारी होता है।

मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को दस सन्तान के समकक्ष बताया गया है-

दशकूपसमा वापी, दशवापी समो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः॥

अर्थात् एक वृक्ष दस पुत्रों के समान मूल्यवान है।

आयुर्वेदशास्त्र का पर्यावरणीय दृष्टि से अवलोकन करने पर हमें मानव पर पड़ने वाले पंचमहाभूत के प्रभावों की समझ विकसित होती है, कि आयुर्वेद और पंचमहाभूत में क्या संबंध है? पंचमहाभूत से मनुष्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का आयुर्वेद कैसे उपचार कर

---

[1] ईशोपनिषद-1

सकता है? चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में शुद्ध जल, स्वच्छ वायु और स्वाभाविक जीवनशैली को स्वास्थ्य का मूलमंत्र बताया गया है।

यह कहना अनुचित न होगा कि संस्कृत वाङ्मय न केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों का भंडार है, बल्कि यह हमारी प्रकृति, पर्यावरण और सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति श्रद्धा का भी अमूल्य स्रोत है। हमारे ऋषियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व ही यह समझ लिया था कि मानव और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक हैं। वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों तथा स्मृति ग्रंथों में जो पर्यावरण के प्रति भावना दिखाई देती है, वह आज के वैज्ञानिक युग में भी अत्यन्त प्रासंगिक है।

आज जब मानवता- जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, और प्राकृतिक असंतुलन इत्यादि पर्यावरण संकट का सामना कर रही है। ऐसे समय में संस्कृत वाङ्मय हमारे लिए एक प्रकाश स्तम्भ की भांति है। यह हमें केवल समाधान नहीं देता अपितु जीवन के साथ जीने की कला भी सिखाता है।अतः हमें अपने प्राचीन ज्ञान से प्रेरणा लेकर, पर्यावरण के संरक्षण हेतु सजग और संकल्पित होना चाहिए।

नदी तभी पूज्य होती है जब वह जल से भरी हो और निम्न दिशा में बहती हो। ऊँचाई पर होने मात्र से कोई महान नहीं होता। गहराई और विनम्रता ही गुण है।

या पश्यति निम्नगति सरितः,
सा वन्दनीया जलपूरिता च।
उच्चैः स्थिताः स्फुरिता न तु सा,
याति लघुत्वं सलिलं समाहितम्॥

(दृष्टान्तशतकम्)

मानव धर्मानुसार आचरण करेगा तो विश्व में स्वतः शान्ति का संचार होगा। **वेदव्यास** जी ने कहा है-

श्रूयतां धर्म सर्वस्य श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ [1]

धर्म का सर्वस्य सुनिये और सुनकर व्यवहार में उतारिये, जो बात आपके लिये अनुकूल न हो वह दूसरों के लिए मत कीजिए। प्रकृति से प्रेम, जीवन का परम धर्म है-

"धरती(यथार्थ) उठाती है मुझे ऊपर,
आकाश(कल्पना) ताकता है नीचे भू पर
ऐसे जैसे अंक में लेना चाहता है निश्शंक
मगर उसकी आँखों में हिचक है थोड़ी-सी
यों कि धरती उछाल तो रही है मुझे ऊपर
मगर फिर से अंक में लेने के लिए मुझे
आकाश की गोद में देने के लिए नहीं!"[2]

❖ **सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-**

1. ईशादि नौ उपनिषद् हि. आ. हरिकृष्णदास गोयनका, गीताप्रेस गोरखपुर, (सम्वत् 2060)।
2. बृहदारण्यकोपनिषद्, शांकर भाष्य, हि. मा. गीताप्रेस गोरखपुर, (सम्वत्-2060)।
3. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आपटे, संपादक-उमा प्रसाद पांडे, नूतन संस्करण, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. ऋग्वेद: भाष्यकार- महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती, प्रकाशक: विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण 2024 ई.।
5. अथर्ववेद : भाष्यकार- पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी, प्रकाशक- विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण 2022 ई.।
6. तैत्तिरीय आरण्यक सायणाचार्य विरचित, कलकत्ता से सम्वत् 1792 ।
7. श्रीमद्भगवतगीता, समर्पण भाष्य- स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, दिल्ली संस्कृत अकादमी, नई दिल्ली, 2013 ई.।

---

[1] पद्म पुराण सृष्टि खंड(19.357-58)

[2] भवानी प्रसाद मिश्र (बुनी हुई रस्सी– कविता संग्रह)

रामायण में पर्यावरणीय चिंतन

खुशबू प्रजापति
शोधार्थी, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

शोधसार:-

वैदिक साहित्य के अवसान काल के पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य का उद्भव होता हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य में ऐसे दो महान ग्रन्थो रामायण एवं महाभारत का उदय होता हैं जिन्होंने भारतीय साहित्य तथा जनजीवन को अत्यंत प्रभावित किया भारतीय महाकाव्य में वाल्मीकि रामायण एक अनुपम ग्रंथ है जिसने न केवल धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मान्यताओं को आकार दिया, बल्कि पर्यावरणीय चेतना के विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। रामायण में वन, नदी, पर्वत, पशु-पक्षी, ऋषि आश्रम, वन्य-जीव पारिस्थितिकी संतुलन सह अस्तित्व तथा सतत् उपयोग जैसे अनेक पर्यावरणीय तत्त्व गहन संवेदना के साथ चित्रित हैं। वर्तमान सरकार के द्वारा लाई गई सतत् विकास योजना को रामायण में स्पष्टतः दिखाया गया हैं। इस शोध-पत्र में रामायण के प्रसंगो, पात्रों के वर्णन के माध्यम से प्रकृति चिंतन के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। वाल्मीकि रामायण आधुनिक पर्यावरणीय संकटों से निपटने में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता हैं।

प्रस्तावना:-

मानव सभ्यता का आरंभ से ही प्रकृति उसके जीवन का आधार रहीं हैं। भारतीय संस्कृत साहित्य की मूल चेतना में प्रकृति और मानव परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। रामायण जिसे आदि कवि वाल्मीकि ने लिखा हैं। प्रकृति के सौंदर्य उसकी संवेदनशीलता तथा पर्यावरण संतुलन का दार्शनिक एवं अद्भुत सामंजस्य को स्थापित करता हैं। आदिकवि वाल्मीकि स्वयं प्रकृति के गोद में रहते

हुए रामायण के रचना की हैं। जिससे उनके काव्य में प्रकृति के प्रति संवेदना अत्यंत स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

शोकः श्लोकत्वमागतः यह उक्ति स्पष्ट करती है कि रामायण का आधार प्रकृति ही है।

रामायण का अधिकांश भाग वन-चैत्ररथ, दण्डकारण्य, चित्रकूट पंचवटी- प्रवेश आदि में व्यतीत होता हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ भारतीय वन- संस्कृति और पर्यावरणीय नीति-शास्त्र का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। रामायण की अमरता एवं जीवन्तता को भी वाल्मीकि जी ने पर्यावरण एवं प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया हैं।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयःसरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथालोकस्य प्रचारिष्यति।।

(1/2/37)

वाल्मीकि द्वारा रचित यह महाकाव्य पर्यावरणीय नैतिकता, संरक्षण, कृतज्ञता, संतुलित उपभोग और करुणा के सिद्धांतों को अत्यंत सरल तथा जीवनवादी रूप में प्रस्तुत करता है। प्रकृति की पवित्र अनुभूति और दार्शनिक आधार तथा प्रकृति को जीवंत सत्ता के रूप में रामायण मे प्रस्तुत किया गया हैं। रामायण में प्रकृति 'जड़' नहीं हैं वह संवेदनशील, जीवंत और पवित्र सत्ता है। नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी सभी को चेतना-पूर्ण रूप में चित्रित किया गया है। उदाहरण के लिए गंगा को माता के रूप में संबोधित किया गया है-

गंगे त्रिपथगा शुभ्रे लोकानां पावनी शुभा।

(बालकाण्ड, सर्ग 23, श्लोक-3)

इस श्लोक में गंगा को 'पावनी' कहा गया है- अर्थात् जो मन और शरीर दोनों को पवित्र करती है। वन, पर्वत और वृक्ष भी दिव्यता से परिपूर्ण हैं। चित्रकूट का वर्णन में राम बताते हैं-

"अयं च देशः सुचरः सुवासो रम्यप्रसन्नो बहुपुष्पवृक्षः।"

रामायण प्रकृति को एक 'मित्र-स्वरूप' के रूप में स्थापित करता है। रामायण में मनुष्य और प्रकृति के बीच संघर्ष नहीं, बल्कि सामंजस्य है। राम वन्य प्राणियों को सहचर मानते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं देते। राम का यह कथन-

"वनानि न दहत्यग्निः, पश्य धर्मं सनातनम्।"

संकेत करता है कि प्रकृति को नष्ट करना धर्म-विरुद्ध है। रामायण में वन-संस्कृति और जैव-विविधता स्पष्टतःदिखायी देती हैं। दंडकारण्य, चित्रकूट, पंचवटी, ऋष्यमूक पर्वत आदि वनों का वर्णन पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। वाल्मीकि ने सैकड़ों प्रकार के वृक्षों, पशुओं, पक्षियों और औषधियों का वर्णन किया है।

उदाहरणतः-

"नानाविधैः पक्षिगणैर्निनादितम्।"

वन की ध्वनियाँ यहाँ जीवन का संकेत बनकर आती हैं। वनवास पर्यावरणीय तप और आत्म-अनुशासन की शिक्षा देते हैं।

राम, सीता और लक्ष्मण का तेरह वर्ष का वनवास प्रकृति के साथ मानवीय संवाद का प्रतीक है। उनका जीवन न्यूनतम उपभोग पर आधारित था- जो आधुनिक सतत् विकास का मूल सिद्धांत है। राम कहते हैं-

"फलमूलाशनं नः स्याद्वन्यैश्च सह वासः।"

आवश्यकता-भर उपभोग और प्रकृति के प्रति सम्मान का यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं। क्रौंच वध प्रसंग, प्रकृति-करुणा ही रामायण आविर्भाव का मूल आधार हैं।

वाल्मीकि ने रामायण की रचना जिस करुणा से की, वह पर्यावरणीय संवेदना का अद्भुत उदाहरण है। क्रौंच पक्षी के वध पर वाल्मीकि का श्लोक-

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकम् अवधीः काममोहितम्॥"

(बालकाण्ड)

यह वस्तुतः प्रकृति-हिंसा के विरुद्ध मानवीय संवेदना की घोषणा है। चित्रकूट पर्वतीय पारिस्थितिकी के आदर्श को स्थापित करता हैं। चित्रकूट का सौंदर्य केवल प्राकृतिक नहीं, आध्यात्मिक भी है। यहाँ के वन, नदी, पर्वत, पशु-पक्षी सभी राम के मन को शांति प्रदान करते हैं। वाल्मीकि लिखते हैं-

"रम्याश्च गिरयः श्रीमन् रम्यानि जलदाः स्थलम्।
नाना विधानां सिद्धानां वासायायं महागिरिः।।

(अयोध्याकाण्ड सर्ग 94 श्लोक 14)

यह परिदृश्य प्रकृति और मनुष्य के सौंदर्यमय मिलन का प्रतीक है। पंचवटी : संतुलित पारिस्थितिकी का नमूना को प्रस्तुत करती हैं। राम द्वारा पंचवटी का चयन पर्यावरणीय आधारों पर ही होता है:

- **शांत वातावरण**
- **स्वच्छ जल**
- **औषधियों की उपलब्धता**
- **वन्य जीवों का संतुलन**
- **सुरक्षित स्थल**

सीता का वृक्षों से बात करना-

"अशोक वनिकेनाम शोकनाशनकारिणि"

(सुन्दरकाण्ड,सर्ग-15, श्लोक-20)

वृक्ष-संवेदनशीलता का सुंदर उदाहरण है।

जटायु प्रसंग पशु जीवन की गरिमा को बढ़ाता हैं। जटायु के प्रति राम की श्रद्धा प्रकृति में पशु-पक्षियों की समान भागीदारी का संदेश देती है।

राम कहते हैं-

"न मे दुःखं प्रियस्येति प्राणसंशयमागतम्।"

(अरण्यकाण्ड, सर्ग 67, श्लोक-5)

जटायु का अंतिम संस्कार कर राम बताते हैं कि पशु केवल संसाधन नहीं, परिवार का हिस्सा हैं।

लंका: पर्यावरण-विनाश और दुरुपयोग का प्रतीक हैं। रावण समृद्धि हेतु प्रकृति का अत्यधिक दोहन करता है। स्वर्ण-लंका 'वैभव के अतिरेक' का प्रतीक है।

परिणाम- सम्पूर्ण राज्य विनाश की ओर अग्रसर होता है। रामायण यह संदेश देती है कि-

"प्रकृति-विरोधी आचरण अंततः विनाशकारी होता है।"

जिसका जीवन्त उदाहरण हम ऋतुओं की अनियमितता, भूस्खलन, अत्यधिक बाढ़ का आना आदि दुष्परिणाम देख सकते हैं। पर्यावरण के विविध तत्वों का विश्लेषण एवं संवर्धन सारगर्भित तरीके से व्यक्त किया गया हैं। वृक्ष-पूजन और वनस्पति-संरक्षण रामायण में वृक्ष केवल जीव नहीं, भावनात्मक साथी भी हैं। सीता अशोक-वृक्ष से अपनी पीड़ा साझा करती हैं। लक्ष्मण वृक्षों को प्रणाम करते हुए आश्रय मांगते हैं। वाल्मीकि ने वृक्षों के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त किया-

"वृक्षा एव मनुष्याणां जीवनम्।" (भावार्थ)

नदी-संस्कृति और जल-चेतना सरयू, गंगा, गोदावरी, मंदाकिनी- ये सभी नदियाँ रामायण में जीवनदायिनी कही गई हैं। राम का गोदावरी से संबोधन-

"देवि गोदावरी पुण्ये द्रष्टुं इच्छाम् सीतया।"

(अरण्यकाण्ड,सर्ग 56, श्लोक-5)

जल को देवी रूप में स्वीकारने का भाव आज के जल-संकट के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। पशु-पक्षियों के प्रति करुणा वन्य जीव रामायण में पारिस्थितिकी के अंग हैं।

वानर-भालू सेना यह सिद्ध करती है कि मानव और वन्य जीव सहयोगी हो सकते हैं। यह आधुनिक वन-प्रबंधन के सिद्धांतों

जैसा है। पर्वत,आश्रमों, औषधियों और जलस्रोतों का आधार हैं। ऋष्यमूक पर्वत पर्यावरण-सहजीवन का प्रतीक है। पारिस्थितिकी, नैतिकता और सामाजिक दायित्व का बोध कराता है तथा संतुलित उपभोग का सिद्धांत की सीख देता हैं। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट निर्देश है कि मनुष्य प्रकृति का सीमित और जिम्मेदार उपभोग करे। राम और ऋषि-मुनि कभी भी आवश्यकता से अधिक संसाधन नहीं लेते। रामायण यह शिक्षा देती है कि प्रकृति का संरक्षण केवल नीति नहीं, धर्म है। राम कहते हैं-

"धर्मो हि परमं बलम्।"

अर्थात् प्रकृति की रक्षा धर्म का अभिन्न अंग है।

आज वनों की कटाई, प्रदूषण, तापमान वृद्धि आदि समस्याएँ चरम पर हैं। रामायण हमें बताती है-

- **प्रकृति के साथ आदर और प्रेम का व्यवहार करो**
- **वन, जल, प्राणी सभी के प्रति जिम्मेदारी निभाओं**
- **आवश्यक मात्र उपभोग करो।**
- **अति दोहन विनाश का कारण हैं।**

रामायण के पर्यावरणीय सिद्धांत आज की जलवायु नीतियों, शिक्षा और समाजिक कार्यक्रमों में अपनाए जा सकते हैं।

निष्कर्ष:-

वाल्मीकि रामायण एक महाकाव्य होने के साथ-साथ पर्यावरणीय दर्शन का जीवंत दस्तावेज भी है।

इसमें नदी, वन, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी सभी को भावनात्मक गहराई और दार्शनिक ऊँचाई के साथ चित्रित किया गया है।

राम, सीता और लक्ष्मण का वन-जीवन हमें सिखाता है कि प्रकृति का सम्मान, संरक्षण और न्यूनतम उपभोग मानव जीवन का आधार है।

क्रौंच वध प्रसंग पर्यावरणीय करुणा की नींव रखता है, चित्रकूट प्राकृतिक सौंदर्य का आदर्श बनता है, पंचवटी संतुलित पारिस्थितिकी का प्रतिरूप है और जटायु प्रसंग पशु जीवन की गरिमा का बोध कराता है। वहीं रावण की लंका पर्यावरण-विनाश के दुष्परिणामों को स्पष्ट करती है।

आज जब पृथ्वी गंभीर पर्यावरणीय संकटों से गुजर रही है, रामायण का संदेश अत्यंत आवश्यक है-

"प्रकृति के साथ सामंजस्य ही मानवता का सच्चा धर्म है।"

अतः वाल्मीकि रामायण आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श के लिए प्रेरक, प्रासंगिक और मार्गदर्शक ग्रंथ के रूप में स्थापित होती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकरशर्मा ऋषि
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय
- वाल्मिकि रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर

ज्योतिषशास्त्रीय दार्शनिक-चिन्तन पद्धति में पर्यावरण संरक्षण विषयक चेतना और भारतीय ज्ञान परम्परा का सन्दर्भगत विशिष्ट दृष्टिकोण

डॉ. राजीव रंजन,

सहायक आचार्य, ज्योतिष

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परम्परा में पर्यावरण के विविध घटकों के प्रति चेतना तथा प्रकृति के उन अवयवों के संरक्षण और परिवर्द्धन हेतु अनेक प्रयास दृष्टिगत होते है। वैदिक साहित्य विशेषतः वैदिक संहिताओं(ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्गों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति मानवजाति तथा मनुष्य मात्र के उद्बोधन का गम्भीर उपक्रम किया गया है। पर्यावरण के विविध कारकों यथा वृक्ष, पशु, पर्वत, मनुष्यमात्र, जल, भूमि, वायु, तापमान, प्रकाश, सूक्ष्मजीव, अन्तरिक्ष, ब्रह्माण्ड, समस्त सजीव और निर्जीव पदार्थ व वस्तुओं को ऋग्वेद आदि चारों वेदों में पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। ऋग्वेद में वर्णित अनेक देवताओं तथा उन वैदिक देवताओं को समर्पित मन्त्रों में पर्यावरण संरक्षण की आद्य प्रवृत्ति के दर्शन हो जाते हैं। पर्यावरण के विभिन्न अवयवों के संरक्षण, पोषण तथा परिवर्द्धन के प्रति वैदिक ऋषियों की चिन्तन परम्परा के अविरल प्रवाह का दर्शन वेदाङ्ग साहित्य में भी उपलब्ध है। ज्योतिष वेदाङ्ग का सम्पूर्ण साहित्य पर्यावरण संरक्षण की उदात्त भावना से ओत-प्रोत है।

पर्यावरण की परिभाषा एवं स्वरूप- पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- परि+आङ्+वृ+ल्युट्। परितः आ समन्तात् वृणोति इति पर्यावरणम्। अर्थात् पर्यावरण वह है जो सम्यक रूपेण

चारों ओर से आवृत्त करे। स्पष्ट है कि मनुष्य को आवृत्त करनेवाले समस्त जैविक तथा अजैविक घटक पर्यावरण के अन्तर्गत समाहित हैं। अंग्रेजी भाषा में Environment शब्द पर्यावरण का समानार्थक है। Environment शब्द की परिभाषा देते हुए 'Oxford Dictionary' में कहा गया है- "Environment refers to the surroundings or conditions in which a person, animal, or plant lives or operates". अर्थात् पर्यावरण शब्द का तात्पर्य उन परिस्थितियों या परिवेश से है, जिसमें कोई व्यक्ति, पशु या पादप रहता है या कार्य करता है। प्रख्यात् पर्यावरणविद् A. G. Tansley ने पर्यावरण की परिभाषा इस प्रकार दी है- "The environment includes not only living beings but also all the factors that affect their lives. अर्थात् पर्यावरण में जीवों के साथ-साथ वे समस्त अवयव सम्मिलित होते हैं, जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं। UNESCO (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization) के अनुसार 'Environment is the external surrounding including all biotic and abiotic factors that influence each living being'. अर्थात् पर्यावरण वह बाह्य परिवेश है, जिसमें समस्त जैविक एवं अजैविक घटक सम्मिलित होते हैं, जो प्रत्येक जीव को प्रभावित करते हैं। वहीं वर्तमान भारतीय परिदृश्य में पर्यावरण के विषय में भारत सरकार के दृष्टिकोण को समझने के लिए 'भारतीय पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 द्रष्टव्य है। इसमें बताया गया है कि "Environment includes water, air and land and the inter-relationship which exists among and between water, air and land, and humen beings, Other living creatures, plants, micro-organisms and property". अर्थात् पर्यावरण में जल, वायु, भूमि तथा इनके बीच और इनके साथ मनुष्य, अन्य जीवधारी, पौधे, सूक्ष्मजीव एवं संपत्ति के बीच पारस्परिक अन्तःसम्बन्ध सम्मिलित हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं तथा प्रशासनिक दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करने से एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के चारों ओर का आवरण चाहे वह जैविक हो या अजैविक, चाहे प्राकृतिक हो या कृत्रिम, स्थलीय हो या जलीय, भौतिक हो या सामाजिक ये सभी पर्यावरण के घटक के रूप में परिगणित होंगे। उपरोक्त वर्गीकरण को निम्नलिखित रेखाचित के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं-

पर्यावरणपरक वैदिक दृष्टिकोण- वैदिक साहित्य विशेष रूप से वैदिक संहिताओं के विभिन्न सूक्तों, मन्त्रों तथा प्रसङ्गों में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहरी श्रद्धा, संवेदनशीलता, सम्मान तथा संरक्षण की भावना अभिव्यक्त की गई है। वैदिक साहित्य में सह-अस्तित्व की भावना को स्थापित करते हुए मानव जाति को प्रकृति और पर्यावरण के विविध घटकों पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और वनस्पतियों के साथ संतुलित व्यवहार तथा सह-अस्तित्व और परस्पर निर्भरता का संदेश प्रदान किया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में पर्यावरण को जीवन का मूलाधार माना गया है। उपरोक्त वैदिक सन्दर्भों पर अगर हम दृष्टिपात करते हुए गहन चिंतन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्प्रति आधुनिक चिन्तन परम्परा और विज्ञान ने जिस पर्यावरणीय संकट पर विगत कुछ दशक पूर्व ही चिन्तन करना आरम्भ किया है। उन गंभीर विषयों पर वैदिक ऋषियों ने कई सहस्राब्दियों पूर्व ही गहन विमर्श करना शुरू कर दिया था। साथ ही साथ उन तपःपूत महर्षियों ने अपनी अन्तःचेतना तथा दिव्य प्रज्ञा के द्वारा एक ऐसे समग्र जीवन-दर्शन का सूत्रपात किया जिसमें मनुष्य का अपने पर्यावरण और प्रकृति के साथ संतुलन बनाते हुए जीवन जीने की प्रेरणा निहित है। पर्यावरण के प्रत्येक अवयवों की महत्ता वैदिक साहित्य के अलग-अलग स्थलों पर स्थापित की गई है। जैसे अथर्ववेद में ऋषि ने स्पष्ट रूप से कहा- आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि। अर्थात् जल, वायु और वनस्पति का पर्यावरण में प्रमुख स्थान है। 'यजुर्वेद' भी द्यौ तथा पृथिवी की रक्षा करने का स्पष्ट उद्घोष करता है और कहता है

कि द्यौ और भूमि साक्षात् माता-पिता के समान होने के कारण रक्षा करने योग्य हैं। 'पृथिवी माता द्यौष्पिता'। अथर्ववेद ने वायु को प्राणस्वरूप निर्दिष्ट किया है- 'वातो देवो मनुष्याणाम्' ऋग्वैदिक ऋषियों ने सह-अस्तित्त्व की भावना को स्थापित करते हुए जीवों और प्रकृति के मध्य गहन सम्बन्ध को रेखांकित किया है। वहीं यजुर्वेद संहिता में ऋषि ने प्रकृति के विभिन्न घटकों यथा वायु, सूर्य, वृष्टि आदि से संतुलित अवस्था में रहने की प्रार्थना की है। पर्यावरण के विविध अवयवों के साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार और उन अवयवों के अनियंत्रित व अनावश्यक दोहन के प्रति अथर्ववेद में ऋषियों ने सचेत किया है। प्रकृति व पर्यावरण के प्रत्येक घटक के साथ अहिंसा एवं संयमपूर्ण व्यवहार हो, यही अथर्ववेद के ऋषियों को अपेक्षित रहा है। संस्कृत शास्त्रों की समृद्ध परम्परा में निहित पर्यावरण-विषयक चिन्तन केवल सिद्धान्त मात्र नहीं हैं, अपितु एक समग्र और सन्तुलित जीवन-पद्धति की पूर्वपीठिका है।

विविध शास्त्रीय परम्परा में पर्यावरण-संरक्षण के तत्त्व- पंचमहाभूतविषयक सिद्धान्तों की स्थापना, वृक्षों और नदियों की उपासना, ऋतुचर्या का पालन, यज्ञानुष्ठान की समृद्ध परम्परा, आयुर्वेद में प्राकृतिक जीवनशैली, वास्तुशास्त्र में वनस्पति-भूमि आदि का विमर्श, ज्योतिषशास्त्र में पञ्चमहाभूत का नवग्रहों-नक्षत्रों-राशियों-विविध उपायों में विनियोग, ये समस्त विषय एक समग्र और सर्वव्यापक पर्यावरणीय दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। मानव, प्रकृति एवं पर्यावरण के मध्य घनिष्ठ व परस्परावलंबी दृढ़ सम्बन्धों की स्थापना की दिशा में संस्कृत के प्रत्येक शास्त्र ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति व पर्यावरण को केवल भौतिक दृष्टि से ही नहीं वरन आध्यात्मिक, नैतिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से भी विश्लेषण किया गया है। जहाँ वैदिक काल में नदियों, पर्वतों, वृक्षों, वनास्पितियों, वायु, अग्नि, सूर्य,

वृष्टि आदि पर देवत्व का आरोप कर इनकी उपासना द्वारा पर्यावरण संरक्षण के सन्देश को स्वतः ही जनमानस में समाहित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया। वही उपनिषद् साहित्य में ऋषियों ने कहा- 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् अर्थात् प्रकृति में जो कुछ भी है वह ब्रह्मस्वरूप ही है। अतएव उसका अनावश्यक दोहन या उनके साथ हिंसापूर्ण व्यवहार पापकर्म ही माना गया साथ ही साथ 'छान्दोग्योपनिषद्' में वैदिक ऋषि ने स्पष्टरूप से कहा है- 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। दर्शनशास्त्र जिसे ज्ञान के सर्वोच्च स्वरूप में मान्यता प्राप्त है, वह भी केवल जीव, आत्मा, ब्रह्म के अन्वेषण तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह भी समग्र जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करने की दिशा में सफलतापूर्णक अपने उद्देश्य में सफल रहा है। भारतीय दर्शनशास्त्र ने मानव और प्रकृति के मध्य सह-अस्तित्व, समरसता और परस्पर उत्तरदायित्व की अवधारणा को जनमानस में स्थापित करने का महनीय कार्य किया है। भारतीय दर्शनशास्त्र की परम्परा द्वारा स्थापित पञ्चमहाभूत सिद्धान्त इस दृष्टिकोण से अतीव महत्वपूर्ण है। जिसके अनुसार प्रकृति को पञ्चमहाभूतों- पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का संयोग माना गया है।

जबकि सांख्य दर्शन में प्रकृति को चेतना से युक्त न मानते हुए भी उसे सम्माननीय और आत्मचेतन के उन्नयन का साधन माना है- 'प्रकृतिः कारणं पुरुषः भोक्ता"। पतञ्जलि योगसूत्र में अहिंसा, शौच, संतोष आदि सदृश यम-नियम आदि को पर्यावरणीय सदाचार का मूल संस्थापक माना जा सकता है- 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः'। स्पष्ट है कि योगदर्शन न केवल शारीरिक व मानसिक नियंत्रण और सुदृढीकरण का साधन नहीं, अपितु जीवन के समग्र आयामों में संतुलन, संयम और समर्पण की दिव्य विधि है। जो न केवल आन्तरिक अपितु बाह्य पर्यावरण को भी शुद्ध करने के सामर्थ्य से युक्त है। जहाँ तक न्याय-वैशेषिक दर्शन का प्रश्न है यह वस्तु और

पर्यावरण के मध्य वैज्ञानिक दृष्टि को प्रस्तुत करता है। वैशेषिक दर्शन में नव द्रव्य स्वीकृत किये गए हैं- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इन नवविध द्रव्यों में पांच द्रव्य तो प्रत्यक्षरूपेण पर्यावरण के घटक हैं- द्रव्यगुणकर्मसंयोग विभागाः पदार्थाः'। वस्तुतः न्याय-वैशेषिक दर्शन का यह दृष्टिकोण पर्यावरण को उनके अवयवों के सहित वस्तु रूप में समझाने का प्रयत्न करता है। परन्तु साथ ही साथ पर्यावरण को भी एक सुव्यवस्थित संगठन और व्यवस्था के रूप में देखता है, जिसके प्रत्येक घटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को ही परम सत्य के रूप में स्थापित किया गया है- 'सर्व खल्विदं ब्रह्म'। इस भारतीय दर्शन ने अपने दृष्टिकोण में प्रकृति और ब्रह्म के मध्य अभेद स्थापित करते हुए प्रकृति व शेष जगत को ब्रह्म का विकार नहीं अपितु ब्रह्म के प्रकट रूप में स्वीकार किया है। यदि ऋषि एवं आचार्यगण प्रकृति के प्रत्येक घटक को ब्रह्म ही स्वीकार करते हैं, तो यह मानवजाति के लिए स्पष्ट संदेश है कि पर्यावरण के प्रत्येक अवयव यथा वृक्ष, नदी, जीव, वायु, भूमि, पर्वत आदि का उपकार स्वयं के प्रति उपकार सदृश ही होगा। वहीं इन पर्यावरणीय घटकों के प्रति अपकार वस्तुतः स्वयं का ही अपकार है। जैन धर्म-दर्शन का मूल आधार अहिंसा ही है। अहिंसा की इसी श्रेष्ठ भावना को जैनधर्म दर्शन में चरम सीमा तक ले जाकर समस्त प्राणियों, वनस्पतियों, जल, अग्नि, वायु आदि के प्रति करुणा का असीम भाव विकसित किया गया है- "अहिंसा परमो धर्मः"। जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत पञ्चमहाव्रत-विषयक सिद्धान्त में भी पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी भावना अन्तर्निहित है। यथा 'अहिंसा' समस्त प्राणी जगत के साथ-साथ निर्जीवों के प्रति भी संरक्षण की भावना को स्थापित करता है। 'अपरिग्रह' पर्यावरणीय घटकों के अनावश्यक संग्रह तथा दोहन का निषेध करनेका अद्‌भुत साधन है। वहीं सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य मानव मात्र में संयम की प्रवृत्ति को विकसित करने

में सहायक सिद्ध होता है। बौद्ध धर्म दर्शन धर्म-दया, करुणा की आधारशिला पर ही अवस्थित है। 'पंचशील' में जीव हत्या की निन्दा करते हुए जीवों की हत्या का निषेध किया गया है- "सवे पाण भूत जीवितुकामा"। बौद्ध-दर्शन में प्रकृति को संवेदनशील इकाई के रूप में स्थापित किया गया है। यदि उपरोक्त दार्शनिक दृष्टिकोण का समन्वयात्मक स्वरूप समझने का प्रयास किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन शास्त्रों ने वस्तुतः प्रकृति व पर्यावरण के विविध घटकों का मूल्यांकन करते हुए पर्यावरण और जीव के सह-अस्तित्व की भावना को स्वीकृति प्रदान की है। मानवमात्र के लिए संयम, संतुलन तथा करुणा की शिक्षा स्थापित करते हुए न केवल आंतरिक पर्यावरण अपितु बाह्य पर्यावरण की शुद्धि पर भी अतिरिक्त बल दिया है।

वैश्विक पर्यावरणीय संकट के भावी संभावनाओं को निर्मूल करने की दिशा में मनुष्य के भोगवादी दृष्टिकोण तथा प्रकृति से अलगाव की प्रवृत्ति को विनष्ट करना भी भारतीय दार्शनिक परम्परा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य रहा है। जीव, मनुष्य तथा पर्यावरण के अलगाव के किसी भी संभावना को समाप्त कर एकात्म दृष्टिकोण को स्थापित कर दार्शनिक परम्परा ने यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं अपितु भागीदार मात्र हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का यह वैशिष्ट्य रहा है कि इसने किसी भी विषय की विवेचना में उसके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही पक्षों का समन्वय बना कर रखा है, एवं उस शास्त्र के उपरोक्त समन्वित स्वरूप को ही जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया है। ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने भी उपरोक्त भारतीय चिंतन और दार्शनिक दृष्टिकोण की उज्ज्वल परम्परा को विस्मृत नहीं किया है।भारतीय ज्योतिषशास्त्र की यह परम्परा प्रथमदृष्ट्या तो केवल भविष्य-कथन का शास्त्र ही प्रतीत होता है। परन्तु वेदाङ्ग के रूप में यह कालविधानशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है- 'ज्योतिषं कालविधान-शास्त्रम्'। यद्यपि यह शास्त्र व्यक्ति के जीवन में घटित होनेवाले

संभावित शुभाशुभ घटनाओं की भविष्यवाणी करने वाली विद्या के रूप में तो प्रतिष्ठित है ही, तथापि यह ब्रह्माण्डीय चेतना, प्राकृतिक परिवेश, पर्यावरण, ग्रह-नक्षत्रों और अन्य आकाशीय पिण्डों के पृथिवी और अन्य जीवों के साथ-साथ अजीव वस्तुओं पर पड़नेवाले प्रभावों के समग्र अध्ययन का भी शास्त्र है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र में पर्यावरणपरक दृष्टि- भारतीय ज्योतिषशास्त्र 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। जिसके अनुसार माना जाता है कि बह्माण्ड व आकाशीय पिण्डों आदि से मानव शरीर, पृथिवी पर घटित होने वाली विभिन्न घटनाएँ, जलवायु, ऋतु, वन, जलस्रोत, भूमि की उर्वरता आदि विषय परस्पर सम्बद्ध हैं। प्राचीन ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक ऋषियों एवं परवर्ती आचार्यों ने प्रकृति एवं पर्यावरण के घटकों को केवल उपभोग मात्र की वस्तु न मानकर चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। यही कारण है कि कल प्राच्य ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में ऋतुचक्र, वृष्टि-विमर्श, भूकम्प, पर्यावरणीय संतुलन, विविध आपदाओं, ग्रहों का पर्यावरण के विविध अवयवों से पारस्परिक सम्बन्ध विषयक अनेक सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं।

पञ्चमहाभूत और पर्यावरणीय समन्वय- भारतीय दार्शनिक और ज्योतिषीय प्रणाली में वर्णित पञ्चमहाभूत सिद्धान्त में पर्याप्त साम्य दृष्टिगत होता है। दोनों ही शास्त्रों में पंचमहाभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को समस्त सृष्टि का आधार स्वीकार किया गया है। जहाँ तक ज्योतिषशास्त्र में वर्णित ग्रह और पञ्चमहाभूतों के मध्य पारस्परिक संबंधों का प्रश्न है, तो उसके अनुसार अग्नि, भूमि, आकाश, जल और वायु के अधिपति क्रमशः मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ग्रह हैं ।

महाभूत	अग्नि	पृथिवी	आकाश	जल	वायु
ग्रह	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि

इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में 27 नक्षत्रों का भी विशिष्ट वृक्षों एवं वनस्पतियों से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यह शास्त्रोक्त व्यवस्था केवल प्रतीकात्मक नहीं है, अपितु पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्त्व को सिद्ध होता है। आचार्य वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'बृहत् संहिता' में जलवायु विज्ञान से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। आचार्य ने वृष्टि, भूकम्प, फसल, पशु-पक्षियों के व्यवहारादि तथा ग्रहों की आकाशीय स्थिति के मध्य सम्बन्धों का विश्लेषण किया है। ज्योतिषशास्त्र में 'कालपुरुष' सम्बन्धित अवधारणा भी उपलब्ध होती है। ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में कालपुरुष का सम्बन्ध मानवमात्र से स्थापित किया गया है। कालपुरुष के शरीर में नवग्रहों तथा द्वादश राशियों की स्थिति स्वीकार की गई है। 'सारावली' ग्रन्थ में आचार्य कल्याणवर्मा ने स्पष्टतया कहा है कि 'कालपुरुष' के विविध अंगों में द्वादश राशियों की स्थिति होती है। यथा- मेष-मस्तक, वृषभ-मुख, मिथुन-भुजा, कर्क- हृदय, सिंह- उदर, कन्या-कमर, तुला- नाभि से उपस्थ पर्यन्त, वृश्चिक-उपस्थ, धनु-जाँघ, मकर-घुटना, कुम्भ-पिंडली तथा मीन राशि की स्थिति पैरों में है। इन द्वादश राशियों के बलाबल के आधार पर ही कालपुरुष के अंगों के पुष्ट या निर्बल होने की बात कही गई है। ज्योतिषशास्त्र में उपरोक्त व्यवस्था का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की जन्म कुण्डली में जो राशि बलवान होगी, उस राशि से सम्बन्धित उस मनुष्य का वह अंग पुष्ट होगा। वहीं निर्बल राशि से सम्बन्धित अंग भी निर्बल होगा। राशियों के समान ही नवग्रहों का सम्बन्ध भी कालपुरुष अर्थात् जातक से होता है। उपरोक्त सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कालपुरुष के सन्दर्भ में सूर्य-आत्मा, चन्द्रमा-मन, मंगल-सत्त्व(बल), बुध-वाणी, गुरु-ज्ञान, शुक्र-वीर्य तथा शनि-दुःख है। इन नवग्रहों के निवास स्थान पर भी चर्चा की गई है। ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य का निवास स्थान

देवालय, चन्द्र-जलस्थान, मंगल-अग्नि स्थान, बुध-क्रीडास्थल, गुरु-कोश स्थान, शुक्र-शयन स्थान तथा शनि का कूड़ा आदि का स्थान है। ग्रहों से सम्बन्धित तत्त्वों का पोषण, ग्रहों को पुष्ट करता है, वहीं सम्बन्धित तत्त्वों को हानि पहुंचाना, ग्रहों के फल में नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है। नवग्रहों की संतुष्टि हेतु बताए गए उपायों में होमार्थ समिधा का विधान करते हुए कहा गया है कि सूर्य से सम्बन्धित वनस्पति आक (मदार), चन्द्र-पलाश, मंगल-खैर, बुध-अपामार्ग, गुरु-पीपल, शुक्र-गूलर, शनि-शमी, राहु-दूब तथा केतु लिए कुश है। इसी प्रकार ग्रहों की प्रसन्नता हेतु दक्षिणा दी जाने वाली वस्तुओं में गाय, शंख, लाल बैल, सफेद अश्व, काली गाय, अज (बकरा) आदि सम्मिलित हैं। इन दान देने योग्य जीवों की सेवा और दानादि से सम्बन्धित ग्रह सन्तुष्ट होते हैं। वहीं इन ग्रहों से सम्बंधित इन जीवों तथा सम्बन्धित वनस्पतियों को हानि पहुंचाने से सम्बन्धित ग्रह के कुपित होने अथवा अशुभ फल प्रदान करने की संभावना प्रकट की गई है।

ग्रहों से सम्बन्धित विभिन्न वस्तुओं के साथ किये जाने वाले व्यवहार के समान ही ग्रहों के फल देने की प्रवृत्ति हो जाती है, इस सिद्धान्त का पर्याप्त विस्तार तथा पुष्टिकरण का कार्य ज्योतिषशास्त्र के फलित स्कन्ध की 'लाल-किताब ज्योतिष पद्धति' ने किया है। इस 'लाल-किताब' परम्परा में स्पष्टतया बताया गया है कि व्यक्ति अपने व्यवहार से ग्रहों के फल देने की प्रवृत्ति को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। उदाहरणरवरूप बृहस्पति ग्रह के सन्दर्भ में 'लाल-किताब' कहती है कि यदि मनुष्य ने पीपल के वृक्ष को काटा है तो उसे गुरु ग्रह से सम्बन्धित पाप फल की प्राप्ति होगी। यदि जल का स्रोत यथा कुंआ, तालाब आदि सूख जाए तो चन्द्रमा का बद फल जातक को प्राप्त होगा यथा- मातृशोक अथवा माता को कष्ट। चन्द्र खाना नम्बर 8 की निशानी बताते हुए कहा गया है कि ऐसे जातक के घर के ठीक नीचे गंदे नाली की उपस्थिति होगी और जातक को अशुभ फलों की

प्राप्ति होगी। पञ्चमहाभूतों का ग्रहों के साथ सम्बन्ध लाल-किताब परम्परा में भी वर्णित है। मछलियों और अन्य जलचर प्राणियों को आटे की गोलियाँ खिलाना, चींटियों को आटा या चीनी डालना, कुत्ते को दूध पिलाना या कुत्ता पालना, गाय को हरा चारा-हल्दी रंगे आलू-घी चुपड़ी रोटी- रोटी और गुड़ खिलाना, बहते जल में कोयला प्रवाहित करना, बन्दर को गुड़ खिलाना, बकरों को मुक्त करना, चिड़े चिड़ियों को मीठा देना, सांप को दूध पिलाना, गऊ सेवा, तथा वृक्षों के मूल में पानी देना ऐसे अनेक उपायों का वर्णन लाल-किताब के विभिन्न संस्करणों में वर्णित है, जो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण और संवर्द्धन को प्रोत्साहित करने वाले सिद्ध होते हैं।

ग्रहों से सम्बन्धित जीव तथा अजीव के प्रति व्यवहार से जातक को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों की व्यवस्था का निर्देश महर्षि पराशर ने भी किया है। 'पूर्वजन्मशापद्योतनाध्याय' में महर्षि 'सर्पशाप' अर्थात् सर्प को कष्ट पहुँचाने से सन्तानहानिरुपी अशुभ फल प्राप्ति का निर्देश करते है- "सर्पवशात् सुतक्षयः" वहीं गोसेवा, समुद्र स्नान, अन्नदान, पीपल की सेवा, नदीस्नान, पीपल का पेड़ लगाना ('अश्वत्थस्थापनं कुर्याद्"), वापी-कूप-तडागादि निर्माण('वापी-कूप-तडागादि-खननं सेतुबन्धनम्') को विविध ग्रहजन्य शापविमोचन का साधन बताया है। स्पष्ट है कि ज्योतिषशास्त्र के ' लाल-किताब' स्कन्ध के उपायों तथा सिद्धान्तों को महर्षिपराशर की होरा पद्धति का वैध समर्थन प्राप्त है।

ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध में विविध ग्रहयोगजन्य पर्यावरणीय परिस्थितियों यथा ग्रहण, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्प, दिग्दाह, प्रवर्षण, उल्कापात, रजोलक्षण, सस्यजातक, विविध उत्पात, वृक्षारोपण महात्म्य, दकार्गल (भूमिगत जल विज्ञान),

वृक्षायुर्वेद, वन सम्प्रवेश, पशुलक्षण-सम्वर्द्धन, पशुचेष्टा आदि विषयों पर अत्यन्त विस्तृत परिचर्चा की गई है। इन समस्त विषयों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि मानव अपने व्यवहार के द्वारा ही पर्यावरण के विभिन्न घटकों को प्रभावित करता है। कतिपय उदाहरणों द्वारा इस ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टिकोण को स्पष्ट किया जा सकता है। भूकम्पलक्षणाध्याय में आचार्य वराहमिहिर ने अन्य आचार्यों के मत को उद्धृत करते हुए कहा है- 'केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्या:', अर्थात् प्रजाओं के अदृष्ट (धर्म-अधर्म) के कारण भूकम्प होता है। वहीं प्रवर्षण के प्रसङ्ग में भी कहा गया कि सूर्य, शनि, केतु, मङ्गल या त्रिविध उत्पातों से यदि नक्षत्र पीड़ित हों तो वृष्टि का अभाव होता है। वहीं उपद्रवरहित होकर बुध, बृहस्पति या शुक्र से युक्त नक्षत्र हो तो पर्याप्त वृष्टि होती है। स्पष्ट है कि वृष्टि या अनावृष्टि हेतु ग्रहों व नक्षत्रों की अनुकूलता अनिवार्य है। ठीक इसी प्रकार गृहनिर्माण या किसी अन्य प्रयोजन हेतु वृक्ष ग्रहण करने की आवश्यकता होने पर पक्षियों के घोंसले से युक्त, देवालय के समीपस्थ नीम आदि औषधीय गुणों से युक्त वृक्षों को काटने का निषेध किया गया है। भूमिगत जल का ज्ञान देने वाले विषय पर भी आचार्य वराहमिहिर ने अत्यन्त विस्तृत चर्चा की है। जल का ज्ञान और संरक्षण के कर्म को धर्म तथा यश प्रदान करनेवाला कहा गया है- 'धर्मं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं' जल की प्राप्ति के विविध संकेतों के साथ-साथ सुदृढ वापी निर्माण की विधि भी इन शास्त्रों में बताई गई है। वापी तट पर वृक्षारोपण की आवश्यकता पर बल देते हुए वापी-तट पर रोपण योग्य वृक्षों का निर्देश किया गया है और निचुल, जामुन, बेंत, नीप, अर्जुन, बड़, आम, कदम्ब, ताड़, अशोक, महुआ, मौलसिरी आदि वृक्षों को इस प्रयोजन हेतु श्रेष्ठ बताया गया है। जल को शुद्ध करने वाली औषधि को बताते हुए कहा गया है कि अञ्जन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला और कतक फल के चूर्ण को कूपादि में डालने पर गन्दला, कड़ुआ, खारा, बेस्वाद या

दुर्गन्धयुक्त जल भी निर्मल, मधुर, सुगन्धित और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है। अनावृष्टि के कारण दुर्भिक्ष का भय होता है, अतः यज्ञ करने से अनावृष्टिजन्य भय का नाश होता है। ज्योतिषशास्त्रीय मतानुसार चन्द्रमा और शुक्र जल में तथा भौम, राहु, शनि, केतु एवं सूर्य ग्रह वन-पर्वतों पर विचरण करने वाले हैं। अतएव ग्रहों की अनुकूलता के इच्छुक जातक, ग्रहों की इन सञ्चार भूमि को क्षति न पहुंचाएँ। अपितु इन सञ्चार भूमि का संरक्षण एवं संवर्द्धन वस्तुतः ग्रहों की अनुकूलता को बढाने वाला सिद्ध हो सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय ज्ञान-परम्परा ने मनुष्य तथा पर्यावरण के मध्य अन्तःसम्बन्ध तथा सह- अस्तित्व की जिस सार्वकालिक उदात्त भावना का सूत्रपात किया था, परवर्ती शास्त्रों की आचार्य परम्परा ने अपनी रचनाओं तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर पर्यावरणीय महत्त्व को जन सामान्य से जोड़ने का भागीरथ प्रयास किया है। ज्योतिषशास्त्र केवल भाग्य का लेखा-जोखा रखने का शास्त्र नहीं है, अपितु एक प्राचीन वैज्ञानिक प्रणाली है, जिसमें प्रकृति, पर्यावरण, और ब्रह्माण्ड के साथ मानव का गहन सम्बन्ध स्थापित किया गया है। यह ज्योतिषशास्त्र पञ्चमहाभूतों के मध्य संतुलन, ग्रहों की स्थिति और कालचक्र के माध्यम से न केवल पर्यावरणीय स्थिति का आकलन करता है, अपितु संतुलन के उपायों को भी समाज के समक्ष उपस्थापित करता है। आज जबकि आधुनिक विज्ञान भी प्राकृतिक संकेतों की ओर लौटने लगा है, तब भारतीय ज्योतिषशास्त्र में निहित पर्यावरणीय दृष्टिकोण को पुनर्स्थापित करना आवश्यक है। यह प्रयास न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर को पुनर्जीवित करेगा, अपितु भावी पीढियों के लिए एक सुरक्षित और संतुलित पर्यावरण की आधारशिला भी रखेगा। आज वर्तमान समय में पर्यावरणीय आपदाएँ आधुनिक विज्ञान के लिए भी चुनौती बन चुकी है, वहाँ भारतीय

ज्योतिषशास्त्र द्वारा दी गई प्राकृतिक आपदाओं के लक्षणों की व्याख्या, ग्रहों के प्रभाव, मौसम संकेत और कालचक्र की समझ महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक बन सकती है। ज्योतिर्विज्ञान में वर्णित 'ग्रहदोषों' को केवल अशुभ प्रभावोत्पादक नहीं माना गया है, अपितु उन्हें एक चेतावनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सिद्धांतों के द्वारा यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि कहीं मनुष्य ने अपने अनियंत्रित आचरण से प्रकृति और पर्यावरण का संतुलन तो भंग नहीं किया है। यही कारण है कि दोष-निवारण के लिए विहित प्रायश्चित, व्रत, यज्ञ, दान, स्नान, दान आदि की परम्परा स्थापित की गई। जिसमें प्रमुख रूप से जलदान, तीर्थ स्नान, वृक्षारोपण, गौ सेवा, गौ ग्रास, अन्य पशुओं की सेवा, सरीसृप- कीटादि के भोजन की व्यवस्था, तुलसी सेवा, पीपल की सेवा, वापी-कूप का निर्माण, दिव्यांग जन की सेवा, वृक्ष-पर्वतादि की सेवा, नदियों, कूपादि के प्रकारान्तर से शुद्धिकरण का उद्यम आदि को महत्त्व दिया गया। यह वस्तुतः प्रकृति-पर्यावरण और मनुष्यजाति के मध्य सम्बन्धों को और अधिक सुदृढ़ बनाने का शास्त्रीय यत्न ही है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा ने पर्यावरण संरक्षण व सम्वर्द्धन और उसकी चेतना को आध्यात्मिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझा है। इसी परम्परा को और अधिक सुदृढ़ करते हुए ज्योतिषशास्त्रीय चिंतन हमें प्रकृति व पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन का मार्ग दिखाता है। अतएव ज्योतिषशास्त्र को पर्यावरणीय संतुलन की चेतना का पुरातन एवं सार्वकालिक स्रोत के रूप में स्वीकार करना एवं तदनुसार आचरण और व्यवहार में परिवर्त्तन लाकर ही वर्त्तमान परिदृश्य में मानवजाति के कल्याण का सर्वसुगम मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. Oxford English Dictionary
2. Transley, A.G. (1935) Pioneer in ecosystem theory.
3. UNESCO Environmentd Education Guidelines.
4. The Environment (Protection) Act, 1986, Section 2(a).

5. अथर्ववेद; 18/1/14
6. यजुर्वेद; 2/10-11
7. अथर्ववेद; 19/9/11
8. ऋग्वेद; 10/191/4
9. ईशोपनिषद् ; प्रथम मन्त्र
10. छान्दोग्योपनिषद्, 3/14/1
11. योगसूत्र; 2/35
12. वैशेषिक सूत्र
13. सुत्तनिपात
14. बृहत् पाराशर होराशास्त्रम; 48/2
15. सारावली, 3/5
16. सर्वार्थचिन्तामणि, 1/57
17. ज्योतिषरत्नमाला; कालपंचाग विवेक, पृष्ठ-141
18. बृहद्दैवज्ञरंजनम्; 32/244
19. सामुद्रिक की लाल किताब; 1941, बृहस्पत खाना नम्बर 10 फल
20. इल्मे सामुद्रिक की लाल किता;, 1942,चन्द्र खाना नम्बर 8
21. अरुण संहिता (लाल किताब); चन्द्र खाना नम्बर ४ फल (मंदी हालत)
22. लाल किताब के अरमान; (1940), अरमान नं.-14,15
23. सामुद्रिक को लाल किताब; 1941 केतु खाना खाना नम्बर 12
24. इल्मे सामुद्रिक की लाल किताब; 1942, सूरज खाना नं. 6
25. सामुद्रिक की लाल किताब; 1941, सूरज खाना नं. 11
26. इल्मे सामुद्रिक की लाल किताब; 1942 मंगल बद उपाओ
27. सामुद्रिक की लाल किताब; 1941, शनि, खाना नं.- 4
28. लाल किताब, 1952, शुक्कर खाना नं.-5
29. बृहत् पाराशर होराशास्त्रम्; 85/16
30. वृहत् संहिता; 32/2
31. वहीं; 54/119
32. जातक पारिजात, 2/13

----०----

भासकृत 'प्रतिमानाटकम्' का पर्यावरणीय अध्ययन

अवंती अनिल वाडेकर &
डॉ. अनिरुद्ध अशोकराव मंडलिक

प्रस्तावना: रामायण के दर्पण में प्रकृति का प्रतिबिंब:-

भारतीय साहित्य में प्रकृति का चित्रण केवल एक पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि कहानी के एक अभिन्न अंग, एक संरक्षक, एक शिक्षक और यहाँ तक कि एक पात्र के रूप में भी किया गया है। यह प्राचीन भारतीय दर्शन की गहरी समझ को दर्शाता है, जहाँ मनुष्य स्वयं को प्रकृति से अलग नहीं, बल्कि उसका एक हिस्सा मानता था। इसी समृद्ध परंपरा के महान कवि भास हैं, जिनके 'प्रतिमानाटकम्' जैसे कालजयी नाटक भारतीय संस्कृति और जीवन शैली में प्रकृति के स्थान को सूक्ष्मता से उजागर करते हैं। यह नाटक, जो रामायण के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों– दशरथ की मृत्यु, राम का वनवास, भरत का चित्रकूट आगमन और रावण द्वारा सीता हरण के बाद की घटनाओं- पर आधारित है, मानवीय भावनाओं और नैतिक संघर्षों के साथ-साथ प्रकृति के साथ उनके अंतर्संबंधों को भी दर्शाता है।

आज के समय में जब वैश्विक पर्यावरण संकट एक विकट चुनौती बन गया है, प्राचीन साहित्य का पर्यावरणीय दृष्टि से अध्ययन करना अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह हमें सिखाता है कि कैसे सदियों पहले भी मानव और प्रकृति के बीच एक संतुलन और सहजीवन का आदर्श मौजूद था। 'प्रतिमानाटकम्' सीधे तौर पर पर्यावरण संरक्षण का उपदेश नहीं देता, लेकिन इसके दृश्यों, संवादों और प्रतीकों में तत्कालीन समाज की प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, उसका आदर और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस विस्तृत अध्ययन में,

हम 'प्रतिमानाटकम्' में वर्णित वन, आश्रम, नदियाँ, पर्वत और वन्यजीवों के उल्लेखों का विश्लेषण करेंगे, यह समझेंगे कि कैसे प्राकृतिक घटनाएँ मानवीय भावनाओं को प्रतिध्वनित करती हैं और भास की नाट्य कला में निहित पर्यावरणीय संदेशों को उजागर करेंगे।

'प्रतिमानाटकम्' का कथानक और उसके पर्यावरणीय आयाम

'प्रतिमानाटकम्' का नाम दशरथ की मूर्तियों वाले 'प्रतिमागृह' से आया है, जहाँ भरत को अपने पिता की मृत्यु का रहस्योद्घाटन होता है। यह नाटक रामायण के अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड और किष्किंधाकाण्ड के कुछ प्रमुख प्रसंगों को समेटता है। इसमें राम का वनवास, भरत का चित्रकूट में राम से मिलने जाना, सीता का हरण और जटायु वध जैसे घटनाक्रम शामिल हैं। इन सभी घटनाओं की पृष्ठभूमि में प्रकृति की उपस्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

१. वनवास: प्रकृति का आश्रय और मानवीय परीक्षा

नाटक का एक बड़ा हिस्सा राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास पर केंद्रित है। वनवास केवल एक भौगोलिक विस्थापन नहीं था, बल्कि यह एक प्रकार की प्रकृति के साथ एकीकरण की प्रक्रिया थी, जहाँ पात्रों को प्रकृति के नियमों के अनुसार जीना पड़ता था।

वन का आश्रयदाता स्वरूप: वन को केवल एक दुर्गम स्थान के रूप में नहीं, बल्कि एक आश्रय, एक गुरु और एक पवित्र स्थल के रूप में दर्शाया गया है। राम, सीता और लक्ष्मण वनों में निवास करते हैं, जहाँ वे प्रकृति के संसाधनों पर निर्भर होते हैं। पेड़ उन्हें छाया और फल देते हैं, नदियाँ पानी देती हैं, और गुफाएँ आश्रय। यह दर्शाता है कि कैसे प्रकृति मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और संकटकाल में उसे सहारा देती है।

आश्रमों का पर्यावरणीय आदर्श: नाटक में विभिन्न ऋषियों के आश्रमों का उल्लेख आता है, जैसे वाल्मीकि का आश्रम। ये आश्रम प्रकृति की गोद में, वनों के भीतर स्थापित थे। आश्रमों का वातावरण शांत, पवित्र और प्रकृति के साथ पूर्ण सामंजस्य में था।

शाकाहार और अहिंसा: आश्रमों में ऋषियों का जीवन शाकाहारी और अहिंसक था, जो जीव-जंतुओं के प्रति सम्मान और प्रकृति के साथ न्यूनतम हस्तक्षेप का आदर्श प्रस्तुत करता है।

पशु-पक्षी सहजीवन: इन आश्रमों में हिरण, पक्षी और अन्य वन्यजीव बिना किसी भय के मनुष्य के साथ रहते थे। भरत जब वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश करता है, तो वह वहाँ के मृगों और पक्षियों से स्नेहपूर्वक बात करता है, उन्हें अपने भाई-बहन के समान मानता है। यह मानव और वन्यजीवों के बीच के अद्वितीय सहजीवन और पारिस्थितिक संतुलन को दर्शाता है।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन: आश्रमवासी प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अत्यंत विवेकपूर्ण तरीके से करते थे, जिससे पर्यावरण पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता था। यह सतत जीवनशैली (sustainable lifestyle) का एक प्राचीन उदाहरण है।

२.प्राकृतिक घटनाएँ और मानवीय भावनाओं का प्रतिबिंब

भास ने अपने नाटकीय प्रभाव को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक घटनाओं का skillfully उपयोग किया है, जो मानवीय भावनाओं और परिस्थितियों को प्रतिध्वनित करती हैं:

मौसम और मानवीय मन: जब दुःख या शोक का प्रसंग होता है, तो कभी-कभी बादल, वर्षा या अँधेरा जैसा प्राकृतिक वातावरण चित्रित होता है, जो पात्रों की मनःस्थिति को गहराता है। इसके विपरीत, शांति या खुशी के क्षणों में सूर्योदय, खिलते हुए फूल या

पक्षियों का कलरव दिखाया जाता है। यह प्रकृति और मानव की भावनात्मक दुनिया के बीच के गहरे संबंध को दर्शाता है।

वनस्पति और भावनात्मक प्रतीक: अशोक वाटिका, जहाँ सीता को बंदी बनाकर रखा जाता है, भले ही सौंदर्य का प्रतीक हो, लेकिन वह उनके दुःख और पीड़ा का भी साक्षी है। वृक्षों और फूलों का उपयोग अक्सर भावनात्मक प्रतीकों के रूप में होता है, जो प्रेम, विरह, शोक या आशा को व्यक्त करते हैं।

३.वन्यजीवों की भूमिका और पारिस्थितिक जुड़ाव

'प्रतिमानाटकम्' में वन्यजीव केवल पृष्ठभूमि में नहीं हैं, बल्कि वे कथानक में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे तत्कालीन समाज में प्राणी जगत के महत्व का पता चलता है:

जटायु का बलिदान: जटायु, जो एक गिद्ध है, सीता की रक्षा के लिए रावण से युद्ध करता है और अपने प्राणों का बलिदान देता है। यह घटना दर्शाती है कि कैसे पक्षी और वन्यजीव भी नैतिकता, निष्ठा और धर्म का पालन कर सकते हैं। यह मनुष्य और पशु के बीच एक नैतिक और भावनात्मक जुड़ाव को दर्शाता है, जहाँ पशुओं को केवल भोजन या संसाधन नहीं, बल्कि स्वाभिमानी और सहायक जीव के रूप में देखा जाता है।

मारीच का स्वर्ण मृग रूप: मारीच का स्वर्ण मृग बनकर राम को दूर ले जाना, प्रकृति के मायावी स्वरूप और उसके अप्रत्याशित खतरे को दर्शाता है। यह घटना अप्रत्यक्ष रूप से यह भी बताती है कि प्राकृतिक संतुलन को भंग करने के मानवीय प्रयास (यहाँ छल के रूप में) कैसे अप्रत्याशित और विनाशकारी परिणाम दे सकते हैं।

वानर सेना और पशु जगत का सहयोग: यद्यपि 'अभिषेकनाटकम्' में वानर सेना का युद्ध में अधिक उल्लेख है, 'प्रतिमानाटकम्' भी उनके महत्व को स्थापित करता है, जो आगे चलकर राम की सहायता

करते हैं। यह मानव सभ्यता के विकास में पशुओं के सहयोग को दर्शाता है।

भास के लेखन में निहित पर्यावरणीय संवेदनशीलता और दर्शन

'प्रतिमानाटकम्' में भास ने जिस तरह से प्रकृति को प्रस्तुत किया है, वह प्राचीन भारतीय समाज की गहन पर्यावरणीय संवेदनशीलता और दर्शन को दर्शाता है।

१.प्रकृति का मानवीकरण और दैवीकरण

भास के नाटकों में प्रकृति को अक्सर मानवीकरण किया जाता है, यानी उसे मानवीय गुणों से युक्त दिखाया जाता है (जैसे दुःख में प्रकृति का भी उदास होना)। इसके अतिरिक्त, नदियाँ, वन और पर्वत जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को दिव्य और पूजनीय माना जाता था। यह दर्शाता है कि मानव स्वयं को प्रकृति से श्रेष्ठ नहीं, बल्कि उसके एक हिस्से के रूप में देखता था, जिसके साथ उसे सद्भाव से रहना था। यह 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (यह सब कुछ ब्रह्म ही है) के अद्वैत दर्शन से भी जुड़ा है, जहाँ प्रकृति भी ब्रह्म का ही एक रूप है।

२.आश्रम व्यवस्था: एक स्थायी जीवन शैली का आदर्श

आश्रम व्यवस्था, जो वनों में स्थापित थी, एक स्थायी जीवन शैली का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। यहाँ ऋषियों और विद्यार्थियों का जीवन प्राकृतिक संसाधनों के न्यूनतम और विवेकपूर्ण उपयोग पर आधारित था। यह व्यवस्था हमें सिखाती है कि कैसे बिना प्रकृति का अत्यधिक दोहन किए, एक समृद्ध और आध्यात्मिक जीवन जिया जा सकता है। यह आज के 'कम उपभोग, अधिक टिकाऊपन' (less consumption, more sustainability) के सिद्धांत से मेल खाता है।

३.जीव-जंतुओं के प्रति करुणा और सहअस्तित्व

जटायु का बलिदान और आश्रमों में मृगों तथा पक्षियों के साथ भरत का स्नेहपूर्ण व्यवहार, प्राणी जगत के प्रति गहरी करुणा

और सहअस्तित्व की भावना को दर्शाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में सभी जीवों को समान माना जाता था और उनके प्रति दया का भाव रखा जाता था। यह आधुनिक जैव विविधता संरक्षण (biodiversity conservation) के सिद्धांतों का मूल है, जहाँ सभी प्रजातियों का अस्तित्व महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

४.प्रकृति शिक्षा का माध्यम

वनवास के दौरान राम, लक्ष्मण और सीता को प्रकृति से सीधे अनुभव मिलते हैं। प्रकृति उन्हें धैर्य, सहनशीलता, अनुकूलनशीलता और जीवन के गूढ़ रहस्य सिखाती है। यह दर्शाता है कि प्रकृति केवल भौतिक परिवेश नहीं, बल्कि एक महान शिक्षक और गुरु भी है।

५.प्राकृतिक आपदाओं का यथार्थवादी चित्रण और अनुकूलन

यद्यपि 'प्रतिमानाटकम्' में कोई बड़ी प्राकृतिक आपदा सीधे नहीं दिखाई गई है, लेकिन रामायण का वृहत् संदर्भ, जिसमें सूखे या बाढ़ जैसी परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है, दर्शाता है कि प्राचीन समाज प्राकृतिक आपदाओं के प्रति जागरूक था और उसने उनके साथ अनुकूलन करना सीख लिया था। प्रकृति के रौद्र रूप का भी सम्मान किया जाता था।

निष्कर्ष: 'प्रतिमानाटकम्' में पर्यावरणीय नैतिकता की गूँज

महाकवि भास का 'प्रतिमानाटकम्' केवल एक नाटकीय कृति नहीं है, बल्कि यह प्राचीन भारतीय समाज की गहरी पर्यावरणीय संवेदनशीलता और नैतिकता का एक महत्वपूर्ण दर्पण है। यह नाटक हमें सिखाता है कि कैसे मनुष्य और प्रकृति के बीच का संबंध केवल उपयोगितावादी नहीं, बल्कि भावनात्मक, आध्यात्मिक और अस्तित्वगत था। वनों का आश्रयदाता स्वरूप, आश्रमों का स्थायी जीवन शैली का आदर्श, वन्यजीवों के साथ सहजीवन और

प्राकृतिक घटनाओं का मानवीय भावनाओं से जुड़ाव- ये सभी 'प्रतिमानाटकम्' में निहित पर्यावरणीय चेतना के प्रमुख पहलू हैं।

यह नाटक इस बात का प्रमाण है कि पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संतुलन की अवधारणाएँ कोई आधुनिक पश्चिमी आयात नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता के मूल में गहराई से निहित रही हैं। भास के पात्रों का प्रकृति के प्रति आदर, उनका विवेकपूर्ण उपयोग और सभी जीवों के प्रति करुणा का भाव हमें आज भी प्रेरणा देता है।

आज जब मानवजाति अपने ही पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्परिणामों का सामना कर रही है, 'प्रतिमानाटकम्' जैसे प्राचीन ग्रंथ हमें एक रास्ता दिखाते हैं। यह हमें याद दिलाता है कि केवल प्रकृति का उपभोग करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके साथ सामंजस्य स्थापित करना, उसका आदर करना और उसकी रक्षा करना ही सच्ची मानवीय प्रगति है। भास का यह नाटक न केवल एक साहित्यिक कृति के रूप में, बल्कि एक पर्यावरणीय चेतना के संदेशवाहक के रूप में भी अत्यंत प्रासंगिक है, जो हमें प्रकृति के साथ अपने संबंध को पुनः परिभाषित करने और एक अधिक स्थायी भविष्य की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची (Bibliography/References)

१.भास, प्रतिमा नाटकम्, संपादक: पंडित बालशास्त्री हरदास, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2002

२.सत्यदेव, भारतीय नाट्यशास्त्र और भास, दिल्ली: राजपाल एंड संस, 1995

३.शर्मा, रमेश चंद्र, भास के नाटकों में प्रकृति चित्रण, प्रयागराज: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 2010

४. त्रिपाठी, शशिप्रभा, संस्कृत नाटकों में पर्यावरण चेतना, वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, 2012

५. शुक्ल, रामकुमार, संस्कृत नाटक: एक पर्यावरणीय दृष्टि, लखनऊ: भारतीय साहित्य परिषद्, 2015

६.पाण्डेय, गोपालचन्द्र, रामकथा और पर्यावरण संदर्भ, नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2008

७.तिवारी, हर्षवर्धन, भास और कालिदास के नाटकों में प्रकृति सौंदर्य, बनारस: विश्वभारती प्रकाशन, 2017

८. वर्मा, शिवशंकर, प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण बोध, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2019

९.मिश्र, सुधीर कुमार, संस्कृत साहित्य और पारिस्थितिकी, भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2020

१०.तिवारी, मंजुल, संस्कृत नाट्य परंपरा में लोकजीवन और पर्यावरण, इलाहाबाद: विद्यापीठ प्रकाशन, 2016

शाक्तदर्शनेषु पर्यावरणम्

डॉ. (श्रीमती) भवानी रामचंद्रन
महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकड़ा, बागपत

शोधसारः

पर्यावरणं अस्माकं भूमण्डलस्य अभिन्नं अंगं वर्त्तते।मानवस्य अन्योन्यता संबन्धं पर्यावरणाधारितम् एव। पर्यावरणस्य सम्यक् निर्वाहने संवर्धने च दर्शनस्य महत्त्वपूर्णा भूमिका अनुभूयते। भारतीयदर्शनेषु शक्तेः आधारितं दर्शनं शाक्तदर्शनं अस्ति। शक्तिरेव मूलकारणम् जगतः सृष्टि-स्थिति-संहारविषये। शाक्तदर्शनस्य मूलं वेदाधारितमेव।वस्तुतस्तु शाक्तदर्शनम् न कस्यापि एकस्य दर्शनं,परमेतत् प्रकृत्याधारितस्य तत्त्वेन युञ्जितं व्यवहारिकं दर्शनम् अस्ति। यथा प्रोक्तम्-

"भूमेरावरणं वायुजलं चैव वनस्पतिः।
जगदाधाररूपं तत्पर्यावरणमुच्यते।।"

शक्तितत्वसंबन्धितनिहितवेदमन्त्रेषु प्रतिपदं पर्यावरणस्य वनस्पतीनां शान्तिश्च प्रार्थितम्। एवमेव पञ्चभौतिकानां, स्थावरजंगमानां आनुकूल्यत्वं कल्याणत्वं च प्रार्थितम्। मानवेन सह पर्यावरणस्य विशेषसंबन्धत्त्वं विद्यते। पर्यावरणं विना मनुष्यस्य उत्पत्तिः स्थितिः च नैव कल्पितुम् शक्यते। परब्रह्मणः उत्पत्तिः पर्यावरणाधारितं तन्मूलकं च अस्ति। जिज्ञासा कारणात् एव दर्शनस्य प्रादुर्भावः जातः। आदिकालादारभ्य मानवस्य प्रश्नं जगतः उत्पत्ति स्थिति संहारविषये, आत्मा-परमात्मा, जीव, जगत्, द्रव्य, पदार्थ आदि सूक्ष्मतत्त्वानां कृते निरन्तरं समुत्पन्नः। अस्मादेव कारणात् विभिन्नैः दार्शनिकैः अस्य समाधानं, उत्तरं, व्याख्यानं -भाष्यं च प्रदत्तम्। अस्मिन् सन्दर्भे शाक्तदर्शनस्य व्याख्यातृभिः महर्षिभिरपि

सुबहु विशदं पर्यालोचितम् अनुसन्धानितम् च। अत्र शाक्तदर्शनेषु पर्यावरणम् विवेच्यते। शोधपत्रोऽयं निम्नलिखित उपविषयैःविवेच्यते-

- पर्यावरणस्य महत्वम्
- भारतीय दर्शनस्य महत्वम्-शाक्तदर्शनस्य महत्वम्
- पर्यावरणसन्दर्भे शाक्तदर्शनस्य उपादेयता
- षट्त्रिंशत् तत्त्वानि
- विभिन्न उपचारपूजां- पंचोपचारं-षोडशोपचारं-चतु:षष्ट्युपचारं
- निष्कर्षं

कुंजिका शब्दाः- पर्यावरणं, शाक्तदर्शनं, षट्त्रिंशत् तत्त्वानि, प्रकृति, उपचारं

शाक्तदर्शनेषु पर्यावरणम्

पर्यावरणस्य महत्वम्

पर्यावरणं अस्माकं भूमण्डलस्य अभिन्नं अंगं वर्त्तते। मानवस्य अन्योन्यतासंबन्धं पर्यावरणाधारितम् एव। परि+आङ् उपसर्गद्वय पूर्वकं वृञ् धातोः ल्युट् प्रत्ययस्य संयोगे पर्यावरण शब्दस्य निष्पत्तिः भवति। व्युत्पत्ति दृष्ट्या उच्यते-

"भूमेरावरणं वायुजलं चैव वनस्पतिः।
जगदाधाररूपं तत्पर्यावरणमुच्यते।।"

-संस्कृत कौस्तुभम्

वेदमन्त्रेषु प्रतिपदं पर्यावरणस्य वनस्पतीनां शान्तिः प्रार्थितम्।द्युलोकादारभ्य पृथिवी-आप-औषधि-वनस्पति-विश्वेदेव आदि समेषां शान्त्याः कामनां कृतम् तेन स्पष्टं भवति तत् कथं प्रकृतिः मानवेषु अनुस्यूत इति। यथा- ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिःपृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिःसर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ ॐशान्तिःशान्तिःशान्तिः१॥ एवमेव पञ्चभौतिकानां, स्थावरजंगमानां आनुकूल्यत्वं कल्याणत्वं च प्रार्थितम्२।

ॐ सह नाववतु।सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

वेदेषु बहवः मन्त्राः उपलभ्यते यत्र भूमण्डलस्य शान्तिः काम्यते प्रार्थ्यते च३। भूमण्डले यदि अस्माकं परितस्य वातावरणं शुद्धं न स्यात् तदा मनुष्यस्य प्रकृतेश्च शुद्धिः कथं भवितुं शक्यते। अत एव पर्यावरणस्य शुद्धिरावश्यकी। सर्वे जानन्ति यत् अस्माकं परितः वातावरणस्य स्वच्छता मानव शरीरस्य, चरित्रस्य, चिन्तनस्य व्यवहारस्य च शुद्धिकारणादेव संभाव्यते। मानवेन सह पर्यावरणस्य विशेषसंबन्धत्त्वं विद्यते। पर्यावरणं विना मनुष्यस्य उत्पत्तिः स्थितिः च नैव कल्पितुम् शक्यते। परब्रह्मणः उत्पत्तिः पर्यावरणाधारितं तन्मूलकं च अस्ति।

भारतीय दर्शनस्य महत्वम्- शाक्तदर्शनस्य महत्वम्

जिज्ञासाकारणात् एव दर्शनस्य प्रादुर्भावोऽभवत् येन जीवनसंबन्धित प्रमुखतत्त्वानां ज्ञानोपशमनं स्यात्। आदिकालादारभ्य मानवस्य प्रश्नं जगतः उत्पत्ति स्थिति संहारविषये,आत्मा-परमात्मा,जीव-जगत्, द्रव्य-पदार्थ आदि सूक्ष्मतत्त्वानां कृते निरन्तरं समुत्पन्नः। अस्मादेव कारणात् विभिन्नैः दार्शनिकैः अस्य समाधानं, उत्तरं, व्याख्यानं,भाष्यं च प्रदत्तम्। अस्मिन् सन्दर्भे शाक्तदर्शनस्य व्याख्यातृभिः महर्षिभिरपि सुबहु विशदं पर्यालोचितम् अनुसन्धानितम् च। शक्तेः आधारितं दर्शनं शाक्तदर्शनं अस्ति। जगतः सृष्टि-स्थिति-संहारविषये शक्तिरेव मूलकारणम्। सुखप्राप्तिः दु;खनाशश्च दर्शनस्य मूल उद्देश्यम्। जगतः विषये यत्किञ्चिदपि जिज्ञासा क्रियते तेनैव दर्शनस्य उद्भवः। दर्शनस्य अर्थं न केवल 'इन्द्रियसंपर्कः' परं विशेष आलोचनेन जीवनजगता सह संबन्धसहितं परमतत्वसाक्षात्कारः। शाक्तदर्शनस्य मूलं वेदाधारितमेव४। ऋग्वेदेषु परिदृश्यमान देवीसूक्तम्५, रात्रिसूक्तम्६ देवी अथर्वशीर्षे७ च शक्तेः प्राधान्यभूताः विभिन्नसंदर्भाः एतत् पुष्टिं करोति। यथोक्तं वेदेषु यत् परमेश्वरः स्वस्य मायाशक्त्या प्रभावेण विभिन्नरूपं धारयति-इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते८ देवी अथर्वशीर्षे च स्वयं देवी वदति यत्-अहं रुद्रेभिः इत्यादि मन्त्रा उपलभ्यते। कथं सा देवी एकाकी रुद्र, वसु,

आदित्य, वायुरूपेण दृश्यते। अत एव यत् वेदेषु निहितं तत्वं तेषामेव दर्शनं शाक्तदर्शने समुपलभ्यते। विशेषरूपेण उल्लेखनीयं यत् अत्र शक्तिशक्तिमतोः अभेदत्त्वं दृश्यते। कस्यापि कर्मणः संपादने यथा शक्तिः आवश्यकी एवमेव जगतः सृष्टि-स्थिति-विनाश कर्मणेऽपि आद्याशक्तेः अनिवार्यत्वम् अनुभूयते। सा एव शक्तिः शून्याशून्यरूपे, विद्याविद्यरूपे, प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत् रूपेण दृश्यते। ब्रह्मणि सृष्टिकृच्छक्तिः, विष्णौ पालनशक्तिः, शिवे संहरणशक्तिः, सूर्ये प्रकाशशक्तिरनन्ते कूर्मे च पृथ्वीधारण-शक्तिः, वह्नौ दाहकशक्तिर्वायौ प्रेरणात्मिका शक्तिश्चेति, तेषामन्तर्भूतेन विविधशक्तिरूपेण सर्वत्र केवलमाद्या शक्तिः विराजते।

पर्यावरणसदर्भे शाक्तदर्शनस्य उपादेयता

पर्यावरणस्य संशुद्धेः मूलकारणात् एव दर्शनस्य प्रादुर्भावः भवति। यदि जीवात्मनः शरीरे परमात्मनस्य ऐक्यं इष्यते तस्यार्थः परस्परं तादात्म्यं अपेक्षते। यत्तु दर्शनसाहित्यसाहाय्येनैव सेत्स्यति। अत्र च पर्यावरणस्य भूमिका अनुभूयते। भारतीय दर्शनशास्त्रे बहवः उपायाः पर्यालोचितम्। यदा पृथिव्यादि पञ्चभौतिकतत्त्वानि प्रदूषणमुक्तः भवति तदैव वनस्पतिरौषधयश्च रोगमुक्तः भवति। विभिन्न कुलवृक्षाणां पूजा अपि शाक्तदर्शनेषु विशेषमहत्त्वं विहितं वर्त्तते। वृक्षाणां पूजनेन दैवीत्वं उत्पन्नो भवति येन राष्ट्रः समृद्धिपथे अग्रेसरी भवति९। आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्, दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्, निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम्। यः समेषां तत्त्वानां आधारभूत उत्पत्ति कारणं अस्ति, तदेव जगतः प्रधानभूतः तत्त्वम् परमब्रह्मतत्त्वं च यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितं अस्ति। यदि वयम् पर्यावरणात् पृथक् परब्रह्मणः स्वरूपं मन्यामः चेत् तदा ऐक्यत्वं न अनुभवितुम् शक्यते। यतोहि मानवस्य इन्द्रियाणि

बहिर्मुखानि सन्ति। अस्माकं चैतन्यशक्तिः अन्तर्मुखश्च वर्त्तते।यावन्प्रभृति बहिर्भूततत्वस्य अन्तर्शक्त्या सह अन्योन्यत्वं तादात्म्यसंबन्धत्वं च न जायते तावन्प्रभृति एकीभूतत्वं न अनुभूयते। पर्यावरणं अन्तःशक्तित्वं च अविनाभावसंबन्धेन संयुक्तं अस्ति। परब्रह्मणः साक्षात्कारे पर्यावरणमेव उपादानकारणभूतसाधनं साध्यं च भवति। श्रीकृष्णेन यथा प्रोक्तम्-

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यम चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विध्यानां वादःप्रवदतामहम्।।१०
अत एव पर्यावरणेन सह साम्यत्वमपेक्षते।

षट्त्रिंशत् तत्त्वानि

शाक्तदर्शने प्रमुखरूपेण षट्त्रिंशत् तत्त्वानि सन्ति११। यथा- शिव-शक्ति-सदाशिव-ईश्वर-शुद्धविद्या-माया-कला-अविद्या-राग-काल-नियति-पुरुष-प्रकृति-अहंकार-बुद्धि-मन-श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-जिह्वा-घ्राण-वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-आकाश-वायु-वह्नि-सलिल-पृथ्वी इत्यादि आधारितं समस्तप्रपञ्चं। यदि सूक्ष्मेक्षिकया वयं पश्यामः चेत् तथा एते षट्त्रिंशत् तत्त्वानि भूमण्डलस्य मानवस्य जीवने सूक्ष्मस्थूलरूपेण अनुस्यूतः। एतेषां साहाय्येन एव प्रकृतिप्रपंचात्मकतत्त्वज्ञानद्वारा वयं जीवनस्य परमोद्देश्यं मोक्षं/निःश्रेयसं/सायुज्यं च प्राप्तुं शक्यते। अत्र विशेषरूपेण अवधेयम् यत् शिवस्य विमर्शशक्तिरेव शक्तौ परिलक्ष्यते।शिव पदस्य इकारः शक्ति बोधकः। इकारेण विना शिवः शव एव१२।

आद्याःशक्त्याः स्वरूपवर्णने परिदृश्यते यत् सा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र-ईश्वर-सदाशिव, रूप पंचप्रेतासनोपरि अधिष्ठिता१३।

शाक्तदर्शनानुसारं मनुष्यस्य श्वासमपि दैवीतत्त्वेन संबन्धितमस्ति। अत एव पर्यावरणस्य स्वच्छता आवश्यकी। यदि आधारे एव त्रुटिः तदा अन्तिमो लक्ष्यः कथं अवगम्यते। प्रातः काले उत्थाय यत् साधकैः

भू प्रार्थना क्रियते तदेव देव्याः पूजनम्।
समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णु पत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे१४।।

एतदेव प्रकृतेः पूजनम्।एवमेव यत् साधकैः प्रातः काले स्वीय करकमलं दृष्वा वन्दना क्रियते तत् साक्षात् लक्ष्मी सरस्वती सहित गोविन्दस्य पूजनम्। यथा-

करागे्र वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्दा प्रभाते करदर्शनम्१५।।

विभिन्न उपचारपूजां- पंचोपचारं-षोडशोपचारं-चतु:षष्ट्युपचारं प्रकृतेः संरक्षणपरं शक्त्युपासकदर्शनम्। कस्यापि पूजानुष्ठानप्रसंगे उपचारस्य विशेष महत्वं भवति। एते उपचाराः पञ्च, षोडश संख्यादारभ्य चतुष्षष्टिपर्यन्तं भवति। पृथ्वी, आकाश, वायु, वह्नि, जलतत्त्वद्वारा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि उपाचारान् देवैः समर्प्यते। एवमेव षोडशोपचारक्रमेऽपि आसनं, पाद्यं, अर्घ्यं, आचमनीयं, स्नानं, वस्त्रं, उपवीतं, आभरणं, गन्धं, हरिद्राकुंकुमं, अक्षत, गन्ध, विविध ऋतु पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूलादि देवाय देव्यै च सभक्तिपूर्वं समर्प्यते। यदा साधकाः देव्यै पंचोपचारान् प्रयच्छन्ति तदपि पंचतत्वेन अनुस्यूतं अस्ति। एवमेव यत् प्रत्यक्षतः दृश्यमान सूर्य चन्द्र नक्षत्रमण्डलानि सन्ति तदपि देव्याः प्रभावेण विद्योतितं भवति। अत एव देव्याः उपासनक्रमे विविध कुसुम माल्यानि यथा मल्लिका मालतीजातीचंपक अशोकपुन्नागकुरव कल्हारादि समर्प्यन्ते१६। एतासां कुसुमानां परस्परसंबन्धत्वं पर्यावरणेषु निहितं वर्त्तते। पीठपूजादि अवसरे देव्या: ध्यानं पूजनञ्च विभिन्नपीठोपरि उच्चासने कामगिरिपीठ,ओड्याण, जालंधरपीठ मध्यत्रिकोणे सुशोभिता वर्तते। परं यद्यपि शक्तेराराधनं बहिर्रूपमूर्तौ, चक्रेषु क्रियते तथापि ध्यान पूजनसमये स्वीय अन्तर्निहितशक्त्याः बहिर्भूतदेव्याः तादात्म्येन सह यदा क्रियते तदा अभेदत्वं अनुभूयते। यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे इत्युक्त्यनुसारं सर्वं ब्रह्मेण व्याप्तम् अतः यत्बहिर्दृश्यते तदेव ब्रह्मणि अपि स्थितः। अत एव परब्रह्मणः तादात्म्यं शक्त्या सह अनुभूयते। शाक्तदर्शनानुसारेण देवीनवरात्रिरपि प्रकृतेः ऋतु आधारितमेव। यथा वसन्त

ऋत्वाधारितं वासन्तकी शरद् ऋत्वाधारितं शरण्णवरात्रि इत्यादि। स्पष्टन्त्विदं यत् सर्वत्र शाक्तदर्शनानुसारं पर्यावरणाधारितं भवति। अनेन स्पष्टं भवति यत्देवी उपासनाक्रमे प्रकृतेः विशेष महत्वं दरीदृश्यते।यत्र-यत्र प्रकृतिपूजनम् तत्र-तत्र देवी पूजनम् निहितं देव्याः पूजनसमये पूर्णकुम्भकलशे विभिन्न पवित्रनदीनां तीर्थानां आह्वानं क्रियते। यथोक्तं-

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु१७।।

अस्यार्थं स्पष्टं भवति यत् समेषां नदीनां स्मरणं, संरक्षणं च अस्माकं प्राधानिकं कर्तव्यं। स्वयं ललितामहात्रिपुरसुन्दरी आदिकूर्म-अनन्त, वराहादि परिवृतं विभिन्न समुद्राणां इक्षु-घृत-दुग्ध-पयो-दधि आदि परितःमन्दार-कादंब आदि विभिन्न वाटिकाभिरावृतः विभिन्नवापिभिरावृतः मणिमये सिंहासने ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश्वर-सदाशिव मयैक मञ्चफलके सर्वेषां मानवानां कल्याणहिताय आरूढा जगदम्बा विराजते१८। शक्तिपूजनावसरेऽपि अग्नि-सूर्य-सोममण्डलानां विशेषपूजा भवति। यथा अग्निमण्डलस्य दशकलायाः सूर्यमण्डलस्य द्वादशकलायाः सोममण्डलस्य षोडशकलाया: पूजनम् आह्वानं च क्रियते१९। 'करांगुलिनखोत्पन्न नारायणदशाकृतिः२० इति वर्णनानुसारं देव्याः अवतारं स्वयं देव्याः समुद्भवः चिदग्निकुण्डात् मन्यते, गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि-पीठ मातृकानां च पूजनम् च विधीयते।

निष्कर्ष-

अन्ते निष्कर्षरूपेण कथितुं शक्यते यत् शाक्तदर्शनं प्रतिपदं देवी द्वारा सृष्टं प्रकृतेः पूजनमेव करोति, एवं यथा अस्माकं मानसपटले तावती भावना जागर्ति तदा दैवीत्वं स्वत एव अनुभूयते। किमधिकं अकारादि क्षकारान्त वर्णानपि देवीरूपमेव। यथोक्तम् तन्त्रे-अकारादि क्षकारान्तं श्रीपीठान्तर्निवासिनीम् इति। अतः शाक्तदर्शनानुसारं देवी तु जगदाधारभूता, स्थिति कारणभूता, अन्ते

सा एव चैतन्यशक्तिः संहारतिरोधानकारिणी अपि अस्ति। शाक्तदर्शनेषु यत् सूर्यचन्द्रात्मकं प्रकृतिप्रत्यक्षपरं परमात्मनः नेत्ररूपं दृश्यते तत् ईश्वरतत्त्वस्य निर्लिप्त साक्षात् द्रष्टापदं अलंकरोति। अनेन स्पष्टं जायते यत् शाक्तदर्शनेषु प्रतिपदं प्रकृतेरुपासना क्रियते। यत्किंचिदपि वयं अनुष्ठानं कुर्मः तत् प्रकृतेः पूजा एव। अन्ते अस्माभिः सदा स्मरणीयं यत् प्रकृतेः संरक्षणमेव मानवस्य परमं कर्तव्यम्, अतः एतदर्थे सदा प्रयतितव्यम्।

संदर्भाः-

1. यजुर्वेद शान्ति मन्त्राः
2. कठोपनिषद् शान्ति मन्त्रः
3. शं नो मित्रः शं वरुणः, तैत्तिरीयोपनिषदि अन्यदपि बहवः उपनिषद् शान्ति मन्त्राश्च
4. ऋग्वेद, १०/१०/१२७
5. ऋग्वेद, ६ /४७ /१८
6. रात्रि सूक्तम्, ऋग्वेद, १०/१०/१२७
7. देव्यथर्वशीर्षम्, ऋग्वेद अथर्ववेदश्च
8. वागम्भृणी सूक्त, १०/१२५/१
9. शुक्ल यजुर्वेद २२/२२
10. श्रीमद्भगवद्गीता, १०/३२
11. शाक्तदर्शनम् ,चक्रेश्वर भट्टाचार्य,गुवाहाटी ,१९७०
12. इकार दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका।।
a. शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
b. शक्तितत्वहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थेः स्मृतो बुधैः॥श्रीमद्देवीभागवतपुराण, १।८।२८-३१
13. पंचप्रेतासनासीना पंचब्रह्मस्वरूपिणी,ब्रह्माण्ड पुराण, ललितासहस्रनामस्तोत्रम्
14. श्रीविद्यारत्नाकरः,पृ०९४
15. विष्णुपुराण
16. श्रीविद्यारत्नाकरः, पृ०१५७

17. श्रीविद्यारत्नाकरः, पृ०३२
18. श्रीविद्यारत्नाकरः,पृ०२९
19. श्रीविद्यारत्नाकरः, पृ०१५२
20. ब्रह्माण्ड पुराण,ललितासहस्रनामस्तोत्रम्

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरणीय संचेतना व उसकी आधुनिक प्रासंगिकता

डॉ तृप्ति श्रीवास्तव
उप-प्राचार्या
हितकारिणी वूमेंस कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, जबलपुर

सार-

वाल्मीकि रामायण एक प्राचीन ग्रंथ है। भारतीय संस्कृति में रामायण केवल एक धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है बल्कि यह जीवन दर्शन का ज्ञान भी प्रदान करता है। इसमें सामाजिक, धार्मिक पहलुओं और नीतियों के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण पर भी चिंतन किया गया है। यह ग्रंथ हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य से स्थापित करने की प्रेरणा देता है। इसके विभिन्न प्रसंगों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण संवर्धन और पर्यावरण के प्रति प्रेम व आदर का भाव मिलता है। प्रस्तुत शोध लेख में रामायण में निहित पर्यावरणीय चिंतन और उसकी आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है।

कुंजी शब्द- वाल्मीकि रामायण, पर्यावरण संचेतना, पर्यावरण संरक्षण, आधुनिक प्रासंगिकता

शोध प्रश्न- वाल्मीकि रामायण में वर्णित पर्यावरणीय संचेतना व पर्यावरणीय सिद्धांत वर्तमान में पर्यावरणीय संकटों से निपटने के लिए कैसे प्रासंगिक हैं?

शोध का उद्देश्य- वाल्मीकि रामायण के माध्यम से पर्यावरणीय संचेतना को जागृत करना व उनकी आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

प्रस्तावना- आधुनिक युग में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ती ही जा रही है। साथ ही पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन व

जैव विविधता में कमी आदि संकट भी बढ़ते जा रहे हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथो में निहित पर्यावरण दर्शन का पुनः अवलोकन करना प्रासंगिक है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में भी प्रकृति ,पर्यावरण व मानव के बीच सामंजस्य स्थापित किया गया है। महर्षि वाल्मीकि की रामायण अपने समय में व्याप्त देश काल को पर्यावरण के रूप में प्रस्तुत करती है। रामायण की रचना ही प्राकृतिक दृश्य को देखकर हुई जब एक निषाद द्वारा क्रौंच पंछी का वध करते देखकर अनायास ही वाल्मीकि जी के मुंह से एक श्लोक निकलता है-

मां निषाद प्रतिष्ठाम त्वं गम: शाश्वती समा:।
यत क्रौंच मिथुनादेकमवधी: काममोहितम।।

वाल्मीकि रामायण के पर्यावरणीय तत्त्व-

1. नदियों को मातृ तुल्य मानने का भाव- अयोध्या कांड के 52 श्लोक में कहा गया है-

'गंगायमनुसंप्राप्तो राम: सत्य पराक्रम:' इस पंक्ति में गंगा के जल को अत्यंत शुद्ध और आत्मा की शुद्धि का साधन माना गया है। सरयू नदी, गोदावरी, यमुना, तमसा, गंगा आदि नदियों को माता के समान पूजनीय बताया गया है। इन्हें जीवनदायनी, शुद्ध व धार्मिक अनुष्ठानों का केंद्र बिंदु माना गया है। नदियों को महत्व को बताते हुए वाल्मीकि जी ने कहा है-

यावत् स्थास्यंति गिरय: सरितश्च नहीं तले।
तावत रामायण कथा लोकेषु प्रचरियति।।

-बालकांड 2/36/6

नदियों की स्वच्छता पर वाल्मीकि जी ने कहा है-

अकर्दमिंद तीर्थ भारद्वाज निशामय।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन सन्मनुष्य मनो यथा।।

अर्थात् नदियों का जल मनुष्य के मन की तरह स्वच्छ होना चाहिए।

वनों का महत्त्व-

वन पर्यावरण तंत्र के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। रामायण में वनों और आश्रमों के साथ-साथ वनों में पाए जाने वाले छोटे-बड़े जीवों का भी उल्लेख किया गया है। वनों के जैविक घटकों के साथ-साथ अजैविक घटकों जैसे- बादल, विभिन्न पर्वतों(सुवेल, त्रिकूट, ऋष्यामुक, मलय, चित्रकूट आदि) का कवि द्वारा उल्लेख किया गया है। जैविक घटकों में प्राथमिक उत्पादक के रूप में आम, जामुन, कटहल, अंकोला आदि वृक्षों व द्वितीय उत्पादक के रूप में शेर, रीछ, चीता, बिल्ली आदि जानवरों का भी वर्णन किया गया है-

आम्रजम्बू लोध्रै : प्रियाले : पं सैधर्वे:।
अकोलैभव्यतिनि शैर्बिल्वतिन्दुक वेणुभिः॥

इन वनों में प्राणी अपनी भावनाओं व अनुभूतियों को पर्यावरण व प्रकृति से साहचर्य स्थापित करके देखता है। भगवान राम 14 वर्ष इन्हीं वनों के सानिध्य में रहे। चित्रकूट, पंचवटी, दंडक जैसे- वन घने व जैव वनस्पति से परिपूर्ण थे। यहां ऋषि मुनि तप करते थे। इन आश्रमों में अनेक पशु-पक्षी आश्रय पाते थे जो वन्य जीवन संरक्षण को दर्शाता है।

पर्वतों का महत्त्व-

रामायण में अनेक पर्वतों का वर्णन है। भगवान राम जब चित्रकूट पर्वत पर पहुंचते हैं तो वहां के प्राकृतिक दृश्य का अवलोकन करते हैं। उसका वर्णन बहुत ही सुंदर व मनोहर है-

पश्येचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम।
शिखरै ख मिवोद्विद्धैर्धातुम भिर्वि भूषितम॥

-अयोध्याकांड 2/94/4

चित्रकूट पर्वत में विविध पशु-पक्षी फूलदार व फलदार वृक्ष थे। युद्धकांड में सुवेल पर्वत और त्रिकूट पर्वत, किष्किंधाकांड में विभिन्न पर्वतों से निकले प्रपातों का भी वर्णन है। पर्वतों पर मौजूद

घने जंगलों के कारण वर्षा अच्छी होती थी जिससे पर्वतीय वनस्पतियां प्राप्त होती थी।

भरत जब भारद्वाज आश्रम में पहुंचते हैं तो सर्वप्रथम उनके कुशल से पूछने के उपरांत आश्रम के विभिन्न पेड़ पौधों व जीव जंतुओं का कुशल क्षेम पूछते हैं-

वशिष्ठो भरतश्चैनं प प्रच्छ तुर नामयम्।
शरीरेSग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृग पक्षिषु॥

-अयोध्या कांड 2/90/8

वाल्मीकि रामायण का अरण्यकांड वनस्पतियों का कांड कहलाता है। अरण्यकांड में वन, आश्रम विभिन्न ऋतुओं का वर्णन एवं अयोध्या कांड में चित्रकूट का वर्णन पर्यावरण की संरक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है-

हंस यथा राजत पंचरस्थ सिंहो यथा मंदर क़न्दस्य:।
वीरो यथा गर्वितो कुंजरस्थ चंद्रो Sपि बभ्राज तथा अंबर स्थ:।।

प्रकृति का मानवीकरण-

महर्षि वाल्मीकि ने पर्यावरण का मानवीकरण अत्यंत निपुणता से किया है। उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों और व्यापारों पर मानवीय क्रियाकलापों और भावनाओं को आरोपित किया है। हेमंत ऋतु में वनों का मानवीकरण करते हुए वह कहते हैं-

अवश्यायतमोनद्धा नीहार तमसा वृ ता:।
प्र सुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वन राजय:॥

-(3/6/23)

अर्थात् रात में ओस बिंदुओं और अंधकार से आच्छादित तथा प्रातः काल कुहासे के अंधेरे से ढकी हुई यह पुष्पहीन वन श्रेणियां सोई हुई सी दिखाई पड़ रही है। इसीप्रकार-

सुप्तैक हंस कुमुदैरूपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
घनै विर्ममुक्त निशि पूर्णचंद्र तारागणकीर्ण भिवान्तरिक्षम॥

जैव विविधता का संरक्षण-

वाल्मीकि रामायण में विभिन्न प्रकार के पशु पक्षियों जानवरों का अन्य जीवों का वर्णन मिलता है। हनुमान, जटायु, जामवंत आदि पात्र जैव विविधता के महत्त्व को दर्शाते हैं। जीवों के प्रति अहिंसा व दया को भी रामायण में दर्शाया गया है।

'न हन्तव्य: पशुर्मम न हिंस्यात सर्वभूतानि'

-सुंदरकांड सर्ग 15/16

जल प्रबन्धन एवं स्वच्छता-

रामायण में नदियों, झीलों, सरोवरों आदि का वर्णन किया गया है और उनकी शुद्धता और संरक्षण पर भी बल दिया गया है क्योंकि ये जीवन प्रदान करने के स्रोत हैं। नदियों से पार उतरते समय, उसमें स्नान करते समय धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करना, उसकी पवित्रता और स्वच्छता बनाए रखने का प्रतीक है-

आभसा तरतां चैव नाव: संतरणं च यत्।
जलदेवता . पूज्यास्ते हि तीर्थं पर मतम्॥

-अयोध्या कांड 52/76

अर्थात् जल के माध्यम से तैरने वालों के लिए और नाव द्वारा उस पार जाने वालों के लिए जल देवता पूजनीय है क्योंकि वह ही परम तीर्थ माने जाते हैं।

प्रकृति के प्रति सम्मान व देवत्व-

रामायण में प्रकृति को केवल एक संसाधन के रूप में ही नहीं बल्कि उसे पवित्र और पूजनीय माना गया है। वन, नदियां, पर्वत और वृक्षों को देवताओं का निवास स्थान माना गया है और उनके प्रति श्रद्धा दर्शायी गई है-

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलऽस्मिन सन्निधि कुरु॥

-अयोध्याकांड 52/82

इस श्लोक में सीता जी सभी पवित्र नदियों का आह्वान करती है जो जल के प्रति उनके सम्मान को बताता है।

इसके अलावा रामायण में प्रकृति के प्रकोपों का भी वर्णन किया गया है। बालकांड में वायु द्वारा राजा कृष्णाभ की कन्याओं को कुब्ज दोष से ग्रस्त किए जाने का वर्णन प्राप्त होता है। इसीप्रकार गंगा पृथ्वी पर आने में भागीरथी का अनुसरण करती हुई जहन्न ऋषि के यज्ञ मंडप में को अपने जल प्रवाह में बहा ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त यक्षिणी ताटका द्वारा मलव कलुष जनपद की वन संपदाओं को नष्ट करने का भी वर्णन है जो यह बताता है कि प्रकृति से खिलवाड़ करना हानिकारक हो सकता है। अतः प्रकृति का संरक्षण करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण के प्रति संचेतना व पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांतों को गहराई से समझाया गया है। इसमें वर्णित वनों के महत्व, प्राकृतिक सौंदर्य, जीवन के प्रति आदर का भाव और नदियों की पवित्रता हमें आधुनिक चुनौतियों से निपटने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। इन पर्यावरणीय शिक्षाओं को अपनाकर हम ऐसे संसार की कल्पना कर सकते हैं जहां प्रकृति व मनुष्य के मध्य सामंजस्य रहे। मानव द्वारा प्रकृति का सम्मान कर, उचित उपयोग कर संतुलन स्थापित करना होगा क्योंकि हम सभी जानते हैं की प्रकृति पर ही हमारा जीवन निर्भर करता है। अतः पर्यावरण का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है क्योंकि हमारा अस्तित्व ही इस पर निर्भर है।

इसप्रकार हम यह कह सकते हैं कि वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण संरक्षण संचेतना की वर्तमान समय में भी अत्यधिक प्रासंगिकता है।

नैतिकता व आध्यात्मिकता की दृष्टि से-

1. प्रकृति को उपभोग की वस्तु न मानकर एक जीवित इकाई के रूप में देखने की आवश्यकता

2. मानव अहंकार और लोक पर्यावरणीय समस्याओं का मूल कारण है, इन पर अंकुश लगाने की आवश्यकता

3. उपभोक्तावादी संस्कृति के स्थान पर आदर्श जीवन शैली अपनाने की आवश्यकता

संरक्षण की दृष्टि से-

1. वनों का संरक्षण व वनरोपण करने की आवश्यकता

2. जल प्रबंधन व नदी संरक्षण हेतु पारंपरिक ज्ञान के उपयोग की आवश्यकता

3. जैव विविधता का महत्त्व समझकर विलुप्त प्रजातियों के बचाव की आवश्यकता

पर्यावरणीय शिक्षा व जागरूकता-

1. बच्चों को वाल्मीकि रामायण की कहानी सुना कर पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता पैदा करने की आवश्यकता

2. धार्मिक व सांस्कृतिक प्रथाओं को पर्यावरण संरक्षण से जोड़ने की आवश्यकता

3. सतत विकास के लक्ष्यों से सामंजस्य

4. सतत विकास के लक्ष्यों के साथ रामायण के सिद्धांतों का सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता

महर्षि वाल्मीकि की रामायण में राम वन गमन, विभिन्न आश्रमों के चित्रण, सीता की खोज करते समय के प्रसंग में पर्वत, नदी, झील, सागर, वन, उपवन युक्त स्थान का अत्यंत सुंदर वर्णन किया गया है जो पर्यावरण की सुरक्षा को बताता है। इसके अलावा महर्षि वाल्मीकि ने प्रकृति के विरुद्ध जाकर विलासोन्मुखता के विनाशकारी परिणाम भी दर्शाये हैं। त्याग-तप-तपोवन के पर्यावरण के आदर्शों की मर्यादा तोड़ने से होने वाले दुष्परिणामों के बारे में बताया है जो यह संदेश देता है कि प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाने

में ही मनुष्य का उत्कर्ष समाहित है। इस प्रकार आदि काव्य रामायण पर्यावरण चिंतन का प्रतिनिधित्व काव्य है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ. सौम्या कृष्ण(2021) "वर्तमान परिदृश्य में वाल्मीकि रामायण में अंतर्निहित पर्यावरणीय संचेतना की प्रासंगिकता ",शोध शौर्यम इंटरनेशनल साइंटिफिक रेफ्रीड रिसर्च जनरल (SHISRRJ) वाल्यूम 4, इश्यू 6/ISSN 258 6306
2. यादव कन्हैया लाल (2017) "वाल्मीकि रामायण का पर्यावरणीय दृष्टिकोण से मूल्यांकन, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (ijrset.com.), वाल्यूम 3, इश्यू- 6, ISSN-2395 1990, online ISSN: 2394-4099
3. मीरा डॉ. माधुनी प्रभा (2018) "वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण एवं सामाजिक व्यवस्था का मार्गदर्शन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ संस्कृत रिसर्च (IJSR) 4 (4): 92-93 , Ananta Journal.com
4. डॉ. पुरोहित, राजेंद्र कुमार(2012) "वाल्मीकि रामायण में पर्वत, नदी, समुद्र और वन परितंत्र", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एजूकेशन, मॉडर्न मैनेजमेंट, अप्लाइड साइंस एंड सोशल साइंस 'ISSN: 2581- 9925, Impact factor: 6.882, वाल्यूम 4, नम्बर 4 (11) अक्टूबर-दिसम्बर पृ.स. 358-364
5. डॉ. कुमार सुजीत(2021) "वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिंतन", ज्ञानशौर्य इंटरनेशनल साइंटिफिक रेफ्रीड रिसर्च जर्नल .वॉल्यूम 4, इशू 1 , ISSN : 2582-0095
6. कु . राधिका(2024) "वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण: एक अन्वेषण", आइडियलिस्टिक जर्नल ऑफ़ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम, अ मंथली, ओपन एक्सेस पीयर रिव्यूड, रेफ्रीड इंटरनेशनल जर्नल, वॉल्यूम 3, इश्यू 10, अक्टूबर
7. डॉ. चौहान, अंजना सिंह "वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना"
8. अमरिथलिंगम मुरुगेशन "वाल्मीकि रामायण में वनस्पति विविधता",
9. राय ,मीरा(2005) "रामायण में पर्यावरण और पारिस्थितिकी", इंडियन जर्नल का ऐतिहासिक विज्ञान, खंड 40, संख्या 1, पृष्ठ 9-29

10. डॉ. कुमार सन्दीप(2024) "वाल्मीकि रामायण में प्रकृति प्रेम व पर्यावरण संरक्षण एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता", शोध मंथन, वॉल्यूम 15, नंबर 1, जनवरी-मार्च, ISSN (P) O976-5255 (e) 2454-339x
11. सिंह, महेंद्र प्रताप(2020) "वाल्मीकि की पर्यावरण चेतना, जीव जंतु " वाणी प्रकाशन, ISBN: 9789389915815
12. सिंह, महेंद्र प्रताप(2016) "वाल्मीकि की पर्यावरण चेतना, पर्वत और नदियां", वाणी प्रकाशन, ISBN: 97893522 95722
13."रामायण कालीन पर्यावरण चेतना की वैज्ञानिकता", हंसा प्रकाशन, ISBN: 9788188257980

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिंतन

डॉ. सुलक्षणा त्रिपाठी
प्राचार्य, हितकारिणी विमेंस कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, जबलपुर

सार:-

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को ईश्वर तुल्य माना गया है और यह चिंतन वाल्मीकि रामायण में विविध रूपों में प्रकट होता है। यह आलेख रामायण में प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, श्रीराम व अन्य पात्रों के आचरण में निहित पर्यावरणीय मूल्यों तथा आज के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि रामायण में न केवल प्राकृतिक पर्यावरण, बल्कि मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण पर भी गहन चिंतन मिलता है, जो मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व और संतुलन पर जोर देता है, जिसमें पर्यावरण को मानव जीवन का आधार माना गया है। यह महाकाव्य नदियों, पर्वतों, वनों, वृक्षों, फूलों, और पशु-पक्षियों के विस्तृत वर्णन के माध्यम से पर्यावरणीय कारकों का प्रभाव दिखाता है और 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' के सिद्धांत पर आधारित पर्यावरण संतुलन की वकालत करता है।

कुंजी शब्द-: वाल्मीकि रामायण, पर्यावरण, प्रकृति, सह-अस्तित्व, वानप्रस्थ, जैव विविधता

परिचय:-

वाल्मीकि रामायण केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व का सशक्त उदाहरण है। इसमें न केवल प्राकृतिक स्थलों का सौंदर्यपूर्ण वर्णन है, बल्कि प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का आदर्श भी प्रतिपादित होता है।

वाल्मीकि रामायण के अंतर्गत पर्यावरण चिंतन के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश:-

प्रकृति का सजीव वर्णन चित्रण:-

रामायण में विभिन्न कालों जैसे- वनवास, में प्रकृति के सुंदर और सजीव दृश्यों का वर्णन किया गया है, जिसमें पर्वत, नदियाँ, वन, पशु-पक्षी और वनस्पति शामिल हैं, जो तत्कालीन पर्यावरणीय स्थिति को दर्शाते हैं।

मानव-प्रकृति का सह-अस्तित्व:-

यह महाकाव्य मानव और प्रकृति के अन्योन्याश्रित संबंध को उजागर करता है और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि मानव विकास के साथ-साथ प्रकृति का संरक्षण भी हो।

रामायण में पर्यावरणीय महत्त्व:-

रामायण में वर्णित विभिन्न प्रजातियों के जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों को न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व का माना गया है, बल्कि आर्थिक और औषधीय उपयोगिता भी बताई गई है।

वन और वन्यजीवों के प्रति आदर व आस्था का भाव:-

राम और सीता का वृक्षों और वन्यजीवों के प्रति लगाव और उनका सम्मान करने के प्रसंग जैसे- सीता का हिरणों को घास खिलाना, प्रकृति के प्रति उनके गहरे संबंध को दर्शाता है।

पर्यावरण संरक्षण में राज्य, राजा और प्रजा की महती भूमिका:-

रामायण काल में राज्य व राजा द्वारा संरक्षित उपवन, उद्यान और जलाशयों का उल्लेख मिलता है, साथ ही यज्ञानुष्ठान जैसे- धार्मिक अनुष्ठानों को वातावरण की शुद्धता के लिए महत्वपूर्ण माना गया था।

आधुनिक युग में बाल्मीकि रामायण की प्रासंगिकता:-

आज के औद्योगिक युग में प्रदूषण की बढ़ती समस्या के संदर्भ में रामायण के इन पर्यावरणीय सिद्धांतों और व्यवहारों को अपनाना आवश्यक है ताकि पर्यावरणीय समस्याओं से निजात पाया जा सके।

समकालीन उदाहरण जैसे चिपको आंदोलन ,स्वच्छ गंगा अभियान जैसे रामायण से प्रेरणा लेकर आधुनिक युग में कैसे प्रयास किये जा रहे हैं और किये जा सकते हैं।

वाल्मीकि रामायण प्रेरणा स्रोत:-

महर्षि वाल्मीकि और उनके महाकाव्य रामायण ने परवर्ती कवियों और साहित्यकारों के लिए भी प्रकृति चित्रण और पर्यावरण के महत्व को एक प्रेरणा स्रोत के रूप में स्थापित किया है।

लेख का उद्देश्य:- इस लेख का उद्देश्य बाल्मीकि रामायण में पर्यावरणीय मूल्यों की पहचान करना तथा वर्तमान युग में उनकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत करना है।

शोध की पद्धति:-

यह अध्ययन सांस्कृतिक और ग्रंथाधारित विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें वाल्मीकि रामायण के विभिन्न कांडों से लिए गए श्लोकों के आधार पर पर्यावरणीय दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है।

प्राकृतिक स्थलों का पर्यावरणीय मूल्यांकन:-

वाल्मीकि रामायण में चित्रकूट, पंचवटी, दण्डकारण्य, ऋष्यमूक पर्वत आदि स्थलों का अत्यंत मनोहारी एवं जीवंत वर्णन है। इन स्थलों को केवल निवास नहीं, अपितु आत्मिक शांति और प्राकृतिक समृद्धि के केंद्र के रूप में दर्शाया गया है।

श्रीराम, सीता, लक्ष्मण एवं हनुमान का प्रकृति से संबंध:-

श्रीराम द्वारा नदी तट पर स्नान, वृक्षों को प्रणाम, वन्य जीवों के प्रति सहानुभूति- ये सब प्रकृति के प्रति श्रद्धा को दर्शाते हैं। सीता का अशोक वाटिका में वृक्षों से संवाद, लक्ष्मण का वन रक्षार्थ सजग रहना तथा हनुमान का पर्वतों से औषधियाँ लाना ये दर्शाते हैं कि रामायण के पात्रों का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध था।

प्रकृति के पांच तत्त्व और बाल्मीकि रामायण:- इसमें बताया गया है कि अग्नि, जल,वायु, पृथ्वी और आकाश के साथ किस प्रकार रामायण के पात्रों का संवाद होता है।

श्लोकों सहित संदर्भ

उदाहरण- चित्रकूट वर्णन- 1.अयोध्याकांड, सर्ग- 56:

"चित्रकूटं गता राम लक्ष्मणेन समन्विता।
प्रविवेश तदा रम्यं वानराणां निशेवितम्॥"

(अर्थ: राम और लक्ष्मण चित्रकूट में प्रवेश करते हैं, जो वानरों द्वारा आचरित रमणीय वन है।)

2. पंचवटी प्रसंग (अरण्यकांड)

श्लोक:

"स तं देशं समासाद्य नानाद्रुमलतायुतम्।
पुष्पितैः पादपैश्चित्रैः शोभितं भूरिशाद्वलम्॥"

सन्दर्भ:-

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जब वनवास के समय पंचवटी पहुंचते हैं, तो उस स्थान का अत्यंत मनोहर वर्णन किया गया है।

भावार्थ:-

वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ विविध वृक्ष, लताएँ और रंग-बिरंगे पुष्पों से युक्त वन था। वह स्थान सुंदर घास से आच्छादित था और स्वच्छंद जीवन के लिए उपयुक्त भी।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण: यह श्लोक पंचवटी की जैव विविधता और प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करता है, जो सह-अस्तित्व और पर्यावरण संरक्षण की भावना को जाग्रत करता है।

3. अशोक वाटिका प्रसंग (सुन्दरकांड)

"सा ततः काञ्चनं दिव्यं प्रयान्ती वनमुत्तमम्।
ददर्श शोभनं सीता रक्ष्यमाणं सुदारुणम्॥"

सन्दर्भ:

हनुमान जी जब अशोक वाटिका में सीता माता को ढूंढते हैं, तब उनका दर्शन इस रमणीय स्थान में होता है।

भावार्थ:

सीता एक दिव्य, स्वर्णमयी और उत्तम वाटिका (अशोक वाटिका) में थीं, जो बहुत सुंदर थी और राक्षसियों द्वारा संरक्षित थी।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण:

अशोक वाटिका का वर्णन एक शांतिपूर्ण, प्राकृतिक आश्रय के रूप में हुआ है, जहाँ वृक्ष, फूल, और सौंदर्य की भरमार है। यह दर्शाता है कि संकट की घड़ी में भी प्रकृति सांत्वना और बल प्रदान करती है।

समकालीन पर्यावरणीय सन्दर्भ से तुलना:-

आज जब पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के ह्रास जैसी समस्याएँ सामने हैं, रामायण का सह-अस्तित्व एवं संरक्षण का दृष्टिकोण हमें सतत विकास की प्रेरणा देता है।

विश्लेषण एवं विमर्श

वाल्मीकि रामायण के वर्णन केवल सौंदर्य निरूपण नहीं हैं, बल्कि वे नैतिकता, कर्तव्यबोध और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की शिक्षा भी प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष:-

वाल्मीकि रामायण एक धार्मिक ग्रंथ होने के साथ-साथ प्रकृति से जुड़ा हुआ जीवन-दर्शन भी प्रस्तुत करता है। वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों के संदर्भ में यह ग्रंथ मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। हमें अपने धार्मिक ग्रंथो और प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली के ज्ञान को अपनाते हुए पर्यावरण को सुरक्षित और संरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि ये ग्रंथ हमें अतीत और व्यतीत हुए पलों के विवरण के साथ-साथ अद्भुत, मूल्यवान सीख

भी देते हैं कि पर्यावरण के साथ अगर हम अपने निजी स्वार्थ के कारण छेड़छाड़ करते हैं तो पर्यावरण भी हमें किस तरह से दंड भी प्रदान करता है और प्रकृति द्वारा दिया गया दंड अत्यंत कठोर और अटल होता है अतः हमें संतुलन बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए ताकि प्रकृति अपना विकराल रूप धारण करने ना पाए। बाल्मीकि रामायण यह संदेश भी प्रदान करती है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-:

1. वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण
2. रामायण में पर्यावरण दृष्टिकोण, शोध लेख
3. भारतीय संस्कृति और प्रकृति, डॉ. राधाकृष्णन

भागीरथी दर्शनम् महाकाव्य के आलोक में पर्यावरण संरक्षण

श्रीमती अनुपम सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज, लखनऊ

'पर्यावृत्तिः पर्यावरणम्' अर्थात् जो चारो ओर से आवृत्त या घिरा हो उसे पर्यावरण कहते हैं। अतएव जो कुछ चारो ओर से घेरे हुए है और जो कुछ आच्छादित है, वह पर्यावरण है। अतः जो मनुष्य को आच्छादित करती है तथा उसके जीवन को प्रभावित करती है, उसे पर्यावरण कहा जाता है। जिसमें वायुमण्डल, स्थलमण्डल, जलमण्डल और रासायनिक अवयवों का संग्रह सम्मिलित है। इस प्रकार पर्यावरण भौतिक और जैविक तत्त्वों के संयोजन से बना है। भौतिक तत्त्वों में मिट्टी, पानी हवा प्रकाश आते हैं, जबकि जैविक तत्त्वों में सम्पूर्ण सजीव जगत् और पेड़-पौधे शामिल हैं। इसप्रकार पर्यावरण में सभी तत्त्वों का निश्चित अनुपात होता है, जिससे पर्यावरण उचित प्रकार से कार्य करता है, यह निश्चित अनुपात ही पर्यावरण-सन्तुलन है। यदि पर्यावरण का कोई भी अवयव निश्चित अनुपात से अधिक उपभोग में आता है तो इससे पर्यावरण असन्तुलन होने लगता है, इसी प्राकृतिक-असन्तुलन को पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के लोलुपतापूर्ण उपभोग से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। पर्यावरण-प्रदूषण आधुनिक युग की विकरालतम समस्या है। जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में पदे-पदे दिखायी पड़ता है। महाकवि कालिदास 'पर्यावरण को संरक्षित क्यों करें?' के बारे में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में वर्णित किया है।

स्वसुख-निरभिलाषः रिवद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं,
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्॥

उपर्युक्त श्लोक में राजा दुष्यन्त के माध्यम से महाकवि कालिदास प्रकृति के विषय में यह कहना चाहते हैं कि वृक्षादि हमारे लिए लाभकारी ही होते है वह कभी भी हमें हानि नहीं पहुँचाते, उनमें त्याग व करुणा की भावना होती है, किन्तु आधुनिक मनुष्य स्वयं की स्वार्थ सिद्धि के लिये वनों की अंधाधुंध कटाई कर रहा है, जिससे पर्यावरण- सन्तुलन बिगड़ रहा है, किन्तु आज का मानव वनों अथवा पेड़ों के लाभ को नहीं समझ पा रहा है। पर्यावरण असन्तुलन से भूमि-क्षरण होता है, जिससे बाढ़ और सूखा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरूप जान-माल की अत्यधिक हानि होती है, बाद में भयंकर रोग फैलते हैं। इसी प्रकार की चिन्ता भागीरथी दर्शनम् महाकाव्य के रचयिता डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री ने गङ्गा प्रदूषण के विषय में व्यक्त की है।

यदि भौतिक भोगवादिनां, कृतिभि र्दुषितमस्तु ते जलम्।
ननु भास्करमेव ते दिवा, तमसाच्छादयितुं प्रशेकिरे।।2

उपर्युक्त श्लोक में महाकवि डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री ने गङ्गा प्रदूषण के विषय में बताते हुए कहते हैं कि- यदि भौतिक भोगवादियों के कार्यों से माता! तुम्हारा जल यदि दूषित हो गया, तो मानना पड़ेगा कि वे दिन में भास्कर सूर्य को अन्धकार से ढकने में समर्थ हो गए। अन्य श्लोको में भी महाकवि ने पर्यावरण प्रदूषण से गङ्गा के दूषित होने की बात कही है। यथा-

किमाख्येयं मातर्विमलयशसा ते सुविदिलोऽ,
प्यसौ देशो पर्यावरण बहुदोषैः परिवृतः।

विवर्यस्तो लोके सुखद जलवायुस्तनुभृतां,
जनानां दुष्कृत्यैः सलिलमपि ते दूषितमभूत॥३

अर्थात् हे माता क्या कहने को रहा है, जब तुम्हारे विमल यश से विश्व विदित यह देश पर्यावरण के अनेक दोषों से घिर गया है। प्राणियों की सुखद जलवायु यहाँ बिगड़ गयी है और लोगों के दुष्कृत्यों से तुम्हारा जल भी दूषित हो गया है। यहाँ पर मनुष्यों द्वारा फैलाये जा रहे पर्यावरण प्रदूषण के कारण भगवती गंगा के जल-प्रदूषित होने के विषय में बताया गया है। इसी प्रकार अन्य श्लोक में-

इदं मन्ये लोको धर्मकृषिकलाकौशलहिते
समन्तात् स्वच्छन्दं प्रवहदुदबन्धः समुचितः।
परं कृत्यैरेतैः सततमवरोधैश्च सरितां
प्रवाहः स्वल्पोऽभूत् तव जननि देहेऽपि पयसाम्॥4

तात्पर्यार्थ यह सही है कि समाज के उत्तम कृषि कला और कौशल के हित में चारों ओर स्वच्छन्द बहने वाले जल को बाँध लेना उचित है, परन्तु इस कृत्य से नदियों के निरन्तर बँध जाने से, हे माता! तुम्हारे शरीर में भी जल का प्रवाह भी कम हो गया है। इस श्लोक में महाकवि द्वारा नदियों पर कृषि और उद्योग धन्धे हेतु बाँध बनाये जाने के कारण नदियों के जल-प्रदूषित होने के कारण चिन्ता व्यक्त की गयी है और भी-

शिराणां बन्धेन प्रभवति जनानां तनुभृतां,
यथा रक्ताल्पत्वं विकृतिरपि रोगैरुपचिता।
तथा धाराबन्धै विरलगतयः स्वल्पसलिला,
अभूवन् दुर्दृश्या विमलसरितो दूषणावहाः॥5

मनुष्य शरीर की शिराओं के बाँध दिये जाने से जिस प्रकार रक्ताल्पता तथा रागों के शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं, उसीप्रकार नदियों की धारा बांधने से विरल धारा वाली तथा अलग मात्रा में जल रहने से दुर्दशापन्न हो दूषित हो जाती है। अगले दो श्लोकों के

माध्यम से महाकवि ने मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कारण मानव जीवन को धिक्कार समझा है।

नरस्यैतत् कीदृक् पतनमभवन्नैतिकमहो,
विलासानामीदृक् प्रभवति पिपासा नवयुगे।
समस्तव्यापारैः कलुषित विचारैरपि सृजनू,
समृद्धेः पन्थानं नवनवविधानं रचयति॥6

मनुष्य का यह कैसा नैतिक पतन हो गया है, इस आधुनिक गुण में विलासिता की ऐसी प्यास उत्पन्न हो गयी है कि वह समस्त उपायों और कलुषित विचारों से भी समृद्धि के मार्ग और नए-नए विधानों की रचना कर रहा है। और भी-

विधेः सृष्टौ श्रेयानपि जननि! जीवेषु मनुज-
इदानीं संजातः कुटिलचरितैर्दुः सह इव।
यथा घोरस्वार्थ सततनिरतो विश्वमपि हा!
जिघांसुश्चाभाति प्रकृतिविपरीता-चरणतः॥7

विधि की सृष्टि में समस्त जीवों में श्रेष्ठ होते हुए भी यह मनुष्य इस समय अपने कुटिल चरित्र से दुःसह सा हो गया है। है माता! क्योंकि यह भयंकर स्वार्थ में निरन्तर संलग्न अपने विपरीत आचरण से समस्त विश्व को भी नष्ट करना चाहता है। अगले श्लोक में वायु प्रदूषण के बारे में महाकवि के द्वारा वर्णित किया गया है-

नितान्तं वर्षाभूक्षरणपरिरक्षान्त्यसुहृदां,
वनानां विध्वंसो गिरिगहनविस्फोटनमपि।
महायन्त्रोद्भूतैः परिवहनयानप्रसरितै-
र्विषाक्तैधूमौधैः श्वसनमपि हा। दूषितमभूत्।।8

वर्षा द्वारा पृथ्वी के क्षरण की रक्षा के अन्तिम मिल वनों का विध्वंस हो रहा है। पर्वतों में गम्भीर विस्फोट तथा विशाल मशीनों से निकलता तथा परिवहन यानों से फैलता विषाक्त धुंआ का गुबार श्वास लेने की वायु को भी दूषित कर रहा है। उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से महाकवि ने मानव द्वारा विभिन्न संसाधनों के उपभोग तथा उधमों के प्रयोग में लायी जाने वाली मशीनों से निकलने वाले

धुंए से वायु प्रदूषण के विषय में चिन्ता व्यव की गयी है। और मशीनों के चलने से होने वाली ध्वनियों से होने वाले ध्वनि प्रदूषण की चर्चा की गयी है-

महानादैः स्फोटैः सततमभितो वाहनकृतैः,
जनानां चीत्कारै र्ध्वनिवितनयन्त्रोपजनितैः।
घनोद्बोषैर्नादध्वनिकृतमिदं दूषणमपि,
विधन्ते वै लोकश्रवणमनसोर्बोविकृतम्॥9

अर्थात् चारो ओर वाहनों से निकलने वाला महानाद और विस्फोट वाहनों द्वारा तथा ध्वनि विस्तार यन्त्रों (लाउडस्पीकरों) से उत्पन्न लोगों का चीत्कार जैसा यह घनबोर शोर का प्रदूषण समाज के कानों और मन की विकारयुक्त कर रहा है। पुनः अगले दो श्लोको में जल प्रदूषण के विषय में इस प्रकार महाकवि द्वारा बताया गया है।–

रसानामुधोगेष्वनवरतयोगात् क्षरणजं,
विषाक्तं दोषाणामुपचितविधानं च विपदाम्।
समन्ताद् दुर्गन्धं प्रवहति जलं दूषणपरं,
नदीधारासक्तं प्रसरति शरीरे तनुभृताम्॥10

अर्थात् उघोगों में निरन्तर रसायनों के प्रयोगों से उस के क्षरण से उत्पन्न विषाक्त दोषों तथा विपत्तियों की सामूहिक रचना स्वरूप दुर्गन्धयुक्त प्रदूषण से परिपूर्ण नदियों की धारा में मिला हुआ यह जल चारो और प्राणियों के शरीर में फैल रहा है। इसप्रकार महाकवि के द्वारा विषाक्त जल के पीने से मानव शरीर में फैलने वाले रोगों के प्रति आगाह किया गया है तथा अन्य श्लोक में गङ्गा जी के जल दूषित होने की चर्चा की गयी है-

न चाम्व। त्वत्पूतं सलिलम भवद् दूषणपरं,
परं वायुव्योमश्वसनमपि संदूषितमिह।
अहो ! जीवो जीवव्यनवरतकौटिल्य कलुषे,
परिव्याप्ते पर्यावरणविषतापेऽषि विवशः।।11

अतः हे माता! केवल आपका जल ही दूषित नहीं हुआ है अपितु वायु आकाश तथा श्वसन क्रिया भी दूषित हो गये हैं। आश्चर्य है! यहाँ निरन्तर कुटिल चक्र से व्याप्त कलुषित पर्यावरण के विषैले ताप में भी विवश प्राणी जीवित है। युद्ध में प्रयोग होने वाले विस्फोटक पदार्थों से होने वाले प्रदूषण के विषय में इस प्रकार वर्णन किया गया है-

महायुद्धे घोरै र्विपुलवमविस्फोटजनितै-
र्घनै र्धूमध्वान्तै रचयति महद् दुर्दिनमसौ।
परीक्षानाम्नैव प्रचुरपरमाणुप्रहरण-
प्रभावाद् विश्वेऽस्मिन् विकिरणविषाक्ता जनिरभूत्।।12

अर्थात् स्वार्थी पुरुष महायुद्ध में असंख्य बमों के विस्फोट से उत्पन्न सघन धुंए के अन्धकार से पृथ्वी पर दुर्दिन पैदा कर देता है। परीक्षण के नाम पर असंख्य परमाणु शस्त्रों के प्रभाव से इस विश्व में ऐसे प्राणियों की उत्पत्ति हो गयी है जो विकिरण के विष से परिव्याप्त है।

इस महाकवि डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री ने अपनी कृति भागीरथी दर्शनम् महाकाव्य में गङ्गा प्रदूषण की चर्चा करते हुए पर्यावरण प्रदूषण का वर्णन करते हुए भूक्षरण से होने वाले नुकसान, जलप्सावन/बाढ़ से भयावह स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे भयानक रोगों का प्रसार होता है, तो वहीं कृषि कार्य तथा उघोगों हेतु बनाए गये बाँधों से सदावाहिनी नदियों का प्रवाह कम हो गया है, जिससे हरे-भरे पेड़ सूख रहे हैं। पुनः मनुष्यों द्वारा कृषि कार्यों तथा आवास निर्माण हेतु वनों की अंधाधुंध कटाई से शुद्ध श्वसन हेतु ऑक्सीजन का मिलना कठिन हो गया है, तो कल-कारखानों और परिवहन संचालन से जो धुआँ निकल रहा है, उससे वायु और दूषित हो रही है, जिससे वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। महाकवि द्वारा उघोगों द्वारा चलाये जा रहे कल-कारखानों से निकलने वाले रासायनिक तत्त्वों से नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है, जिससे जल-

प्रदूषण बढ़ रहा है, तो उसी कल-कारखानों से निकलने वाले विषाक्त धुंए से वायु प्रदूषण बढ़ रहा है तथा वाहनों से निकलने वाले ध्वनियों तथा लाउडस्पीकर से निकलने वाले तीव्र ध्वनियों से ध्वनि प्रदूषण बढ़ रहा है। परमाणु बमों से निकलने वाले विकिरण से ओजोन परत का क्षरण हो रहा है, जिससे तरह- तरह की बीमारियों फैल रही हैं।

इस प्रकार महाकवि ने भूक्षरण, वायु प्रदूषण, जल-प्रदूषण तथा ध्वनि-प्रदूषण का मानव को ही कारक माना तथा मानव द्वारा विभिन्न कृत्यों को ही पयर्यावरण प्रदूषण का कारण माना है। महाकवि डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री ने अपने ग्रन्थ में पर्यावरण संरक्षण हेतु उपायों की भी चर्चा विभिन्न श्लोकों के माध्यम से की है। यथा-

ततो भीतं किन्चिद् विकलमिव सुप्तोत्थितमिदं,
जगच्चिन्ताग्रस्तं किमपि ननु कृत्यं विमृशति।
दृशान्धोऽसौ ज्वालामुखमभिसरंश्चापि मनुजो,
विलासान् न स्वार्थी कथमपि विहातुं, प्रयतते।।13

अर्थात् इस विनाश से भयभीत, सोकर जगा हुआ सा विकल यह विश्व चिन्ताग्रस्त होकर कुछ करने के लिये विचारविमर्श कर रहा है। परन्तु आँखों से अन्धा जैसा चुपचाप ज्वालामुखी की ओर बढ़ता हुआ यह मनुष्य स्वार्थवश विलास साधनों को त्यागने का प्रयास नहीं करता है। इस श्लोक के माध्यम से महाकवि ने बताया है कि मनुष्य पर्यावरण प्रदूषण के बारे में संज्ञान रखता है तथा उससे निपटने हेतु अल्प प्रयास करता है, किन्तु विलास साधनों के उपभोग की संलिप्तता उसे विवश कर देती है। अगले श्लोक में मानव द्वारा किये प्रयास के बारे में चर्चा की गयी है।

यथावृत्तं किञ्चित्करमिह विधातुं बुधजनाः,
विपर्यस्तं पयर्यावरणमनुकूलं कलयितुम्।
अनेकेषु प्रयोजनजनितकार्येषु निरता,
अभूवन् भूलोकप्रकृतिपरिसंरक्षणपराः।।14

उपर्युक्त श्लोक में, जैसा कुछ है, कुछ करने के लिये उद्यत वैज्ञानिक बिगड़े हुए पर्यावरण को अनुकूल करने के लिए, अनेक आयोजित कार्यों में संलग्न होकर भू-मण्डल की प्रकृति की रक्षा करने में लग गए हैं" प्रकृति की रक्षा हेतु मनुष्य अब प्रयास कर रहा है, के बारे में बताय गया है। पुनः अगले श्लोक में वृक्षारोपण करने को कहा गया है यथा

वनध्वंसाज्जातं क्षरणमवने रक्षितुमथो,
तरुणां कोटीनां दिशि दिशि समारोपणविधौ।
व्यवस्था सर्वत्र प्रसरणमुखी शासक जनैः,
कृता येनाभूवन् प्रचुरविटपाः सर्वसुलभाः।।15

अर्थात् अब वनों के विनाश से हुए पृथ्वी के कटान की रक्षा करने के लिए शासक वर्ग ने करोड़ों वृक्षों की प्रति दिशा में आरोपण विधि की व्यवस्था की है। जिसका प्रसार भारत में सर्वत्र किया गया, जिससे वृक्ष सभी जनों को सुलभ हो जाए। और भी-

क्वचित् तालाः सालाः क्वचिदपि रसाला रसभराः,
घनच्छायाश्वत्थाः सरलपनसोदुम्बरवटाः।
कपित्थाः कड्कणेलामलकखदिरा निम्बवकुलाः,
अशोका रोष्यन्ते प्रचुर विटपाः पर्णबहुलाः।।16

अर्थात् कहीं पर ताल के वृक्ष, कहीं पर रस भरे आम के पेड़, घनी छाया वाले पीपल के पेड़, सरल के, कटहल के, गूलर के और बरगद के तथा अशोक के प्रचुर मात्रा में वृक्षों का आरोपण किया जा रहा है।

महाकवि डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री द्वारा महाकाव्य भागीरथी दर्शनम् में पर्यावरण प्रदूषण के कारक तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु वृक्षारोपण पर जोर दिया है, जिससे भूक्षरण से निजात मिल सके तथा वायु शुद्ध होने से प्रचुर मात्रा में वर्षा होने

से वायु और जल समुचित रूप से तथा शुद्ध रूप से मिल सके। इसके लिये मानव को वृक्षों के कटान को कम करना चाहिए। अस्तु हमारे विचार से नदियों के दोनों किनारों पर कम से कम एक किलोमीटर तक पीपल, अशोक, बरगद आदि वृक्षों का आरोपण किया जाना चाहिए तथा सड़कों के किनारे फलदार वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए तथा लाउडस्पीकर जैसे साधनों पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए, जिससे पर्यावरण संरक्षण किया जा सके। महाकवि कालिदास ने प्रकृति का संरक्षण कैसे किया जाए अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है, यथा-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादन्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आधे वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम।।17

अर्थात् जो तुम सबको बिना जल पिलाये तुमसे पहले जल पीने की इच्छा तक नहीं करती, जो प्रसाधन प्रिय होने पर भी (अपने श्रृंगार के लिये) तुम्हारा पत्ता भी स्नेह के कारण नहीं तोड़ती, तुममें सबसे पहली बार उत्पन्न होने पर जो प्रसन्नता से उत्सव मनाती थी, वही यह (ममता, त्याग और सहृदयता की मूर्ति शकुन्तला पति के घर को जा रही है, आप सब इसे जाने की अनुज्ञा दें।

उपर्युक्त श्लोक में पर्यावरण संरक्षण की भावना निहित है और प्रकृति-प्रेम भी छलक रहा है। आज भी मानव को इसी भावना से ओतप्रोत होकर पर्यावरण संरक्षण करने की आवश्यकता है, जिससे वातावरण शुद्ध हो सके।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-महाकविकालिदास विरचित्त व्याख्याकार, डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी द्वितीय संस्मरण अंक 5 श्लोक संख्या-7, पृष्ठ-276

2. भागीरथीदर्शनम् महाकाव्य-महाकवि डॉ. गोस्वामी वलभद्रप्रसाद शास्त्री विरचित्त विमला हिन्दी टीका नवम् तरङ्ग, श्लोक संख्या-1, पृष्ठ- 105
3. वही, श्लोक संख्या-2
4. वही, श्लोक संख्या-3, पृष्ठ 106
5. वही, श्लोक संख्या-4
6. वही, श्लोक संख्या-5
7. वही, श्लोक संख्या- 6 पृष्ठ 107
8. वही, श्लोक संख्या- 7
9. वही, श्लोक संख्या- 8, पृष्ठ 107-108
10. वही, श्लोक संख्या -१, पृष्ठ 108
11. वहीं, श्लोक संख्या-10
12. वहीं, श्लोक संख्या-12, पृष्ठ-109
13. वही, श्लोक संख्या-21, पृष्ठ-112
14. वही, श्लोक संख्या-22, पृष्ठ-113
15. वही, श्लोक संख्या- 23
16. वही, श्लोक संख्या-24, पृष्ठ 113-114
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्.....अंक-4, श्लोक संख्या-9, पृष्ठ-230

वेदों में पर्यावरण चिंतन : एक वैदिक दृष्टिकोण

डॉ. निरुपमा पाठक
सहायक प्राध्यापक, हितकारिणी वूमेंस कॉलेज ऑफ एजुकेशन
जबलपुर, मध्यप्रदेश

प्रस्तावना-

प्रकृति मनुष्य का आदि गुरु है। भारतीय दर्शन में प्रकृति और जीवन को एक दूसरे का पूरक माना गया है। वेद भारतीय संस्कृति का मूल आधार हैं, जिनमें न केवल आध्यात्मिक ज्ञान का भंडार है बल्कि जीवन शैली, नैतिकता, विज्ञान और पर्यावरण संरक्षण की भी गहन समझ देखने को मिलती है। आज जब पर्यावरण संकट की स्थिति वैश्विक चिंता बन चुकी है, तब वेदों में निहित पर्यावरण संबंधी ज्ञान को समझना और अपनाना और भी प्रासंगिक हो गया है। यह शोध-पत्र वेदों में वर्णित पर्यावरणीय तत्त्वों की विवेचना करता है और यह स्थापित करता है कि वैदिक साहित्य में प्रकृति के विभिन्न घटकों- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, वनस्पति, पशु आदि के साथ समन्वय एवं सह-अस्तित्व की भावना निहित है।

वैदिक साहित्य और पर्यावरण का परिप्रेक्ष्य:-

वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें से ऋग्वेद सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। वेदों में प्राकृतिक शक्तियों को देवताओं के रूप में पूजनीय माना गया है, जिनमें अग्नि, वायु, आदित्य (सूर्य), वरुण (जल), पृथ्वी, उषा (प्रभात), रात्रि आदि प्रमुख हैं। इससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा और संवेदनशीलता रखते थे।

पर्यावरण के घटकों का वैदिक दृष्टिकोण:-

वेदों में पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, वनस्पति एवं जीव-जंतु के प्रति गहरी श्रद्धा, समर्पण और समन्वय की भावना दिखाई देती है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में प्रकृति कोई निर्जीव वस्तु नहीं, बल्कि चेतन शक्ति से युक्त एक दिव्य सत्ता है, जिसके हर अंश में ब्रह्म विद्यमान है। प्रकृति के इन पंचमहाभूतों एवं जीव-जंतुओं को न केवल देवत्व प्रदान किया गया, बल्कि उनके संरक्षण हेतु नीति, रीति एवं संस्कार भी निर्धारित किए गए।

1. पृथ्वी (भूमि): अथर्ववेद (12.1.12) में स्पष्ट रूप से कहा गया है:- "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।" (अर्थ: पृथ्वी मेरी माता है, और मैं उसका पुत्र हूँ।) इस मंत्र से यह बोध होता है कि वैदिक चिंतन में पृथ्वी को माता का स्थान दिया गया है, जो पोषण करती है, धारण करती है, और जीवन प्रदान करती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक Ecocentrism की अवधारणा से मेल खाता है, जहाँ मानव को पर्यावरण का केंद्र नहीं बल्कि उसका अंग माना जाता है। पृथ्वी के सतत उपयोग के लिए वेदों में कई निर्देश मिलते हैं। अथर्ववेद में पृथ्वी के विभिन्न अंगों जैसे पर्वत, नदियाँ, वन, खनिज, वनस्पति, आदि के संतुलित उपयोग और संरक्षण पर बल दिया गया है। 'पृथिवी सूक्त' में पृथ्वी से यह प्रार्थना की जाती है कि वह हमें धारण करे जैसे वह अनेकों को करती है, और हम उसे क्षति न पहुँचाएँ।

2. जल (आप): जीवन का देवत्व- ऋग्वेद (10.9.1) में कहा गया है:- "आपो हिष्ठा मयोभुवस्त न ऊर्जे दधातन।" (हे जलों! तुम हमें आनंद देने वाले हो, हमारे लिए ऊर्जा धारित करो।) जल को देवता 'आपः' के रूप में पूजा गया है। वैदिक काल में नदियों, झीलों, तालाबों आदि को पवित्र माना जाता था और जलस्रोतों को दूषित करना महापाप

माना जाता था। नदियाँ केवल जल की धाराएँ नहीं थीं, बल्कि उन्हें मातृरूपा, जीवनदायिनी और मोक्षदायिनी समझा जाता था। ऋग्वेद के 'आपः सूक्त' में जल को पवित्रता, शांति और उपचार की शक्ति से युक्त बताया गया है। इस सूक्त का जाप आज भी अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में जलशुद्धि हेतु किया जाता है। यह वैदिक दृष्टिकोण आधुनिक जल संरक्षण अभियान जैसे "जल शक्ति मिशन" और "वॉटर हार्वेस्टिंग" के सैद्धांतिक आधारों से मेल खाता है।

3. अग्नि: ऊर्जा और शुद्धता का प्रतीक- ऋग्वेद का पहला मंत्र ही अग्नि को समर्पित है:- "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।" (हम अग्नि की स्तुति करते हैं, जो यज्ञ के पुरोहित, देवताओं के पुजारी हैं।) अग्नि वैदिक संस्कृति में केंद्रीय भूमिका निभाती है। वह यज्ञ का माध्यम है, और यज्ञ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि पर्यावरणीय शुद्धि का भी उपाय था। अग्नि ऊर्जा का भी प्रतीक है- जो सूर्य, बिजली और भोजन पकाने के रूप में मानव जीवन में रच-बस गई है। अग्नि की उपयोगिता को सीमित करने हेतु यज्ञों में केवल चयनित, सूखे, हानिरहित वृक्षों की लकड़ियों का उपयोग होता था। वैदिक यज्ञ परंपरा में "हविष्यान्न" और घी का प्रयोग पर्यावरणीय संतुलन के लिए विशिष्ट रूप से नियोजित था।

4. वायु: प्राण का आधार- यजुर्वेद (15.20) में कहा गया है:- "वातस्य नु मा पिता भवति।" (वायु ही मेरा पिता है।) वायु को 'वात' देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। वायु ही प्राणवायु है, और इसे 'जीवनदायी शक्ति' कहा गया है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली- आयुर्वेद वायु के तीन दोषों (वात, पित्त, कफ) पर आधारित है, जो शरीर की समरसता और स्वास्थ्य बनाए रखते हैं। ऋग्वेद (10.186) में वायु की शुद्धता के लिए स्तुति की गई है। वायु को दूषित करने वाले कर्मों से बचने की शिक्षा दी गई है। वर्तमान समय

में वायु प्रदूषण की विकरालता को देखते हुए वैदिक पर्यावरण दृष्टिकोण और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

5. आकाश (द्यौ): अनंतता का बोध- ऋग्वेद (1.159.1) में उल्लेख है:- "द्यावा पृथिवी अप्रथेतां नमोभिः।" (हम आकाश और पृथ्वी को नमस्कार करते हैं।) यह मंत्र पृथ्वी और आकाश के संयुक्त अस्तित्व की भावना को दर्शाता है। आकाश को अनंत और दिव्य सत्ता माना गया है, जहाँ सूर्य, चंद्रमा, तारे, ग्रह आदि विचरण करते हैं। यह ब्रह्मांडीय संतुलन का प्रतीक है। वैदिक काल में आकाशीय घटनाओं (सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, ऋतु परिवर्तन) का गहन पर्यवेक्षण किया जाता था, जिससे ज्योतिष और कृषि विज्ञान का विकास हुआ। आकाश तत्त्व हमें हमारी सीमाओं के परे सोचने, और ब्रह्मांड के साथ अपने संबंध को समझने की प्रेरणा देता है।

6. वनस्पति (औषधियाँ और वृक्ष): जीवन की जड़ें- अथर्ववेद (8.7.3) में औषधियों को संबोधित किया गया है:- "योषा नामासि मृग्यं त्वं हि विश्वस्य भेषजम्।" (हे औषधि! तू स्त्रीवत स्नेहिल है, तू सम्पूर्ण विश्व की चिकित्सा है।) वृक्षों, लताओं और औषधियों को वैदिक साहित्य में 'दिव्य' कहा गया है। 'वृक्षाय नमः', 'वनदेवी नमः' जैसे स्तोत्र वृक्षों के प्रति श्रद्धा का प्रतीक हैं। वैदिक काल में वृक्षों को काटना निषिद्ध था, जब तक कि उसका कोई धर्मिक या औषधीय प्रयोजन न हो। प्राचीन भारत में पीपल, वट, अश्वत्थ, तुलसी आदि वृक्षों की पूजा केवल धार्मिक भावनाओं से नहीं, बल्कि उनके पर्यावरणीय महत्त्व को समझकर की जाती थी।

7. पशु-पक्षियों के प्रति करुणा- अथर्ववेद (10.10.29) में कहा गया है:- "अघ्न्या या कामधेनुः।"(गाय जो कामधेनु है, वह मारने योग्य नहीं है।) गाय को 'अघ्न्या' (अहिंसनीय) कहा गया है। यही भाव

अन्य पशु-पक्षियों के प्रति भी दिखाई देता है। ऋग्वेद में अश्व, उष्ट्र, मृग, हंस आदि का उल्लेख सजीव चेतनाओं के रूप में हुआ है। वैदिक समाज में पशु केवल कृषि कार्य या बलिदान के उपकरण नहीं थे, बल्कि परिवार का हिस्सा माने जाते थे। पशुपालन को आर्थिक, नैतिक और पर्यावरणीय दृष्टि से महत्व दिया गया। पक्षियों के प्रति भी करुणा का भाव था; वे ऋषियों के मित्र एवं संदेशवाहक माने जाते थे।

8. वनस्पति और जीव-जंतु संरक्षण- वैदिक साहित्य में वनस्पति एवं जीव-जंतुओं के प्रति गहन संवेदनशीलता, संरक्षण की भावना एवं उनके साथ सह-अस्तित्व का विचार व्यापक रूप से विद्यमान है। यह दृष्टिकोण आधुनिक ecological ethics से कहीं अधिक समावेशी और आध्यात्मिक है। प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु न मानकर, उसके प्रत्येक तत्व को जीवन का अंग और परमेश्वर का अंश माना गया है।

वनस्पति (वृक्ष, लता, औषधियाँ) का वैदिक दृष्टिकोण:- अथर्ववेद (8.7.3) में कहा गया है:- "योषा नामासि मृग्यं त्वं हि विश्वस्य भेषजम्।" (हे औषधि! तू स्नेहमयी स्त्री के समान है, और समस्त संसार के लिए औषधि है।) यह मंत्र न केवल औषधियों के महत्त्व को रेखांकित करता है, बल्कि उन्हें एक संवेदनशील, सजीव इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है। वेदों में वनस्पतियों को 'ओषधि', 'वनस्पति', 'द्रुम', 'तरु' आदि नामों से पुकारा गया है, और प्रत्येक का विशेष धार्मिक व औषधीय महत्त्व बताया गया है। ऋग्वेद में 'ओषधि सूक्त' (10.97) विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें 107 प्रकार की औषधियों की स्तुति की गई है। यह सूक्त बताता है कि वैदिक काल के ऋषि न केवल आध्यात्मिक ज्ञाता थे, बल्कि पर्यावरणीय वैज्ञानिक भी थे, जिन्हें वनस्पतियों की संरचना, गुणधर्म और उपचार क्षमता

का विस्तृत ज्ञान था। वृक्षों की पूजा, उन्हें देवता मानना, उनकी छाया, फल, औषधि और ईंधन के रूप में उपयोग करना। यह सब इस बात का प्रमाण है कि वेदों में वृक्षों को काटने के स्थान पर उन्हें संरक्षित करने की प्रेरणा दी गई थी। 'अश्वत्थ', 'पीपल', 'वट', 'न्यग्रोध' जैसे वृक्षों को पवित्र माना गया। यजुर्वेद (16.4) में कहा गया है- "वृक्षान् मा छिन्दत।" अर्थात् वृक्षों को मत काटो। यह स्पष्ट रूप से वृक्ष संरक्षण की वैदिक चेतना का उदाहरण है।

जीव-जंतुओं के प्रति संवेदना और संरक्षण- अथर्ववेद (10.10.29) में उल्लेख मिलता है:- "अघ्न्या या कामधेनुः अघ्न्या' शब्द का तात्पर्य ही है- जिसे नहीं मारा जाना चाहिए। यह मंत्र वैदिक काल में पशु संरक्षण की नैतिक चेतना को प्रकट करता है। गाय, बैल, घोड़ा, उष्ट्र (ऊँट), अश्व, हिरण, हाथी आदि सभी पशु-पक्षियों का वर्णन ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक बार आता है, और उन्हें पूजनीय व सहयोगी जीव के रूप में देखा गया है। ऋग्वेद (1.164.40) में पशुओं को 'मित्र' कहा गया है, और यह शिक्षा दी गई है कि वे केवल उपभोग के लिए नहीं, बल्कि संरक्षण के अधिकारी हैं। इसीप्रकार पक्षियों को संदेशवाहक, ऋषियों के सहचर और पर्यावरण संतुलन के आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। हंस, चकवा, श्येन (बाज़), कोकिल आदि पक्षियों का उल्लेख वैदिक ऋचाओं में मिलता है। पशुपालन को एक पवित्र और आवश्यक कार्य माना गया, जिसमें पशुओं की सेवा, पालन-पोषण, और उनकी सुरक्षा अनिवार्य मानी गई। गाय के दूध, गोमूत्र, गोबर आदि को चिकित्सा और यज्ञीय उपयोगों में स्थान प्राप्त था।

वैदिक यज्ञ और पर्यावरण- वैदिक संस्कृति में यज्ञ न केवल एक धार्मिक अनुष्ठान है, बल्कि यह संपूर्ण पर्यावरण और जीवनशैली को संतुलित रखने वाला एक वैज्ञानिक और पारिस्थितिकीय प्रयोग भी

है। यज्ञ को 'यजन' धातु से व्युत्पन्न माना गया है, जिसका अर्थ है- देवताओं की पूजा, आपसी दान और परस्पर सद्भाव। वैदिक यज्ञ की अवधारणा मूलतः 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना पर आधारित है, जिसमें प्रकृति के सभी तत्त्वों- वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वनस्पति, जीव के बीच समन्वय और संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

1. यज्ञ और वायुमंडल की शुद्धता- यज्ञ में उपयोग होने वाली समिधा (लकड़ी), घृत (घी), हवन सामग्री (जैसे गूगुल, इलायची, कपूर, जटामांसी आदि) जलकर वातावरण में सुगंधित वायुनिस्सारण करते हैं। इससे वायुमंडल की अशुद्धियाँ नष्ट होती हैं। ऋग्वेद (1.1.1) में अग्नि की प्रशंसा करते हुए कहा गया है: "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।"- (मैं अग्नि की वंदना करता हूँ जो यज्ञ का पुरोहित, देवताओं का दूत और ऋत्विज है।) इससे यह स्पष्ट होता है कि अग्नि को यज्ञ के माध्यम से वातावरणीय संतुलन का माध्यम माना गया है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों ने भी सिद्ध किया है कि यज्ञीय धुएं में रोगाणुनाशक गुण होते हैं जो हवा में फैले बैक्टीरिया और वायरस को नष्ट कर सकते हैं।

2 यज्ञ और जैविक संतुलन- यज्ञों में डाले जाने वाले पदार्थ, जैसे- घृत, अनाज, औषधियाँ, वनस्पति आदि जलाकर जो गैसें उत्पन्न करते हैं, वे carbon dioxide, formaldehyde, phenols आदि को नियंत्रित करती हैं। साथ ही इससे pollination को भी बल मिलता है, जो वनस्पति वृद्धि के लिए अनिवार्य है। इस प्रकार यज्ञ एक जैविक चक्र का हिस्सा बनता है।

3. यज्ञ और जल चक्र- यज्ञ के माध्यम से आकाश में उठती गर्म वाष्पों से जलवाष्प संघनित होता है, जिससे वर्षा के योग बनते हैं। अथर्ववेद (6.30.1) में कहा गया है:- "यज्ञेन वृष्टिं वहसि यज्ञेनातिष्ठा महीम्।"

(हे यज्ञ! तू वर्षा को लाता है और पृथ्वी को स्थिर करता है।) यह वेदवाक्य इस बात का प्रमाण है कि यज्ञ को वर्षा उत्पन्न करने वाला एक माध्यम माना गया है, जो कृषि एवं जीवन के लिए अत्यावश्यक है।

4. सामाजिक और नैतिक प्रभाव- यज्ञ केवल पर्यावरणीय क्रिया नहीं, अपितु एक सामाजिक एकता का माध्यम भी था। ग्रामों में सामूहिक यज्ञों का आयोजन होता था, जिसमें जनसाधारण की सहभागिता होती थी। यज्ञ में आने वाले नियम- संयम, ब्रह्मचर्य, दान, अहिंसा, सात्विक भोजन व्यक्ति के जीवन में नैतिकता और संतुलन लाते थे, जो समाज और प्रकृति दोनों के लिए लाभकारी थे।

पर्यावरणीय संतुलन हेतु वैदिक दृष्टिकोण

वेदों में पर्यावरण के प्रति जो दृष्टिकोण प्रकट होता है, वह केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में प्रकृति के साथ सहअस्तित्व (co-existence) और समन्वय (harmony) की शिक्षा देता है। वैदिक चिंतन यह मानता है कि सृष्टि का हर घटक- चाहे वह मानव हो, पशु-पक्षी, जलवायु, वायु, अग्नि, वृक्ष या पृथ्वी सभी एक सांस्कृतिक और नैतिक कर्तव्यबोध के साथ जुड़े हुए हैं। जब यह संतुलन बिगड़ता है, तो प्रकृति असंतुलित हो जाती है, और आज की जलवायु आपदाएँ, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याएँ उसी असंतुलन का परिणाम हैं।

1 समन्वय और सह-अस्तित्व की भावना-वैदिक मंत्रों में यह भावना कई स्थानों पर दिखाई देती है कि संपूर्ण सृष्टि एक परिवार है- "वसुधैव कुटुम्बकम्" (महा उपनिषद)। यह सूत्र हमें सिखाता है कि न केवल मनुष्य, बल्कि पशु, पक्षी, जल, वन, पर्वत, आकाश सब हमारे 'परिवार' का अंग हैं, और इनके साथ हिंसा नहीं, बल्कि सहजीवन की भावना से रहना चाहिए। ऋग्वेद में कहा गया है:- "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।" (सभी जीवों को मैत्रीपूर्ण दृष्टि

से देखो।) ऋग्वेद 5.60.5. यह दृष्टिकोण पारिस्थितिकी तंत्र के प्रत्येक घटक के सम्मान की बात करता है।

2 ऋत का सिद्धांत- नैतिक नियम का पालन-वैदिक दर्शन का एक केंद्रीय तत्व है 'ऋत', जिसका अर्थ है सृष्टि का नैतिक, प्राकृतिक एवं सार्वभौमिक नियम। ऋत का पालन करना ही पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने का आधार है। ऋत प्रकृति की गति, ऋतुओं का क्रम, नदियों का प्रवाह, सूर्य की दिशा, वनों की वृद्धि, सभी में निहित है। मानव यदि 'ऋत' के विपरीत आचरण करता है, तो वह असंतुलन और विनाश का कारण बनता है। यजुर्वेद (36.17) में उल्लेख मिलता है:- "ऋतेन तपसा द्यौरुग्रं सानुं न ऊह।" (ऋत के तप से ही आकाश अपनी महानता को प्राप्त करता है।)

3. त्यागपूर्वक उपभोग और संसाधनों की मर्यादा- वेदों में भोग की नहीं, बल्कि मर्यादित उपभोग और त्याग की शिक्षा है। ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है:- "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" (त्यागपूर्वक उपभोग करो, लोभ मत करो।) यह संदेश आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में अत्यंत प्रासंगिक है। यदि हर व्यक्ति आवश्यकता के अनुसार संसाधनों का उपयोग करे और प्रकृति को दोहन का साधन न समझे, तो पर्यावरणीय संकट स्वतः टल सकता है।

4. पंचमहाभूतों के साथ संतुलन- वैदिक दृष्टिकोण में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश को पंचमहाभूत माना गया है। इनका संतुलन ही जीवन का संतुलन है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद के अनेक मंत्र इन तत्वों की शुद्धता, संतुलन और संरक्षण की बात करते हैं।

निष्कर्ष:-

वैदिक ग्रंथों में प्रत्येक प्राकृतिक तत्त्व को दिव्य दृष्टि से देखा गया है और उसके साथ समरसता बनाए रखने की शिक्षा दी गई है।

पर्यावरण के इन घटकों को केवल संसाधन नहीं बल्कि पूज्य मानकर उनका संरक्षण करने का जो दृष्टिकोण वेदों में निहित है, वह आज के वैज्ञानिक, शैक्षणिक और नीति-निर्माण के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वैदिक साहित्य में वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के प्रति केवल उपयोगितावादी नहीं, बल्कि संवेदनशील, समरस और आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह दृष्टिकोण आज की पर्यावरणीय नीतियों, जैव विविधता संरक्षण और सतत विकास के लिए एक सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान करता है। यदि हम इस वैदिक ज्ञान को पुनः आत्मसात करें, तो आधुनिक पर्यावरण संकटों का समाधान भारतीय चिंतन की जड़ों में ही प्राप्त किया जा सकता है।
पर्यावरण चिंतन हेतु कुछ सुझाव निम्नानुसार हैं-

1. शैक्षणिक पाठ्यक्रम में समावेश- विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर वैदिक पर्यावरण दर्शन को वैकल्पिक विषय अथवा पाठ्यांश के रूप में शामिल किया जाए।

2. जन-जागरूकता कार्यक्रम- वैदिक मंत्रों एवं सिद्धांतों के आधार पर पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रचार अभियान (Awareness Campaigns) चलाए जाएं।

3. स्थानीय भाषाओं में प्रचार- वेदों की पर्यावरणीय शिक्षाओं का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद कर ग्रामीण एवं सामान्य जनमानस तक पहुँचाया जाए।

4. अनुसंधान प्रोत्साहन- वैदिक ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय अवधारणाओं पर और अधिक गवेषणात्मक (Research-Oriented) कार्य को प्रोत्साहित किया जाए।

5. नीति निर्माण में समावेश- सरकारी नीतियों एवं जलवायु योजनाओं में वैदिक सिद्धांतों जैसे 'ऋत', 'त्यागपूर्वक उपभोग' आदि को शामिल किया जाए।

6. पर्यावरण उत्सव- वनों, जल स्रोतों और प्राणियों के संरक्षण हेतु पारंपरिक वैदिक रीतियों पर आधारित 'पर्यावरण उत्सव' आयोजित किए जाएं।

7. वैश्विक मंचों पर प्रस्तुति- संयुक्त राष्ट्र एवं COP सम्मेलनों जैसे वैश्विक मंचों पर भारत वैदिक पर्यावरण दृष्टिकोण को नीति विकल्प के रूप में प्रस्तुत करे।

संदर्भ-ग्रंथ (References)

1. Acharya, B. K. (2010). Environmental Thoughts in Ancient India. New Delhi: Bharatiya Vidya Prakashan.
2. Dwivedi, R. C. (2001). Environmental Awareness in Vedic Literature. New Delhi: Aryan Books International.
3. Gaur, R. (2006). Science and Technology in the Vedas. New Delhi: Aryan Books.
4. Griffith, R. T. H. (1896). The Hymns of the Ṛgveda. Benares: E.J. Lazarus and Co.
5. Panikkar, R. (1977). The Vedic Experience: Mantramañjari. University of California Press.
6. Vatsyayan, K. (2003). The Vedic Mind and Ecology. IGNCA, Delhi
7. यजुर्वेद संहिता, चोपड़ा पब्लिकेशन, वाराणसी
8. अथर्ववेद संहिता, गीता प्रेस, गोरखपुर

संस्कृत साहित्य में पर्यावरणीय दृष्टिकोण

जिनेन्द्र भिलवडे, शोधच्छात्र
कविकुल गुरुकालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय रामटेक नागपूर

सारांश-

भारत की प्राचीन परंपरा में प्रकृति के प्रति गहन श्रद्धा और संरक्षण की भावना विद्यमान रही है। वैदिक युग से ही पृथ्वी, जल, वायु जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को देवतुल्य मानते हुए उनके संतुलन और शुद्धता को बनाए रखना धर्म का अनिवार्य भाग था।

रामायण, महाभारत, उपनिषद, पुराण और महाकाव्यों में वनस्पति, वन, नदियाँ, पर्वत और जीव-जंतुओं का ऐसा चित्रण मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य और प्रकृति का सह-अस्तित्व उस काल की जीवनशैली का हिस्सा था। वृक्षों को उदार गुरु की संज्ञा दी गई जो अपना सब कुछ मानवहित में अर्पित कर देते हैं। शास्त्रों में जल को अमृत कहा गया, वायु को प्राण माना गया और पृथ्वी को माता की तरह पूज्य बताया गया। यज्ञों, हवनों, पूजा विधियों और जीवनचर्या में प्रकृति के संरक्षण की परंपराएं दिखाई देती हैं।

वर्तमान युग की औद्योगिक और तकनीकी प्रगति ने जहाँ एक ओर जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है जैसे वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन, ध्वनि प्रदूषण और ओज़ोन परत की क्षति। इन संकटों के समाधान हेतु संस्कृत साहित्य से हमें संतुलित और जागरूक जीवन शैली की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार यह शोध प्राचीन भारतीय साहित्य को केवल भाषाई समृद्धि का द्योतक नहीं बल्कि आधुनिक पर्यावरणीय समस्याओं के लिए मार्गदर्शक स्रोत के रूप में स्थापित करता है।

भूमिका-

"संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है, जो न केवल भाषा और दर्शन को समृद्ध करता है, बल्कि मानव और प्रकृति के संबंध को उजागर करता है। आदिकाल से ही साहित्य का उद्देश्य समाज के नैतिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विकास को बढ़ावा देना रहा है। वेदों में प्रकृति को देवत्व प्रदान किया गया है, जहाँ पृथ्वी को माता, जल को जीवन एवं वायु को प्राण माना गया है।

पर्यावरण शब्द "परि" और "आवरण" से निर्मित है, जिसका अर्थ है चारों ओर का घेरा। संस्कृत साहित्य में पर्यावरण को केवल भौतिक प्रकृति तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि इसे संपूर्ण ब्रह्मांड की संतुलित संरचना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेदों, महाकाव्यों, उपनिषदों एवं पुराणों में प्रकृति के संरक्षण की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। रामायण और महाभारत में वन्य जीवन, जल स्रोतों एवं पर्वतीय क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है, जो यह दर्शाते हैं कि प्राचीन काल में पर्यावरणीय चेतना कितनी प्रबल थी।

वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन एवं प्रदूषण जैसी समस्याएँ मानव जीवन को संकट में डाल रही हैं। संस्कृत साहित्य में निहित पर्यावरणीय ज्ञान इन चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है, जो हमें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। यह साहित्य न केवल संरक्षण का संदेश देता है, बल्कि सह-अस्तित्व और स्थायित्व की भावना को भी विकसित करता है। अतः संस्कृत साहित्य को पर्यावरणीय चेतना के एक आदर्श स्रोत के रूप में देखा जा सकता है, जिसकी प्रासंगिकता आज के युग में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृत साहित्य, विशेष रूप से वैदिक ग्रंथों, में पर्यावरणीय चेतना अत्यंत प्राचीन काल से मौजूद रही है। पृथ्वी, जल, वायु को देवता स्वरूप मानकर उनकी शुद्धता, संरक्षण एवं संतुलन पर विशेष बल दिया गया है। वेदों में यह विचार न केवल धार्मिक दृष्टि से बल्कि वैज्ञानिक एवं पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण हैं।

1. पृथ्वी की महत्ता- मातृभूमि और पालनकर्ता-

वैदिक ग्रंथों में पृथ्वी को जीवों की पालनकर्ता, पोषिका एवं माता के रूप में चित्रित किया गया है। पृथ्वी का सम्मान और उसकी सुरक्षा को मानव जीवन के लिए अनिवार्य बताया गया है। अथर्ववेद में पृथ्वी की स्तुतिः- "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" अर्थात्- "पृथ्वी माता है, और मैं इसका पुत्र हूँ।"

अथर्ववेद में पृथ्वी की पवित्रता:-

"यस्यां वृक्षा वनस्पत्या घुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं घृताच्छावदामसि॥"

अर्थात् "जिस पृथ्वी पर वृक्ष और वनस्पतियाँ खड़ी हैं, वह संपूर्ण मानव जाति का पालन करती है।" संस्कृत साहित्य में पृथ्वी को देवतुल्य माना गया है और इसके संरक्षण को मानव जीवन की अनिवार्यता बताया गया है।

2. जल- जीवन का अमृत-

संस्कृत ग्रंथों में जल को 'अमृत' तथा 'जीवन का मूल' माना गया है। जल की शुद्धता, संरक्षण एवं संतुलन के लिए वैदिक ऋषियों ने अनेक प्रार्थनाएँ की हैं।

ऋग्वेद में जल की पवित्रता:-

"आपः पुनंतु पृथिवीम् आपः पुणंतु माम्। आपो हि ष्ठा मयो भुवः॥" अर्थात् "जल पृथ्वी को भी पवित्र करता है और मानव को भी।"

यजुर्वेद में जल के उपयोग का निर्देश:-

"आपः सप्तयोनयो वः परोप्तास्मिन यज्ञे। सिञ्चन्तु माभिषिचन्तु।।" अर्थात् "जल की सात धाराएँ हमें पवित्र करें, हमें निर्मल करें।"

वैदिक संस्कृति में जल संरक्षण के उपाय:

- यज्ञ और हवन के माध्यम से जल शुद्धि की प्रक्रिया
- नदियों की पूजा और पवित्रता बनाए रखने का निर्देश
- कुआँ, तालाब, झीलों का निर्माण पुण्य कार्य माना गया

आज के संदर्भ में भी यह अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि जल संकट, जल प्रदूषण जैसी समस्याएँ मानव जीवन को प्रभावित कर रही हैं। अतः वेदों की जल संरक्षण नीतियाँ आधुनिक वैज्ञानिक समाधान के अनुरूप हैं।

3. वायु- प्राण शक्ति-

संस्कृत साहित्य में वायु को प्राण का वाहक, शुद्धि का स्रोत एवं जीवन का आधार माना गया है। वायु की शुद्धता एवं इसकी प्राकृतिक गति को बनाए रखने की आवश्यकता बताई गई है। ऋग्वेद में वायु देवता की स्तुति:- "वायवाय वायु तव प्राणेन प्राणामि।" अर्थात्- "हे वायु देव! आपके प्राण से मैं भी प्राणवान बनता हूँ।"

यजुर्वेद में वायु की महत्ता-

"वायुः पृथिव्याः संधाता।" अर्थात् "वायु पृथ्वी को बाँधने वाला है।"

संस्कृत साहित्य में वायु शुद्धता के उपाय-

- वनों को संरक्षित करने पर बल ताकि वायु की गुणवत्ता बनी रहे
- यज्ञ की प्रक्रिया द्वारा वायु को शुद्ध करने का प्रयास
- प्रदूषण रहित वातावरण को जीवन के लिए आवश्यक बताया गया

आज के समय में वायु प्रदूषण, ग्रीनहाउस प्रभाव, कार्बन उत्सर्जन जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। वेदों की वायु-संबंधी

अवधारणाएँ प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा एवं प्रदूषण नियंत्रण हेतु महत्वपूर्ण हैं।

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन मुञ्जीया भा गृधः क्स्यस्विद्धनम्।।

ईशावास्योपनिषद त्यागपूर्वक भोग करने का निर्देश देता है। किसी के धन के प्रति तृष्णा न रखना ही उपनिषद् का प्रथम सन्देश है। भारतीय धर्म पूर्ण है, अखण्ड है, परमात्मा पूर्ण है उसकी सृष्टि का अणु-अणु पूर्ण है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदत्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णवावशिष्यते।।

विश्व में कोई भी ऐसा समाज नहीं है जिसमें धर्म तथा ईश्वर की धारण नहीं पायी जाती है। धर्म के अलौकिक शक्ति में विश्वास किया जाता है। महाकाव्य में वन, पर्वत, नदी एवं समुद्र के संबंध में प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होते हैं। महाकाव्य के लक्षणों में प्रकृति वर्णन भी अनिवार्य बताया गया है। संस्कृत के कवियों को प्रकृति ने सर्वाधिक आकृष्ट किया है उनके वर्णन में पर्वतों एवं नदियों आदि के चेतनता के अतिरिक्त देवत्व की अवधारणा का दर्शन होता है।

वतर्मान वैज्ञानिक जीवात्मा के अस्तित्व को अपने विज्ञान से बाहर का विषय मानते हैं। वे इस विद्या को मेटाफिजिक्स (Meta Physics) कहते हैं। भारतीय विज्ञान में अध्यात्म-विद्या को विज्ञान और विज्ञान के अंतर्गत ही माना गया है।

महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य में तीन प्रमुख झीलों का उल्लेख किया है- मानस (ब्राह्मसर), पम्पा और पंचप्सर, जो अपने सांस्कृतिक और प्राकृतिक महत्त्व के कारण प्रसिद्ध हैं। महाकवि कालिदास ने निर्झर का अपनी उपमाओं में स्पष्ट उल्लेख किया है। यथा-

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्यगन्धिः।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे।।
अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं ज्ञिज्ञासमानामुनिहोमधेनुः।
गंगाप्रपातान्तविरुद्धशष्यं गौरीगुरोर्गहरभाविवेश।।

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जिताना यदृच्छया पिरुषांगनानाम्।
दरीगृहद्धारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदाभवन्ति।।

कवि ने गंगा प्रपात और महाकोशी प्रपात का स्पष्ट उल्लेख किया है। इन दोनों को हिमालय के अन्तर्गत ही क्रमशः गंगा और महाकोशी के प्रवाहों में रखा है। महाकोशी नेपाल की सातो कोशियों की सम्मिलित धारा है। यह सातों नदियां पहले तीन धाराओं में मिलती है जो बाद तमार, अरुन और सोन कोशी की त्रिवेणी बनाती है। यह त्रिवेणी पुर्निया में नाषपुर के पश्चिम बराह क्षेत्र के ऊपर है जहाँ से सम्मिलित कोशियों की धारा नीचे के मैदानों में उत्तरती है।

महाभारत वनों का काव्य है। वनों में कथा का पल्लवन हुआ तथा स्वयं वन पात्रों की भाँति अपनी भूमिकायें प्रस्तुत करते है। महाभारत में द्वैत वन, काम्यकवन, खाण्डव वन, कदलीवन, सौगन्धिक वन, द्वारकावन, उत्तर कुरूवर्ष वन, वांस वन्, लोध्र वन, भयंकरवन एवं दिव्य वन स्थलों का उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेद कहता है कि जिस भूमि में वृक्ष तथा वनस्पतियाँ सदा खड़ी रहती है, वह भूमि विश्व के समस्त जनों का भरण-पोषण करने में समर्थ होती है-

यस्यां वृक्षा वनस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं घृताच्छावदामसि।।

यजुर्वेद में 'वृक्षाणां पतये नमः' कहकर वृक्षों की रक्षा करने वालों के लिए सत्कार प्रदर्शित किया गया है। अथर्ववेद में अनेक सूक्त वनस्पतियों को समर्पित हैं। अथर्ववेद 8.7 में वनस्पतियों का वर्गीकरण भी किया गया है। आयुर्वेद में रोग निवारण के लिए प्रयोग में आने वाली वनस्पति कब, कैसे, किसके द्वारा उखाड़ी जाए, इसकी भी चर्चा की गई है जिससे कोई अयोग्य पुरुष उस वनस्पति का वंश ही नष्ट न कर दे। ऋग्वेद का 'अरण्यानी' सूक्त वनों की रक्षा के लिए प्रेरणादायक है। इन अरण्यों के बल पर ही यह संस्कृति पल्लवित और पुष्पित होती रही। जिस संस्कृति के मानने वालों की आयु का 3/4

भाग वन में ही व्यतीत होता हो, जहाँ आज भी पीपल, बरगद, बेल और तुलसी जैसे वृक्षों का पूजन इस देश में होता हो, उससे अधिक वनों के महत्त्व को कौन जान सकता है। श्रीमद्भागवत में ही वर्णित है कि-

पत्रं पुष्पफल-छाया मूल वल्कल-दारुभिः।
गन्ध निर्यास भस्मास्थि तोक्मैः कामान् वितन्यते।।

अर्थात् वृक्ष अपने सभी अवयवों- पत्तों से, पुष्पों से, छाया से जड़ों से, छाल से लकड़ियों से, गन्ध से, गोन्द से, राख से, कोयले से और टहनियों से सबकी कामना पूरी करते हैं। श्रीमद्भागवतानुसार वृक्षों ने किसी भी याचक को कभी निराश नहीं किया है।

अहो एषां वरं जन्य सर्व प्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येय धन्या महीरुहा येम्यो निराशा यान्ति नार्थिनः।।

अर्थात् समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उत्तम है। सज्जनों जैसे कितने धन्य हैं वे जिनके पास कोई याचक निराश नहीं लौटता। वराहपुराण में इसी को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि-

इन्धनार्थ यदानीत अग्निहोमं तदुच्यते।
छाया विश्राम पथिकैः पक्षिणां निलयेन च।।
पश्रमूल त्वगादिभिर्य औषधार्थ तु देहिनाम्।
उप कुर्वन्ति वृक्षस्य पंचयशः स उच्यते।।

अर्थात् वृक्षों के पाँच उपकार उनके दैनिक पंचमहायज्ञ है। वे गृहस्थों को ईंधन देकर, पथिकों को छाया व विश्राम स्थल देकर, पक्षियों के नीड बनकर तथा पत्तों, जड़ों व छालों से समस्त जीवों को औषधि देकर उनका उपकार करते हैं। वहीं भामिनी विलास में कहा गया है कि-

धन्ते मरं कुसुमपत्र फलवनीनां,
धर्मव्यथां वहति शीत भवांरुजं वा।

यो देहम् पर्याप्ति वान्य सुख्यस्य हेतोः,
तस्में वदान्य गुरवे तरवे नमस्ते।।

अर्थात् हे तरुवर! आप फूलों, पत्तों और फलों का भार वहन करते हैं। लोगों की धूप की पीड़ा हरते हैं और उनके ठण्ड के कष्ट मिटाते हैं। इस तरह दूसरों के सुख हेतु आप अपना तन समर्पित कर देते हैं। इन्हीं गुणों से आप उदार पुरुषों के गुरु हैं। अतः हे तरुवर आपको मेरा नमस्कार है।

अनेक विधाओं महाकाव्य, खण्डकाव्य, रुपक, कथा, आख्यान, चम्पू इत्यादि रूपों में अत्यन्त समृद्ध तथा विशाल है। इन सब में रस पारिपाक की दृष्टि से ऋतुओं, प्रातः, संध्या, रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, वन, वृक्ष, नदी, जलाशय, पर्वत आदि प्रकृति का अत्यन्त प्रभावकारी और मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

"कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परमपवित्रपानीयं परस्सरत्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकूलं-कूजितपूजितं पयः पूर पूरितंसर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझर्झर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फलपाटलाऽऽस्वादचपलित चञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणधिक विनतशाख शाखिसमूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।"

व्यास जी ने रात्र की नीरवता का अत्यन्त सटीक और स्वाभाविक वर्णन किया है। नीरव निशा का चित्र खींचते हुए लिखते हैं-

"धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्पमानाषु व्रततिषु समुदिते यामिनी कामिनीचन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रुषुषु इव मौनमाकालयत्सु, पतंगकुलेषु कैरव-विकाश-हर्षप्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु।"

इस प्रकार शिवराज विजय उपन्यास में पर्यावरण के विशिष्ट रूप यथावसर यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं।

संस्कृत-नाट्य साहित्य में पर्यावरण विज्ञान के रूप पदे-पदे विपलसित है। सूर्य, चन्द्र, गिरि, सरिता, सरोवर, तरु, पुष्प, दिन, रात्रि, पशु-पक्षी और उनकी क्रियाकलापों का अनेकशः वर्णन है। सम्पूर्ण नाट्य-साहित्य प्रकृति (पर्यावरण) के उपादानों से संतृप्त हैं। सूर्य की किरणों से नीरस हो गयी पृथिवी का ज्वर पीड़ित सा तत्प होना, दवाग्नि लगने से वृक्ष का छायाहीन से पीड़ित के समान दिखना तथा समस्त सांसारिक जीवों का अंशुमाली किरणों से दग्ध हृदय होना कवि के सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है-

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतससारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्तगुहाव्यात्तननाः पवर्ता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव॥

संस्कृत नाट्य साहित्य में सूर्य की तप्त किरणों के प्रभाव का विशद वर्णन मिलता है-

अये अत्युद्भूतो वायुः। अतितपत्यादित्यः। चलिताः पर्वताः। क्षुब्धाः सागराः। पतिताः वृक्षाः। भ्रान्ता मेघाः। प्रलीना वासुकिप्रभृतयो भुजङ्गेश्वराः।

पर्यावरण के प्रति सचेष्ट चेतना हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रचीन काल से ही परिचायक है।

रावण के अविनयनतरुका कोरक चारों ओर फैल सा रहा है, सीता की प्रार्थना इस वृक्ष का बीज, शूपर्णखा का राम-लक्षमण की वञ्चना के लिए जाना, मारीचिकृत माया नये पत्ते, सीतापहरण शाखा, अक्षयकुमार का वध और विभीषण का उनसे मैत्री स्थापन करना कोरक हैं-

बीजं यस्य विपदेहराजतनययायांचङ्करोऽपि स्वसु-
यार्ना तौ परिवंचितुं किसलयं मारीचपमायाविधिः।

शाखाजालमयोनिजापहरणसं तस्य स्फुटं कोरकाः
कीशाधीशवधोऽनुजस्य गमनं सख्यं तयोस्तेन च॥

अतः हम रामकथा, कृष्णकथा, अन्य प्राचीन धार्मिक कथा, महाभारत, पुराकथा, वैदिक उपाख्यान तथा पौराणिक शैली में उपनिबद्ध आदर्शचरित, धार्मिक चरित्र तथा संत चरित्र पर आधारित नाटकों को पौराणिक नाटकों के अंतर्गत मानते हैं। उत्तररामचरित, अभिज्ञानशाकुन्तल, वेणी संहार आदि संस्कृत के अधिकांश नाटक इसी वर्ग में आते हैं।

आकाश की आंखों से चू रही जलधाराएं मानो आंसू की धारा हैं जो निश्चय ही कीचड़ को चीरकर निकली कमललता की जड़ के अंकुर की तरह बादल के पेट को चीरकर निकली हैं, अपने प्रेमी चन्द्रमा पर आई विपत्ति के कारण ही उसने ऐसा किया है-

अमूर्हि मित्वा जलदान्तराणि पङ्कान्तराणीव मृणालसूच्यः।
पतन्ति चन्द्रव्यसनाद्विमुक्ता दिवोऽश्रुधारा इव वारिधाराः।।

उद्यान की शोभा की उपमा बाजार से करना प्रशंसनीय है जिसमें पेड़ बनिए है और फूल क्रय-विक्रय की वस्तु हैं तथा उद्यान के भौरे राजपुरुष के द्वारा कर वसूलते इधर-उधर डोल रहे हैं। स्वस्थ एवं सुंदर पर्यावरण के निदर्शन के साथ सामाजिकता का समन्वय, किसी के भी मन को मोहने का सामर्थ्य रखता है-

वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर पुरुषाः प्रविचरन्ति।।

इसप्रकार समाज में स्वच्छ पर्यावरण की उपस्थिति का उत्तम समाज के विकास में अमूल्य योगदान होता है, संक्षेपतः निरूपित किया गया।

पशुपक्षी भी सुख-चैन और शांति का अनुभव करते हैं। पहले प्रतिदिन यज्ञ करने और हवन की परम्परा थी और जब वेद मन्त्रोच्चार होने लगता था तब समूचा वातावरण पवित्र हो उठता

था। मन्त्रोच्चार सुनकर वन्य जीव भी आपसी शत्रुता छोड़कर एक दूसरे के हितकारी हो जाते थे।

अर्थात् भरत जी के पौरागण भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुँचे, यहाँ रामचन्द्र जी ने वनागमन के समय कभी फलशाली वृक्षों की समृद्धि से भूख और ठंडे मीठे जल से अपनी पिपासा मिटाते हुए निवास किया था।

निवृत्ते भरते थी मानत्रे रामस् तपो-वनम्।
प्रपेदे, पुजितस् तस्मिन् दण्डकारण्यमायिवान्।।

भरत के लौट जाने पर बुद्धिमान रामचन्द्र अत्रिमुनि के तपोवन में गये वहाँ सत्कार पाकर दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान किया।

आहिषातां रघु व्याधी शरभंगाऽऽश्रम ततः।
अध्यासित श्रियां ब्राह्मया शरण्यं शरणै विणाम्।।

विराध व धोपरान्त रघुकुल तिलक राम-लक्ष्मण ब्राह्मणों की उचित शोभा से युक्त ब्रह्मज्ञानी अशरण को शरण देने वाले शरमंगऋषि के आश्रम को पहुंचे।

पुरो रामस्य जुहवाञ्चकार ज्वलने वपुः।
शरभंगः प्रदिश्याऽऽरात् सुतीक्ष्ण मुनि केतनम्।।

"आपके रहने के लिए निकट ही सुतीक्ष्ण जी का आश्रम है" ऐसा बताकर शरभंग ऋषि ने राम के सामने ही अपने शरीर का अग्नि में हवन कर दिया।

यूयं समैष्यथेत्यस्मिन्नासिष्महि वयं वने।
दृष्टाः स्थ, स्वस्ति वो यामः स्वपुण्य विजितां गतिम्।।

शरभंग मुनि ने कहा कि 'आप लोगों के यहाँ आने को ही जानकर अब तक हम इस गहन वन में रह गये थे। आज आप के दर्शनों से कृतार्थ होकर अब अपने पुण्यार्जित गति पाने हेतु जा रहे हैं। आप का कल्याण हो।

तस्मिन् कृशानु-साद्-भूते सुतीक्ष्ण मुनि सन्धौ।
उवास पणं-शालायां नीमन्ननि माश्रमान्।।

शरमंग मुनि के अग्निप्रवेश करने के पश्चात् राम सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम के पास जाकर पर्णशाला बना कर इस्ततः आश्रमों में घूमते हुए रहने लगे।

वनेषु वासतेयेषु निवसन् पर्णसंस्तरः।
शय्योत्थायं मृगान् विध्यन्नातिथेयो विचक्रमे।।

रामचन्द्र जी निवास करने योग्य वनों में रहते हुए, पत्तों पर सोते हुए, शय्या त्यागने पर आश्रम में घुसे पशुओं को हटाते हुए और आतिथ्य सत्कारार्थ सामग्री संकलन के लिए निकल पड़ते थे।

परेद्यव्यघ पूवैधुरन्यैधुश चाऽपि चिन्तयन्।
वृद्धि-शयौ मुनीन्द्राणां प्रियं भावुक तामगात्।।
आतिष्ठ-गु जपन् सन्ध्यां प्रकान्तामायतीगवम्।
प्रातस्तरां पतित्रभ्यः प्रबृद्धः प्रणमन् रविम्।।

अर्थात् अनागत कल, आज और विगत कल की मुनिजनों की लाभ हानि की चिन्ता करने वाले, गायों के आने से लेकर उनके खड़े रहने के समय तक सन्ध्या जप करने वाले, पक्षियों से पहले उठकर सूर्योपासनादि अनुष्ठान करने वाले राम सभी आश्रमवासियों के प्रिय हो गये।

वैदिक काल से भारतीय लोकाचार एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को मूर्त रूप देने में नदियों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। तभी हिन्दू धार्मिक अनुष्ठान गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा एवं कावेरी तथा सिंधु नदियों की वंदना से ही शुरू होते हैं। यथा-

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधं कुरु।।

आज जल प्रदूषण एक गंभीर समस्या बन चुका है। संस्कृत साहित्य में उल्लिखित जल संरक्षण के विचार आधुनिक वैज्ञानिक शोधों के अनुरूप हैं और यह नदियों को पुनः स्वच्छ करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

भूमि के प्रति अविवेकपूर्ण मानव व्यवहार से भू-प्रदूषण बढ़ा है। जल ही जीवन है, किन्तु प्रदूषित होकर मौत का कारण भी बन

रहा है। पृथ्वी पर जीवन सुरक्षित रखने के लिए यह जल अत्यंत आवश्यक है। नदियाँ इसकी प्रमुख स्त्रोत है लेकिन अपने देश की नदियों में से अधिकांश पिछले कुछ वर्षों के दौरान मानव गतिविधियों में हुई वृद्धि एवं उद्योगों के अनियमित विकास के कारण प्रदूषित हो चुकी है। ओजोन का नाश अब एक तथ्य के रूप में जाना जा चुका है। वास्तविक चिन्ता मानव पर होने वाले इसके दुष्प्रभावों को लेकर है। हमारे ग्रह पर जीवन के लिए इसका क्या महत्त्व है? इस संबंध में निश्चय पूर्वक कुछ कहना अभी कठिन है। ओजोन नाशक रासायनिक प्रक्रिया के बारे में काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है। बाढ़ और अकाल मनमर्जी से आने जाने लगे हैं। मिट्टी रसायन पी-पीकर उर्वरा शक्ति से हाथ धोने लगी है। पानी कचरा, अपशिष्ट और दूषित पदार्थ मिलने से अशुद्ध हो गया है। यानी विकास के नाम पर जो विनाश लीला शुरू हुई है उसमें विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों को जन्म दिया है और इस प्रदूषकों ने विभिन्न प्रकार के प्रदूषण को जन्म दिया है।

जीवन को खतरा-

ओजोन का नाश अब एक तथ्य के रूप में जाना जा चुका है। मानव तथा पेड़-पौधों एवं जंतुओं पर इससे होने वाले दुष्प्रभावों को लेकर वास्तविक चिंता है। अभी अनुसंधान कार्य तीव्रता से चल रहे हैं। यह ज्ञात हुआ है कि पराबैंगनी विकिरण मनुष्य की रोग रोधी क्षमता को नष्ट करते हैं। मोतियाबिंद तथा चमड़ी का कैसर आदि रोगों में से दो तिहाई, जो मुख्यतः फली, मटर और गोभी (बंदगोभी) की विभिन्न जातियों से सम्बद्ध है इससे प्रभावित पायी जाती है। पराबैंगनी विकिरण के दुष्प्रभाव से इन पौधों में पत्ती के आकार का छोटा होना, बढ़वार के रुकने, बीज की गुणवत्ता घटने, खरपतवार रोग और काँटों के खतरों में वृद्धि सामने आए हैं। अंटार्कटिका के समुद्री जल में हुए एक वैज्ञानिक अध्ययन से पता चला है कि पराबैंगनी विकिरण की अधिकता शैवाल उत्पादन को 6 से 12 प्रतिशत तक कम कर देती है। साथ ही यह जलीय लार्वा और अन्य जीवों को भी क्षति पहुँचाती है।

ओजोन की समस्या तकनीकी के वेरोकटोक एवं गलत प्रयोग से खड़ी हुई है। तथापि इसका समाधान भी ऐसी नई तथा अपेक्षाकृत बेहतर तकनीक तथा उत्पादों में निहित है जो पृथ्वी के वातावरण को क्षति न पहुँचाए।

उपसंहार:-

संस्कृत साहित्य, जो भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिंब है, पर्यावरणीय विचारधारा का एक समृद्ध स्रोत भी रहा है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक, इस साहित्य ने प्रकृति के महत्त्व को न केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा, बल्कि इसे सामाजिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक स्तर पर भी निरूपित किया।

प्रकृति के संरक्षण को संस्कृत साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त है। वेदों में पृथ्वी को माता, जल को जीवन का स्रोत एवं वायु को प्राण का वाहक माना गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद जैसे प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने की अवधारणा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस ज्ञान परंपरा का प्रभाव रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी दृष्टिगोचर होता है, जहाँ प्राकृतिक उपादानों वन, नदियाँ, पर्वत को महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है।

संस्कृत साहित्य में वर्णित धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक विधियाँ यह दर्शाती हैं कि प्राचीन भारतीय जीवन-शैली पर्यावरणीय चेतना से ओत-प्रोत थी। वृक्षों की पूजा, यज्ञों द्वारा वायुमंडल की शुद्धि, जल स्रोतों को पवित्र रखने की परंपरा ये सभी प्रकृति को संरक्षित रखने के प्रयास थे। पुराणों में वृक्षारोपण, जल संरक्षण, और जीवों के प्रति करुणा को धर्म का आवश्यक अंग माना गया है।

आधुनिक युग में जब वायु प्रदूषण, जल संकट, वनों की कटाई, जैव-विविधता का ह्रास जैसी समस्याएँ गंभीर रूप ले रही हैं, तब संस्कृत साहित्य से प्राप्त ज्ञान और विचार हमें पर्यावरण संरक्षण

के लिए प्रेरित करते हैं। यह साहित्य न केवल सह-अस्तित्व और संतुलन का संदेश देता है, बल्कि हमें प्रकृति के प्रति हमारी जिम्मेदारी का बोध भी कराता है।

अतः संस्कृत साहित्य न केवल भाषाई समृद्धि का द्योतक है, बल्कि यह पर्यावरणीय चेतना का स्थायी स्रोत भी है, जो हमें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता हैयदि हम इस प्राचीन ज्ञान को आत्मसात करें और अपने व्यवहार में लाएँ, तो हम एक स्वस्थ, संतुलित एवं टिकाऊ पर्यावरण की दिशा में सकारात्मक कदम उठा सकते हैं। यही इसकी शाश्वत प्रासंगिकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. संस्कृत वाङ्मय कोश द्वितीय खण्ड (ग्रंथ) प्रकाशक भारतीय भाषा परिषद, शेक्सपीयर सरणी कलकत्ता- १९८८
2. हिन्दी काव्यमीमांसा, आचार्य राजशेखर, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, २०१७
3. संस्कृत काव्यशास्त्र एवं काव्याङ्ग, प्रीतिप्रभा गोयल, अरिहन्त प्रकाशन, जोधपुर,२०१९
4. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९९४
5. संस्कृत कवि-दर्शन, भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्या भवन, १९५५
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, चौखम्भा भारती अकादमी,२०१७
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोल, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी २०१७
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास (लौकिक खण्ड), प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर,२०१९
9. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी १९७२

10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, (प्रथम भाग) श्री रामविलास पोदार स्मारक ग्रन्थमाला समिति नवलगढ, १९३८
11. नाट्यशास्त्र का इतिहास, पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, १९९५
12. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, कृष्णदेव शर्मा, विनोब पुस्तक मन्दिर, आगरा, २०१५
13. संस्कृत वाङमय कोश प्रथम भाग, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता, १९८८
14. संस्कृत वाङमय कोश द्वितीय भाग, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता, १९८८
15. चतुर्वेदी, सीताराम, कालिदास–ग्रन्थावली, अलीगढ़: भारत प्रकाशन मन्दिर, सं. २०१९ विक्रमी, तृतीय संस्करण।
16. पण्डा, पी. के. कालिदास का साहित्य आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, दिल्ली: विद्यानिधि प्रकाशन, 2009.
17. भारद्वाज, शिवप्रसाद, कालिदास–दर्पण, होशियारपुर: विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, 1983.
18. संस्कृत वाङ्मये प्रश्नोत्तरविधि," शोधपत्र, 25 सितम्बर 2022.
19. महाकवि कालिदास की कृतियों में ऐतिहासिक महत्त्व" शोधपत्र, 27 सितम्बर 2023.
20. शास्त्री, सुरेन्द्रदेव, कालिदास और भवभूति: नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, मेरठ: साहित्य भण्डार, सुभाषबाजार, 1969, तृतीय संस्करण।
21. शास्त्री, राकेश, महाकवि कालिदास: वैज्ञानिक दृष्टि, दिल्ली: परिमल प्रकाशन, 2019.
22. शर्मा, शेषराज, कुमारसंभवम्, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1986.
23. मिश्र, राजदेव, मनुस्मृति, फैजाबाद: घनश्याम दास एण्ड सन्स, 1988.
24. शर्मा, शेषराज, मालतीमाधवम्, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़,
25. चतुर्वेदी, सुधांशु, मेघदूत, बरेली: स्टूडेंट्स स्टोर, बिहारीपुर, 1964.
26. देव, अन्नपूर्णा, रघुवंश परिशीलन, नई दिल्ली: आर्य बुक डिपो, 1982.

27. मिश्र, हरगोविन्द, रघुवंश महाकाव्यम्, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 1983.
28. झा, तारणीश, विक्रमोर्वशीयम्, इलाहाबाद: लाल बेनी–माधव प्रकाशन,
29. त्रिपाठी, बाबूराम, संस्कृत साहित्य का लोचनात्मक इतिहास, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 1973.
30. व्यास, भोलाशंकर, संस्कृत काव्यदर्शन, वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन,
31. Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa. Ed. A. B. Gajendragadkar. Delhi: New Bharatiya Book Corporation, 2004.
32. The Abhijñānaśākuntalam of Kālidāsa. Ed. M. R. Kale. 10th ed. Delhi: Motilal Banarsidass, 1969.
33. Works of Kālidāsa. Ed. C. R. Devadhar. Vol. I. Delhi: Motilal Banarsidass, 1966.
34. Banerjee, S. C. Aspects of Ancient Indian Life from Sanskrit Sources. Calcutta: Punthi Pustak, 1972.
35. Crowther, J. Oxford Advanced Learner's Dictionary. 5th ed. Oxford: Oxford University Press, n.d.
36. Ganguli, A., and M. Kumar. Different Perspectives of Environmental Ethics. Delhi: Shivalik Prakasan, 2008.
37. Gopal, R. Kālidāsa: His Art and Culture. Delhi: Concept Publishing Company, 1984.
38. Manikar, T. G. Kālidāsa: His Art and Thought. Poona: Deshmukh and Co., 1962.
39. Sarmah, D. An Interpretative Study of Kālidāsa. Calcutta: Samudran Publications, 1968.
40. Manusamhitā (Āryaśāstra) with Bengali Translation of Śrī Śrījivanyāyatīrtha. Kolkata: Śrī Śrītārāmdām Omkarnath Vaidik Mahāvidyalaya, 1371 BNG.

जैन दर्शन में पर्यावरण चिंतन की अवधारणा

सुनयना जैन

सारांश (Abstract):-

प्रस्तुत आलेख में पर्यावरण संरक्षण की अनिवार्यता एवं उसकी सांस्कृतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि पर व्यापक विमर्श किया गया है। लेख की शुरुआत मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध पंक्तियों से होती है, जो भारत की नैसर्गिक सौंदर्य और इसकी आध्यात्मिक महिमा को दर्शाती हैं। लेख में स्पष्ट किया गया है कि पर्यावरण न केवल बाह्य परिवेश है, बल्कि यह हमारे आंतरिक विचारों और भावनाओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

वेद, पुराण और जैन दर्शन के दृष्टांतों द्वारा यह बताया गया है कि भारतीय परंपरा में पर्यावरण की अवधारणा अत्यंत प्राचीन है। जैन धर्म में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतियों को जीवधारी माना गया है, इन्हे स्थावर जीव कहतें हैं और इनकी रक्षा को धर्म का अनिवार्य अंग बताया गया है। साथ ही पीपल जैसे वृक्षों के औषधीय और आध्यात्मिक महत्त्व को भी उजागर किया गया है।

लेख में वायु प्रदूषण के कारण जड़ी-बूटियों, मधुमक्खियों और परागकण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि वैश्विक स्तर पर सतत विकास लक्ष्यों (SDGS) के माध्यम से पर्यावरण बचाने के लिए नीतिगत प्रयास हो रहे हैं। नवीकरणीय ऊर्जा जैसे उपायों से न केवल पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है, बल्कि रोजगार के अवसर भी सृजित किए जा सकते हैं।

अंततः आलेख यह प्रतिपादित करता है कि बाह्य पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए आंतरिक चेतना और धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों का जागरण आवश्यक है। पर्यावरण के प्रति केवल एक

वैज्ञानिक या तकनीकी आवश्यकता नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य भी है।

कूटशब्द: पर्यावरण संरक्षण, नवीकरणीय ऊर्जा, अहिंसा और जैन दर्शन, प्राकृतिक संसाधन।

परिचय:

जब कभी भी पर्यावरण से जुड़ी कोई बात होती है तो अनायास ही हिंदी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्तियां स्मृतिपटल पर आ जाती हैं-

"भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।।"

गुप्त जी ने इन चारों पंक्तियों में भारतवर्ष की संपूर्ण नैसर्गिक सुंदरता जैसे पर्वत नदियों को तो दर्शाया ही है साथ ही प्रथम पंक्ति में लीला स्थल का उल्लेख कर उन महान महापुरुषों को भी याद किया जिन्होंने इस धरती पर जन्म लेकर इस धरती को पावन पवित्र कर दिया। आज जब पृथ्वी को प्रदूषण से निरंतर मलिन किया जा रहा हो तो क्या हमारा यह उत्तरदायित्व नहीं कि इसे हम संरक्षित करें।

किंतु इसे संरक्षित कैसे किया जाए? यह आज उन सभी लोगों के लिए चिंतन का विषय बना हुआ है जो प्रकृति से वास्तव में प्रेम करते हैं साथ ही पर्यावरण के प्रति सजग हैं।

हालांकि इस पर अनेक जागरूकता अभियान प्रारंभ हो चुके हैं। लोगों को अपनी धरती को बचाने के लिए कई माध्यमों से जागृत भी किया जा रहा है, जगह-जगह संगोष्ठियां एवं कार्यशालाएं चलाई जा रही है कई मुहिम भी चल रहें हैं और नित ही नए-नए आविष्कार भी हो रहे हैं।

पर्यावरण का तात्पर्य-

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है "हमारे आसपास का वह परिवेश जो हमें चारों ओर से घेरता है" अंग्रेजी में इसके लिए एक शब्द प्रयुक्त होता है 'Environment'। जब इस विषय को लेकर हमने लोगों से इस शब्द पर चर्चा की तो अनेक विचारधाराओं का सन्निपात हुआ कुछ लोगों ने इसे नैसर्गिक सुंदरता से जोड़ा वहीं कुछ ने बाह्य और आंतरिक पर्यावरण पर भी विचार प्रस्तुत किये। यथा बाह्य पर्यावरण जो हमारे चारों तरफ का परिवेश होता है जिसे हम अच्छादित रहते हैं। वही आंतरिक से तात्पर्य हमारे विचार, भावनाएं, संगति जिनसे बाह्य वस्तुएं प्रभावित होती हैं। वास्तव में यह बात भी कहीं ना कहीं उचित लगती है, जब हमारा मन और भावनाएं ही विकार ग्रस्त हैं तो ऐसा कैसे संभव है कि हमारे आसपास का परिवेश दूषित ना होगा। अतः पर्यावरण के संरक्षण के लिए बाह्य और आंतरिक दोनों परिवेश पर कार्य करने होंगे ।

वेदों पुराणों में पर्यावरण की अवधारणा-

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेदों उपनिषदों, ग्रंथों, पुराणों एवं साहित्यों का अपना एक उच्च स्थान है। हमारे ऋषियों मुनियों ने इस परंपरा को निर्बाध गति से पल्लवित और पोषित किया। पर्यावरण की परिकल्पना पृथ्वी, जल,वायु, अग्नि, वनस्पति से भी की जाती है। जिसमें पृथ्वी को धरती माता, जल को जीवन, वायु को प्राणवायु और वनस्पति यानी पेड़ पौधे प्राणियों के लिए संजीवनी बूटी का कार्य करते हैं तथा अग्नि वातावरण को विशुद्ध करने का कार्य करता है। वेदों पुराणों में इनको पांच तत्वों की उपमा दी गई है। भारत के सभी धर्मों का वनस्पतियों से गहरा संबंध है।

हमारे भारतवर्ष का प्राचीन नाम में से एक नाम 'जम्बूद्वीप' भी था। जम्बू का अर्थ 'जामुन' और द्वीप का अर्थ 'टापू या चारों ओर समुद्र से घिरा भूभाग' अतः वह स्थान जहां जामुन के वृक्ष अधिक मात्रा में

पाये जाते होंगें। जिस कारण इस देश का नाम 'जम्बूद्वीप' पड़ा। वर्तमान में भी पूजा, विधान, इष्ट कार्यों में पढ़ा जाता है-

जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे भारतवर्ष नामे।

हिंदू धर्म में यूं तो तमाम वृक्षों में से दश वृक्षों का अधिक महत्व है, जैसे- पीपल, बरगद या वटवृक्ष, आम, शमी, बिल्ब या बेल वृक्ष, अशोक, नारियल, अनार, नीम, केला। इनमें से तीन वृक्षों की अधिक मान्यता है तथा इनको कई पर्वों पर पूजा भी जाता है जो हैं- पीपल, बरगद और नीम।

पीपल वृक्ष- पीपल के वृक्षों को संस्कृत में 'प्लक्ष' भी कहा जाता है। वैदिक काल में इसे 'अश्वर्थ' इसलिए कहते थे क्योंकि इसकी छाया में घोड़े को बांधा जाता था। अथर्ववेद के उपवेद आयुर्वेद में पीपल के औषधीय गुणों का अनेक असाध्य रोगों में उपयोग वर्णित है। औषधिय गुण के कारण पीपल के वृक्ष में 'कल्पवृक्ष' की संज्ञा दी गई है। पीपल के वृक्ष में जड़ से लेकर पत्तियों तक 33 कोटि देवताओं का वास होता है। इसलिए पीपल का वृक्ष प्रातः पूजनीय माना गया है। पीपल के प्रत्येक तत्व जैसे छाल, पत्ते, फल, बीज, दूध, जटा एवं कोपल तथा लाख सभी प्रकार की आदि व्याधियों के निदान में काम में आते हैं। हिंदू धार्मिक ग्रंथो में पीपल को अमृत तुल्य माना गया है। सर्वाधिक आक्सीजन मिश्रित करने के कारण इसे प्राण वायु का भंडार भी कहा जाता है। सबसे अधिक ऑक्सीजन का सृजन और विषैली गैसों को आत्मसात करने की इसमें अकूत क्षमता है। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं-

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।9/26।।

मैं सभी वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ। इससे य़ह सिदध् होता है कि भारतीय लोगों को वृक्ष के प्रति कितना लगाव है। इसी

तरह आयुर्वेद या आयुर्विज्ञान का प्रादुर्भाव वृक्षों और वनस्पतियों से हुआ है।

पर्यावरण प्रदूषण का जड़ी बूटियों पर दुष्प्रभाव-

प्राचीन काल से जो जड़ी बूटियां जीवनदायनी शक्तियों की वाहक मानी जाती रही है, आज प्रदूषण के कारण उनके औषधि गुणों में कमी पाई जा रही है। एक अध्ययन में पाया गया है कि वायु प्रदूषण परागकणों को कम कर देता है क्योंकि यह फूलों की सुगंध को कम कर देता है, जिससे मधुमक्खियां की फूलों को खोजने की क्षमता प्रभावित होती है। यूके सेंटर फॉर इकोलॉजी एंड हाइड्रोलॉजी (यूकेसीईएच) और रीडिंग,सरे,बर्घिंगम और साउदर्न क्वींस लैंड विश्वविद्यालय के एक शोध दल ने पाया कि ओजोन फूलों की गंध के आकार और गंध को काफी हद तक बदल देता है। इसने मधुमक्खियां की कुछ मीटर की दूरी से गंध पहचान की क्षमता को 90% तक कम कर दिया है ।

श्वसन संबंधी समस्याओं को बढ़ाने वाला भू-स्तरीय ओजोन आमतौर पर तब बनता है जब वाहनों और औद्योगिक प्रक्रियाओं से निकलने वाला नाइट्रोजन ऑक्साइड सूर्य की प्रकाश की उपस्थिति में वनस्पतियों से निकलने वाले वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (वीओसी) के साथ प्रक्रिया करता है।

यूकेसीआईएच के वायुमंडलीय वैज्ञानिक डॉक्टर बेन लैंगफोर्ड ने इस अध्ययन का नेतृत्व किया। जिसे पर्यावरण प्रदूषण (Environmental pollution) पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। डॉक्टर लैंगफोर्ड कहते हैं- "हमारी लगभग 75% खाद्य फसले और लगभग 90% जंगली फूलदार पौधे कुछ सीमा तक पशु परागकण पर निर्भर करते हैं खास तौर पर कीटों द्वारा। इसलिए यह समझना जरूरी है कि परागकण पर क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और कैसे? ताकि हम उन महत्वपूर्ण सेवाओं को संरक्षित कर सके जिन पर भोजन, कपड़ा, जैव ईंधन और दवाइयों के उत्पादन के लिए निर्भर है।"

"Some 75% of our food crops and nearly 90% of wild flowering plants depend, to some extent, upon animal pollination, particularly by insects. Therefore, understanding what adversely affects pollination, and how, is essential to helping us preserve the critical services that we reply upon for production of food, textiles, biofuels and medicines, for example," says Dr. Langford.

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जितना अधिक हम वायुमंडल को प्रदूषित करते जाएंगे हम अपनी नैसर्गिक संपत्ति को उतना अधिक खोते जाएंगे।

जैन दर्शन में पर्यावरण चिंतन की अवधारणा; अहिंसावादी दृष्टिकोण को अपनाकर कैसे हम पर्यावरणीय घटकों का बचाव कर सकते हैं-

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म अहिंसावादी धर्म है। सूक्ष्मजीवों से लेकर विशालकाय प्राणियों को मन, वचन, काय के माध्यम से भी इस दर्शन के अनुयायी हानि पहुंचाने को उचित नहीं समझते। जैन धर्म के एक अति प्राचीन ग्रंथ जिसे प्रथम शताब्दी का प्रथम संस्कृत सूत्र ग्रंथ माना जाता है,उस सूत्र ग्रंथ में कहा है -

संसारिणस्त्रसस्थावर: !!2/12!!

अर्थात् संसारी जीव के दो भेद किए गए हैं- पहला त्रस और दूसरा स्थावर। दो से लेकर पांच इंद्रिय के जीव त्रस कहलाते हैं (पांच इंद्रियां- स्पर्शन,रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) दूसरी तरफ स्थावर अर्थात् जो एक इंद्रिय जीव होते हैं जैसे पृथ्वी, जल,अग्नि, वायु, वनस्पतिकायिक जीव स्थावर कहलाते हैं। जैनदर्शन इन स्थावर में भी जीव की उत्पत्ति मानते हैं।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय:स्थावर:।।(2/13)

पृथिवी+अप्+तेज:+वायु+वनस्पतय:+स्थावर

शब्दार्थ-पृथिवी-पृथिवीकायिक,अप्-जलकायिक,तेज-अग्निकायिक, वायु-वायुकायिक और वनस्पतय:-वनस्पतिकायिक,स्थावर-स्थावर जीव है !

अब यदि इन सभी पांच तत्त्वों को जैन दर्शन जीव मानता है तो फिर इसके अनुयायी जीव की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध होते हैं। वे इनको हानि पहुंचाने में हिंसा दोष मानते हैं अतः वह उनके बचाव के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। सिर्फ यह जीव ही नहीं अपितु मन से, वाणी से, चलने-फिरने में, किसी भी वस्तु के उठाने-रखने में, खाने-पीने में सदैव इस बात का ध्यान रखते हैं। जिससे किसी भी जीव की हिंसा या विराधना ना हो। उन्हें किसी भी तरह से कष्ट ना हो। सूत्र है-

वाङ्गमनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानिपंच।।7/4।।

वचन गुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति(चार हाथ आगे देखकर चलना), आदाननिक्षेपण(देखशोध कर वस्तुएं रखना उठाना) समिति और आलोकित पान भोजन (सूर्य के प्रकाश में भोजन करना) ये पाँच अहिंसा व्रत की भावनाएँ हैं।

इस प्रकार जैन दर्शन बाह्य पर्यावरण को संरक्षित संवर्धित करने के प्रति तो सजग है ही साथ ही अंतःकरण से भी भावनाओं को विशुद्ध रखने का सुझाव देता है।

इसके लिए एक और विचारधारा विश्वप्रसिद्ध है जिसे क्षमा पर्व के रूप में जाना जाता है-

उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।।9/6।।

1. उत्तमक्षमा 2. उत्तममार्दव (नम्रता) 3. उत्तम आर्जव (सरलता) 4. उत्तम सत्य 5. उत्तम शौच(पवित्रता) 6. उत्तम संयम 7. उत्तम तप, 8. उत्तम (त्याग), 9. उत्तम आकिंचन्य (निष्परिग्रहता), 10. उत्तम ब्रह्मचर्य, ये दश धर्म हैं।

इस प्रकार इन दस धर्मों के द्वारा संयमित जीवन व्यतीत कर अपने आसपास के वातावरण को सुधारा जा सकता है। अतः पर्यावरण के संतुलन में इन सभी विचारधाराओं का कहीं ना कहीं योगदान रहता है।

पर्यावरण के प्रति सजगता की आवश्यकता-

जैसा कि अभी तक हमने जाना की प्रकृति संपूर्ण जगत के चराचर के लिए कितनी उपयोगी है तथा इसको संरक्षित करना कितना आवश्यक है।

आगे पर्यावरण के प्रति सजग रहने से हमें क्या क्या लाभ है इन बिंदुओं पर हम चर्चा करेंगे-

1. प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा- वनों जलवायु मिट्टी और खनिज जैसे संसाधन सीमित है यदि हम बिना सोचे समझे इनका उपयोग करते रहे तो भविष्य में इनके भाव से जीवन संकट में पढ़ सकता है ।

2. मानव स्वास्थ्य की रक्षा- प्रदूषण वायु जल और भोजन अनेक बीमारियों का कारण बनते हैं यदि पर्यावरण को शुद्ध नहीं रखा गया तो गंभीर स्वास्थ्य समस्या उत्पन्न हो सकती हैं।

3. जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण- ग्लोबल वार्मिंग मौसम में संतुलन बाढ़ सूखा आदि समस्याएं पर्यावरण संतुलन का ही परिणाम है इन पर नियंत्रण के लिए सजकता आवश्यक है।

4. जीव जंतुओं की प्रजातियां का संरक्षण- जैव विविधता का संतुलन हमारे पास स्थित की तांत्रिक को सिस्टम को संतुलित कर बनता है यदि जीव जंतुओं की प्रजातियां समाप्त होती रही तो जीवन चक्र टूट जाएगा। पर्यावरण के संतुलन के लिए कई आवश्यक प्रजातियां विलुप्त हो जाएगी।

5. भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित जीवन- यदि आज हम पर्यावरण को नष्ट करेंगे तो आने वाली पीढ़ियों को इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा इसलिए इसका बचाव हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

वर्तमान में पर्यावरण बचाव के लिए हो रहे कार्यों का मूल्यांकन-

यद्यपि जनसंख्या दर वृद्धि के कारण उपभोग की क्षमता में काफी वृद्धि देखी जा रही है। प्रकृति का दोहन निरंतर चालू है। यद्दिप लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का शोषण होना लाज़मी है किंतु यदि उनके प्रति लोगों को जागरूक किया जाए तो बदलाव संभव है। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र (United Nations) ने सतत् विकास प्रक्रिया (SDG) के तहत वर्ष 2030 तक का एजेंडा निर्धारित किया जिसमें 193 देशों की भागीदारी रही। उसमें धरती को बचाने के लिए हर संभव प्रयास के लिए 17 लक्ष्यों निर्धारित किया गया। जिनका मुख्य उद्देश्य था "Peace and prosperity for people and planet" इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश अपनी अपनी जगह पर जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक कर रहे हैं। नित्य नए-नए आविष्कार भी हो रहे हैं।

जैसे 'नवीकरणीय ऊर्जा' (Renewable Energy) जिसे 'अक्षय ऊर्जा' भी कहा जाता है। यह प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा है। जिसे प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा लगातार पुनः पूर्ति होती है। सूर्य, हवा, पानी और पृथ्वी की उष्मा नवीकरणीय ऊर्जा के स्रोत हैं। नवीकरण ऊर्जा के कई प्रकार है, जैसे- उसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल विद्युत, भूतापीय ऊर्जा ,वायु बायोमास ऊर्जा। नवीकरणीय ऊर्जा के लाभ यह हैं कि इससे पर्यावरण तो सुरक्षित रहेगा ही साथ ही लोगों को रोजगार के अवसर भी प्राप्त होंगे। नवीकरणीय ऊर्जा का भविष्य उज्जवल है क्योंकि यह जलवायु परिवर्तन से निपटने और ऊर्जा के लिए विश्वसनीय और स्वच्छ स्रोत प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष:-

प्रकृति हमें कितना कुछ देती है और हम बदले में उसे क्या देते हैं? यह विचारणीय है।

उपर्युक्त आलेख से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि पर्यावरण न केवल मानव जीवन का आधार है, अपितु समस्त जीवमात्र की समग्र उन्नति एवं संतुलित अस्तित्व के लिए अनिवार्य तत्व है। भारत की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परंपरा में पर्यावरण को पूज्य एवं संरक्षित मानकर उसके प्रति अत्यंत संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया गया है। वैदिक साहित्य से लेकर जैन दर्शन तक, प्रत्येक विचारधारा में प्रकृति के विभिन्न घटकों- जैसे जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और वनस्पति को जीवनदायिनी एवं जीवधारी रूप में मान्यता दी गई है।

वर्तमान में पर्यावरणीय संकट का प्रमुख कारण मानव की भोगवादी प्रवृत्ति, तकनीकी दुरुपयोग, और प्रकृति के प्रति संवेदनहीन दृष्टिकोण है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है, बल्कि जैव विविधता, पारिस्थितिकी संतुलन एवं मानवीय स्वास्थ्य पर भी गंभीर संकट मंडरा रहे हैं। विशेषतः वायु प्रदूषण द्वारा परागकण तंत्र पर प्रभाव, औषधीय वनस्पतियों की गुणवत्ता में गिरावट और वैश्विक तापमान में वृद्धि जैसे वैज्ञानिक अध्ययन इस संकट की गंभीरता को प्रमाणित करते हैं।

जैन दर्शन की अहिंसात्मक जीवनशैली, जिसमें स्थावर जीवों तक की रक्षा का संकल्प निहित है आज के पर्यावरणीय सन्दर्भ में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। यह न केवल बाह्य पर्यावरण को संरक्षित करने की प्रेरणा देता है, बल्कि आंतरिक पर्यावरण- यानी विचारों, भावनाओं और जीवनशैली की भी शुद्धता पर बल देता है। इसके साथ ही, वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्थापित सतत विकास लक्ष्यों (SDGS) के माध्यम से यह प्रयास किया जा रहा है कि विज्ञान और तकनीक के सहयोग से नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देकर पर्यावरणीय क्षरण को रोका जा सके। पर्यावरण का संरक्षण

हमारा नैतिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्व ही नहीं हमारी जिम्मेदारी भी है कहा भी है-

पर्यावरणमारक्ष्यं सर्वैरपि प्रयत्नतः।
कल्याणाय जनैर्लोके प्राणीनां देहधारीणाम्।।

References:

1. श्रीमद्भगवद्गीता संपादक एवं टीका स्वामी अपूर्वानंद अनुवादक श्री गोपालचंद्र चक्रवर्ती 'वेदांतशास्त्री' प्रकाशक रामकृष्ण मठ नागपुर।
2. Environmental pollution, volume 336, 1 Nov 2023, research topic-Mapping the effects of ozone pollution and mixing on floral odour plumes and their impact on plant-pollinator interactions.
3. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, सम्पादक एवं अनुवादक पं. फूलचंद्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली, 1997 ई.।
4. तत्त्वार्थसूत्र-मोक्षशास्त्र आचार्य उमास्वामी विरचित टीकाकर बाल ब्र. प्रद्युम्न कुमार, प्रकाशक-गजेंद्र पब्लिकेशन।
5. अन्य पत्र पत्रिकाएं

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चिन्तन-
एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक
कॉटन विश्वविद्यालय, असम

शोधसार:-

समस्त ब्रह्माण्ड में चारों तरफ से आच्छादित करने वाला तत्व पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण का पारम्परिक नाम प्रकृति है। संस्कृत साहित्य में पर्यावरण प्रकृति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। पर्यावरण चिन्तन यह एक ऐसा विषय या मुद्दा है जिसके न रहने से मानव जीवन का अस्तित्व स्वयं समाप्त या खत्म हो जाएगा। अत: अपने जीवन को बचाए रखने के लिए मानव को पर्यावरण के प्रति जागरूक होना ही पडेगा। प्रस्तुत शोधपत्र में रामायण में पर्यावरण चिन्तन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द: महर्षि वाल्मीकि, रामायण, पर्यावरण, संरक्षण, चिन्तन, वृक्षारोपण।

पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति ,अर्थ एवं परिभाषा:-

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत वृ धातु में परि तथा आ उपसर्ग एवं ल्युट प्रत्यय जोडने से बना है, अर्थात् परि+ आ +वृ +ल्यूट् = पर्यावरण। परि का अर्थ है- 'चारो ओर' तथा आवरण का अर्थ है 'ढका हुआ होना'।

अंग्रेजी शब्द Environment का अर्थ भी पर्यावरण , वातावरण व परिस्थिति है। कुछ वैज्ञानिकों ने Environment शब्द के स्थान पर Habitat शब्द या Milieu शब्द का प्रयोग वातावरण के लिए किया जिसका अभिप्राय भी समस्त परिस्थिति या परिवृत्त से है।

पर्यावरण का शब्दकोशीय अर्थ होता है आस-पास या आस-पड़ोस (Surrounding)। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ अंग्रेजी भाषा के

Ecology (पर्यावरण) की Etymology अर्थात् व्युत्पत्ति (वाङ्मय, मूल प्रयोग आदि) पर दृष्टि डालें तो अंग्रेजी भाषा में ये शब्द ग्रीक भाषा के शब्द Oikos ology से आया है, जिसका अर्थ है Oiko's अर्थात् निवास स्थान अर्थात् निरीक्षण- अध्ययन, अनुसंधान कर उसके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करना। अत: पूरे शब्द जो Ecology के विश्वप्रसिद्ध का मूल है, अर्थ है अपने निवास स्थान का अध्ययन, जहाँ पर हम रहते हैं, ये मौलिक अर्थ है ग्रीक शब्द का जहाँ से अंग्रेजी भाषा का शब्द Ecology आया है।

प्रस्तावना:-

रामायण महर्षि वाल्मीकि की उत्कृष्टतम रचना ही नहीं, विश्वसाहित्य का आदिग्रन्थ है। रामायण भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो न केवल धार्मिक और नैतिक शिक्षा प्रदान करता है, बल्कि प्रकृति और पर्यावरण के महत्त्व को भी उजागर करता है। पर्यावरण ही महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण का आधार है, रामायण की उत्पत्ति पक्षी-हिंसा से उत्पन्न करुणा के माध्यम से हुई। काममोहित क्रौञ्च युगल में से व्याध द्वारा क्रौञ्च को बाण से बीध दिये जाने पर क्रौञ्ची क्रन्दन करने लगी। क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन जब वाल्मीकि के काणों में पडा तो प्रकृति के जीव के प्रति कोमल दृष्टि एवं संवेदनशीलता रखने वाले वाल्मीकि के मन में करुणा व्याप्त हो गयी और उनके मुख से अकस्मात् श्लोक निकला-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती समा:।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।।

(रामायण-1-2-15)

वाल्मीकि ने अपने श्रेष्ठ कृति रामायण में स्पष्ट रूप से लिखा है कि- बिना प्राकृतिक संतुलन के कुछ भी संरक्षित नही रह सकता क्योंकि इस संपूर्ण जगत के अस्तित्व का आधार प्रकृति है।

वन पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना पूरी प्रकृति का अस्तित्व खतरे में है। हमारी आदि संस्कृति भी अरण्य-

संस्कृति ही है और आदिकाव्य का अधिकांश भाग आरण्यक घटनाओं पर ही आधारित है। रामायण में जिन वनों की चर्चा हुई है, उनमें मलद, करूष एवं ताटक का प्रथमोल्लेख हुआ है। क्रौञ्चारण्य, पंपा, अशोक-वाटिका या वनिका एवं समुद्र के किनारे का वन भी अतिमहत्वपूर्ण है। रामायण में वर्णित वनों का प्राकृतिक सौंदर्य आज भी हमें पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रेरित करता है। वन न केवल विभिन्न जीव-जन्तुओं के आवासस्थल होते हैं, बल्कि वे पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनों के माध्यम से जलवायु नियंत्रण, मिट्टी का संरक्षण और जल स्रोतों का संरक्षण होता है। वृक्षों का औंषधीय और व्यवहारिक महत्व रामायण में विभिन्न वृक्षों और पौधों का औषधीय महत्व भी उल्लेखित है।

वनों से हमें अनेक प्रकार की जडी-बुटियाँ भी मिलती हैं, जिनका प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है। रामायण में दिव्यौषधि विशल्यकरणी शरीर में धँसे हुए बाण आदि को निकालकर घाव भरने और पीडा दूर करने में प्रयुक्त थी। मूर्छा दूर कर चेतना प्रदान करने के लिए सावर्ण्यकरणी और टूटी हुई हड्डियों को जोडने के लिए संधानी नामक दिव्यौषधि का भी प्रयोग होता था। रामायण में रामवनगमन से पूर्व कौशल्या ने विशल्यकरणी नामक ओषधि को भगवान श्रीराम के हाथ में मंत्रोच्चारण-पूर्वक बाँधी थी।1

रामायण में हनुमानजी ने लक्ष्मणजी की जान बचाने के लिए संजीवनी बूटी लाने के लिए पूरा पर्वत ही उठा लिया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि वृक्षों और पोधों का जीवन रक्षक महत्त्व भी है। अयोध्या से लेकर पंचवटी और लंका तक, हर स्थान पर वृक्षों का विशेष महत्व था। अशोक वाटिका लंका में स्थित वह स्थान है जहां रावण ने सीता को बंदी बना कर रखा था। वाल्मीकि रामायण में अशोक वाटिका का वर्णन इस प्रकार है-

ततो वै मृदितै पुष्पैश्च विविधान्स्तथा।
विभ्राजितमशोकं तं सीता स्नात्वा तदा शुभा।।

इस श्लोक में बताया गया है कि अशोक वाटिका में विभिन्न प्रकार के फूलों और पत्रों से सुशोभित अशोक वृक्ष थे। अशोक वृक्ष न केवल इस वाटिका का सौंदर्य बढा रहे थे, बल्कि सीता को मानसिक शांति भी प्रदान कर रहे थे।

मलद और करूष के वन भगवान् इन्द्र के अंगजनित मल को धारण करने के कारण आख्यायित हुए हैं। ये वन अत्यन्त अद्भुत् और दुर्गम हैं। भयंकर शब्द करने वाले पशु-पक्षियों से भरे इस वन में सिंह, व्याघ्र, सूअर, हाथी और नाना प्रकार के पक्षिगण निवास करते हैं। धव, अश्वकर्ण, ककुभ, बेल, तिंदुक, पाटल तथा बेर के वृक्षों से युक्त यह वन भयंकर लगता है2 ताटक का वन भी दोनों वनों के आसपास ही है। इसका नामकरण ताटका नामक यक्षिणी, जो मारीच नामक राक्षस की माँ थी, के नाम पर हुआ है।3 रामायणकालीन वृक्ष सदा मधुर फलों तथा पुष्पों से युक्त रहते थे।

आदिकवि के काल में वृक्ष तपोबल- युक्त ऋषि-मुनियों से भी प्रभावित होते थे। मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज के आश्रम में भरत के पहुंचने पर उनके तेजबल से प्रभावित बेल के वृक्ष मृदंग बजाने लगे थे, बहेडे शम्या नामक ताल दे रहे थे और पीपल के वृक्ष वहाँ नृत्य करते थे। तंदतर देवदारु, ताल, तिलक और तमाल नामक वृक्ष कुवडे और बौने बनकर हर्ष के साथ भरत की सेवा में उपस्थित हुए थे।1 यही नहीं शिशंपा, आमलकी और जंबू आदि स्त्रीलिंग वृक्ष तथा मालती, मल्लिका और जाति आदि वन की लताएं नारी का रूप धारण करके मुनि के आश्रम में बसी थीं।4

जल पर्यावरण का प्रमुख घटक है। जल संपूर्ण जीव-जगत का आधार है। हमारे शरीर का 60-65 प्रतिशत भाग जल से बना हुआ है। जल वायु के समान प्राण -तत्त्व है। संहिता-शास्त्र में कहा गया है- आपो वै प्राणा:।5 लोक में जल को आदि सृष्टि कहा गया है। सृष्टिकर्ता

परमात्मा ने सृष्टि के क्रम में ऋत और सत्य आदि बनाने के बाद जलमय समुद्र को बनाया है। इस बारे में वैदिक साहित्य कहता है-

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसो अध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत तत समुद्रो अर्णव।।6।।

जल का प्रयोग पेय पदार्थ के रूप में अनादि-काल से होता आ रहा है। आदिकाव्य में शुद्ध पेय जल-हेतु नाना पुष्पों से आच्छादित दीर्घीकाओं, वापियों, पुष्करणियों, सरोवरों तथा रम्य कूपों के नामोल्लेख हुए हैं-

दीर्घिका पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृता।7

आदिकवि के काल में जल मीठा ही नहीं, बल्कि किसी भी स्रोत से प्राप्त या निकला हुआ क्यों न हो, उसकी स्वच्छता और पवित्रता में कोई संदेह ही नहीं था। अयोध्या का जल इतना मीठा था कि जैसे लगता हो कि वह ईख का रस हो।8 राक्षसराज रावण की नगरी लंका भी विविध प्रकार की बावडियों और नाना प्रकार के जलाशयों से घिरी हुई थी।

कृषि कार्य में जल का उपयोग आदिकाल से होता आया है। आदिकवि के काल में कृषि-कर्म समयानुकूल वृष्टि पर निर्भर था, वाल्मीकि ने लिखा है-

काले वर्षति पर्जन्य: पातयन्नमृतंपय:।9

कामवर्षी च पर्जन्य: सुखस्पर्शश्च मारूत:।।10

दुनिया की सभी प्राचीन सभ्यताओं का विकाश प्राय: नदियों के तट पर हुआ था, गंगा हमारे देश में प्राचीनकाल से पूज्य रही है। अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि यह बताते है कि उस समय गंगा का जल इतना पवित्र एवं शुद्ध था कि देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उन शिवरूपा भगीरथी का शोभा बढाते है। नागो और गन्धर्वो की पत्नियां उनके जल सदा सेवन करती है। गंगा के दोनों तटों पर देवताओं के सैकडो पर्वतीय क्रीडास्थल है। उनके किनारे देवताओं के बहुत से उद्दान भी है। गंगा नदी की सुंदरता वर्णन करते हुए

वाल्मीकि कहते है कि हंसो और सारसों के कलरव वहां गूजते रहते है, चकवे उस देवनदी की शोभा बढाते हैं। सदा मदमत्त रहने वाले विहंगम उनके जल पर मंदराते रहते है। वे उत्तम शोभा से सम्पन्न है, किन्तु आज गंगा का जल जीव जन्तुओं के लिये भी उपयोगी नहीं रह गया है।

रामायण काल में अतिथि– सत्कार क्रम में भी जल की महत्ता कम न थी। जब लक्ष्मण और सीता के साथ राम दण्डकारण्य वन प्रदेश में प्रवेश करते हैं तो वहा समुपस्थित तेजस्वी ऋषिगण उन्हे कंद, मूल और फल के साथ पीने के लिए जल भी देते हैं-

ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमा।
आजह्नुस्ते महाभागा सलिलं धर्मचारिण ।।
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युता ।
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मन।।
एवमुक्त्वा फलैर्मूलै पुष्पैरन्यैश्च राघवम्।
वन्यैश्च विविधाहारै सलक्ष्मणमपूदयन्।।11

भरत जब राम को मिलने के लिए चित्रकूट पँहुचते है तव भरद्वाज ऋषि आतिथ्य सत्कार के लिए अनेक नदियों के आवाहन द्वारा किया।12 रामायण में वर्णन है कि अभिषेक आदि कार्यो में मानव ही नही मानवेतर प्राणी भी जल का उपयोग करते थे। सुग्रीव और अंगद के अभिषेक के लिए श्रेष्ठ वानरों ने नदियों, नदों और सभी दिशाओं के विविध तीर्थो और समस्त समुद्रों से लाए हुए निर्मल जल युक्त स्वर्ण कलश रखा था।13

यज्ञादि कर्मो के लिए भी जल का प्रयोग होता था। आदिकाल में यज्ञ-स्थली का मूलत नदी-तट पर होना यह सिद्ध करता है कि यज्ञ में जल की आवश्यकता होती थी और इसके लिए। ऋषिगण नदियों का आवाहन करते थे।14

सांध्यतर्पणादि दैनिक कर्मों भी जल का उपयोग अनादि काल से होता आया है, रामायण के बालकाण्ड में वाल्मीकि ने अपने शिष्य भरद्वाज को जल-युक्त कलश रखने के लिए तथा पवित्र तमसा तीर्थ में स्नान करने के लिए कहा था।15

रमायण में जल का उपयोग सुरक्षा-विषयक घेरों के रूप में भी किया जाता था। नगरों की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर लंबी एवं गहरी जल-युक्त खाइयाँ खोदी जाती थीं, जिसे लाँघना अत्यन्त कठिन होता था। लंका भी जलपूर्ण परिखाओं (खाइयों) से युक्त थी। लंका पर आक्रमण के पूर्व वानरों ने पर्वत के अग्रभागों, घास-फूस तथा वन्य काष्ठों से उसे भर दिया था।16

रामायण में अहिंसा एवं पशु-पक्षी-संरक्षण के प्रति भी उत्तम धारणा उपलब्ध होती है। सुतीक्ष्ण मुनि राम को अपने आश्रम के विषय में बता रहे हैं कि मृगों के आगमन के सिवाय यहां और कोई उपद्रव नहीं होता। यह वचन सुनकर राम उन मृगयूथों को मारने के लिए कहते हैं। जसके फलस्वरूप उनका उस आश्रम में अधिक दिन रहना कठिन होगा। राम के इन वचनों को सुनकर सीता निरपराधों के वध से लोक में निन्दा की बात करती हैं। जितेन्द्रिय पुरुषों का कर्त्तव्य माना जाता है कि वे वन में रहने वाले दु:खी प्राणीयों की रक्षा करें।

रामायण में इस प्रकार के अनेकों वर्णन आए हैं जिनमें प्रकृति-प्रेम लक्षित होता है। कोई भी कार्य मर्यादा के अनुसार करने की धारणा उपलब्ध होती है, जिससे देश-धर्म और तपोवन-धर्म में बाधा न आए। उस समय प्रकृति के अनुकूल कार्य करने की धारणा मिलती थी।

भारतीय मनीषीगण आदिकाल से ही पर्यावरण की शुद्धता पर ध्यान रखते आए हैं। यदि उनके सामने कोई हिंसक प्रवृति का व्यक्ति आ जाता या कोई एसी घटना, जो प्रकृति के आचरण के विरुद्ध हो अथवा जिससे पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा हो, देखते

ही वे इस अपराध के आरोप में संबंधित व्यक्ति को तत्क्षणात् शाप दे देते थे। महर्षि वाल्मीकि ने भी निषाद के बाण से बिद्ध होकर गिरे नर क्रौञ्च की मृत्यु को देखकर पति से वियुक्त क्रौञ्ची की करुणाजनक चीत्कार को सुनकर ही निषाद को संसार में अधिक दिनों तक प्रतिष्ठित नहीं रहने के लिए शाप दिया था।

निष्कर्ष:-

रामायण में पर्यावरण का जो चित्रण किया गया वह प्रकृति की मनोरम दृश्य को उजागर करता है। प्रकृति की दिव्यता एवं भव्यता का एसा सौंदर्य वर्णन हमें केवल वाल्मीकि रामायण में ही देखने को मिलता है। इसमें पर्यावरण की स्वच्छता एवं सुंदरता का वर्णन किया गया है। रामायण में प्रकृति का जो चित्रांकन किया गया है वह महर्षि वाल्मीकि को एक प्रखर वनस्पतिशास्त्री के साथ -साथ एक प्राणीशास्त्री भी बनाते हैं।

भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रकृति के न्याय को वैदिक काल से ही सम्मान दिया जाता रहा है। हमारे ऋषिगण जंगलों में सिर्फ तपस्या ही नहीं करते थे, बल्कि पर्यावरण संतुलन का भी ध्यान रखते थे। वैदिक मंत्रोच्चार- द्वारा नदियों का आवाहन, सृस्टि आदि के लिए देवताओं की प्रार्थना, हवनादि कर्मों के द्वारा वायु की स्वच्छता को बनाए रखना इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

वर्तमान समाज में भी पर्यावरण संरक्षण के अनेकों उपाय किए जा रहे हैं, लेकिन जरूरत है समाज में रहने वाले हम सभी अपने पर्यावरण को सुरक्षित एवं संरक्षण के लिए एक प्रण ले कि इसकी रक्षा करेंगे, क्योंकि वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि में उपाय है, परन्तु उन उपायों पर अमल करके ही हम अपने पर्यावरण और स्वयं को बचा सकेंगे।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1.रामायण- 2/25/38

2.रामायम- 1/24/14-15

3. रामायण- 1/24/25-27
4. रामायण- 2/91/51-52
5. शत.ब्रा.- 3/8/24
6. ऋग्वेद- 10/190/1
7. रामायण- 3/55/1
8. रामायण- 1/5/7
9. रामायण- 7/41/20
10. रामायण- 6/128/1
11. रामायण- 3/1/16-17,22
12. रामायण- 2/91/14-15
13. रामायण- 4/26/32-33
14. रामायण- 1/14/1, 7/91/15
15. रामायण-1/2/6
16. रामायण- 6/42/16

अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक पर्यावरणीय अध्ययन

सर्वजीत रावत
शोधार्थी, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पर्यावरणमाराक्ष्यं सर्वेरपि प्रयत्नतः।
कल्याणाय जनैर्लोके प्राणिनां देहधारिणाम्।।
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।।

अथर्ववेद- 1/1/2

हे वाणी के स्वामी! दिव्य मन सहित सन्मुख आओ। हे वसुओं के स्वामी! आनन्दित करो। पढ़ा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे।

सारांश-

यह शोधपत्र मैं महाकवि कालिदास प्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् को केन्द्र बिन्दु में रखकर संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन के उप-विषय 'अभिज्ञान शाकुंतलम् एक पर्यावरणीय अध्ययन' के रूप में वर्णित करता हूँ। जहाँ महाकवि कालिदास ने अपनी प्रत्येक कृतियों में प्रकृति चिंतन और पर्यावरण को संरक्षण व मानव कल्याण से सम्बंधित तथ्यों को दर्शाया है वहीं सभी रचनाओं में हम सबके लिए अत्यन्त उपयोगी बातों को लिखा है कि हमें प्रकृति से कैसे व्यवहार करना चाहिए जो सिर्फ हमारे लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी हो। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रंथों में जैसे–

1. ऋतुसंहार
2. मेघदूतम
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
4. कुमारसम्भवम्

5. रघुवंशम्
6. विक्रमोर्वशीयम्

आदि ग्रंथों में कवि ने पर्यावरण को बहुलता से उद्धृत किया है, इसलिए महाकवि कालिदास जी के लिए कहा गया है-

पुरा कवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव॥

प्राचीन काल में कवियों की गणना के प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण कालिदास का नाम कनिष्ठिका पर आया, किन्तु आज तक उनके समकक्ष कवि के अभाव के कारण, अनामिका पर किसी का नाम न आ सका और इस प्रकार अनामिका का नाम सार्थक हुआ। कालिदास कवि-कुल-गुरु माने जाते हैं। उन्होंने अपने विषय में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु उनकी रचनायें ही उनका सम्यक् एवं सटीक परिचय देती हैं। परम्परानुसार कालिदास उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक थे।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक पर्यावरणीय अध्ययन- "काव्येषु नाटकं रम्यं" का अर्थ है "काव्यों में नाटक सबसे सुंदर होता है।" यह संस्कृत साहित्य में एक प्रसिद्ध और व्यापक रूप से स्वीकार किया गया कथन है, जो नाटकों की सुंदरता और महत्त्व को दर्शाता है। वहीं अभिज्ञानशाकुन्तलम् में काव्य की शोभा और पर्यावरण आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है -

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽकस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

लौकिक संस्कृत साहित्य के लगभग सभी ग्रन्थों में पर्यावरण संरक्षण का श्लाघनीय पक्षों का वर्णन मिलता है। निःसंदेह पर्यावरण संरक्षण का यह पक्ष विश्व के लिए मील का पत्थर है, क्योंकि पर्यावरण प्रदूषण के उपायों व इसके महत्त्वपूर्ण घटकों का संस्कृत के प्राचीन एवं अर्वाचीन काव्यों में दर्शाया गया है।

महाकवि कालिदास कृत "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" संस्कृत साहित्य की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है, जिसमें कवि ने अपनी प्रतिभा को विकसित किया है। अभिज्ञान में प्रकृति का उपयोग पृष्ठ भूमि के रूप में नहीं, अपितु नाटक के अनिवार्य अंक के रूप में किया गया है। महाकवि ने व्यवहारिक धरातल पर उतर कर जिन मानव मूल्यों को प्रस्तुत किया है, वे अत्यन्त ही प्रशांसनीय हैं। महाकवि प्रकृति के सूक्ष्म दृष्टा हैं। उनके नाटकों में प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन अपने आप मे अद्वितीय है। सम्भवतः संसार में कोई ऐसा विरला व्यक्ति होगा जिसने सजीव प्रकृति का इतना पूर्ण एवं सूक्ष्म अध्ययन किया हो। नाटक के प्रारम्भ में महाकवि ने प्रकृति के जो घनिष्ठ प्रेम प्रस्तुत किया है। वह पर्यावरण संरक्षण की कल्पना को मूर्त रूप प्रदान करता है। नान्दी में अपने इष्ट देव भगवान शिव की दिव्य अष्टमूर्तियों का साक्षात्कार प्रकृति के भीतर करते हुए कवि ने जनमंगल की कामना की है। उन्होने भगवान शिव के प्रकृतिमय रूपों की ही वंदना की है।

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तःश्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

महाकवि कुलगुरु कालिदास के काव्यों में वृक्षों एवं पर्यावरण संरक्षण के अकाट्य असंख्य प्रमाण दिखाई पड़ते हैं। कालिदास के काव्यों में पद-पद पर हिमाचल से लेकर रत्नाकर और उसके मध्यवर्ती आर्यावर्त्त का ही नहीं अपितु समूचे भारतवर्ष और जम्बूद्वीप की संस्कृति धरोहर का स्तुतिगान मुखरित हुआ है। इसकी निरुपम सौन्दर्यमयी प्रकृति के अनुरूप अतुल रूप वैभव की रागिनी उनके छन्दों का सरगम बनी है। हमारे प्राचीन एवं अर्वाचीन वाङमय में पर्यावरण की सुरक्षा के लिए बहुत कुछ परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में कहा गया है।

वृक्षादि लगाने को धर्म, उनके पूजनादि को धर्म तथा वृक्षों को काटने को पाप माना है। इसी तरह यज्ञ करना, तालाब कुएँ, बावड़ी बनाना व बाग लगाना आदि को पुण्य कार्य स्वीकार किया गया है। अतः पर्यावरण सुरक्षा के प्रसंग संस्कृत साहित्य में वृक्ष लगाने एवं सींचने आदि के वर्णन के रूप में लाये गये हैं। नदी, नद, सरोवर समुद्र वर्णन, ऋतुवर्णन एवं सौन्दर्य वर्णन में प्राकृतिक उपमान खोजने के साथ-साथ नैसर्गिक चित्रण को महत्ता दी गई। प्राणिमात्र पर दया, पशु-पक्षियों से स्नेह, वृक्षलता और पुष्पादि से आत्मीय भाव से हम प्रकृति के साथ सामंजस्य बढ़ाते हैं। यही तो पर्यावरण संरक्षण है। पर्यावरण सुरक्षा की वचनबद्धता है। यज्ञधूम से वातावरण की परिशुद्धता एवं अन्तश्चेतना की विशुद्धि सहज स्वभाविक है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्:।।

यह श्लोक शकुन्तला के स्वभाव और उसके वृक्षों के प्रति प्रेम को दर्शाता है। वह हमेशा दूसरों को पहले देती है, आभूषणों से प्रेम करने के बावजूद पेड़-पौधों को नुकसान नहीं पहुँचाती और उनके पहले फूलों के समय उत्सव मनाती है। इस श्लोक के माध्यम से कालिदास ने बताया है कि शकुन्तला अब पति के घर जा रही है और वृक्षों से उसे अनुमति देने का अनुरोध करता है।

सर्वप्रथम हम कालिदास कृत 'ऋतुसंहार' पर ही पर्यावरण संरक्षण का विष्लेषण व अनुशीलन करते हैं। संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र ऋतु वर्णन द्वारा पर्यावरण-सौष्ठव का वर्णन इस रचना में विशेष रूप से परिगणनीय है। इस रचना के माध्यम से कविकुलकमलदिवाकर कालिदास ने ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त,

शिशिर व वसन्त नामक छः ऋतुओं का क्रमशः वर्णन किया है। ऋतुसंहार का अर्थ है- ऋतुओं का समूह।

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः क्वचित् प्रभिन्नाञ्जनराशिसन्निभैः।
क्वचित् सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितम् व्योम घनैः समन्ततः॥

कालिदास की लेखनी में अद्भुत क्षमता है। वे प्रकृति-चित्रण करें या भाव-चित्रण , उनके वर्णन में एक चित्रकार की दृष्टि और एक नर्तक की भँगिमायें होती हैं। शब्दों को पढने मात्र से, दृश्य दिखाई देने लगते हैं। उनके शब्द चित्र सुन्दर भी हैं और सजीव भी। भारत की महिमा-मण्डित संस्कृति को, कालिदास ने न केवल आत्मसात किया, अपितु उसे समृध्द और सार्वभौम बना दिया। कालिदास एक महान कवि हैं। वे भारतीय- संस्कृति के उन्नायक हैं।

मेघदूत- यह 129 श्लोकों में रचित एक गीतिकाव्य है। इस काव्य में एक यक्ष, मेघ को सन्देश- वाहक बनाकर अपनी प्रेयसी के लिए सन्देश भेजता है। 'मेघदूत' प्रेम काव्य है और इससे प्रेरित होकर अनेक रचनायें लिखी गई हैं, किन्तु मेघदूत का अपना अलग महत्त्व है। पावस प्रकृति एवं प्रेम का अनूठा चित्रण मेघदूत में उपलब्ध है। कालिदास, प्रेम के अमर गायक हैं। यक्ष अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए मेघ से कहते हैं-

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

विधाता की प्रथम स्त्री- सृष्टि के समान तन्वी, श्यामा, भुट्टे के समान दाँतों वाली, पके कुँदरू के समान लाल होंठ और अधर वाली, क्षीण कटि वाली, सहमी हुई हरिणी के समान नयन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार से मन्द-मन्द चलने वाली और स्तनों के

भार से कुछ झुकी हुई, वह वहाँ होगी।" वास्तव में महाकवि ने पर्यावरण और प्रकृति का सुन्दर उपमा पूर्ण समन्वय किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पर्यावरण का सुन्दर समन्वय किया गया है जहाँ एक ओर शकुन्तला अपने पति के गृह जा रही वहीं दूसरी ओर वन के पशु-पक्षी और पेड़-पौधे, हिरण शावक, जल, नदी, तालाब, कमल पुष्प आदि अपनी-अपनी भावनाओं को प्रकट करते हुए अपने आपको दुखी महसूस करते हैं किन्तु शकुन्तला को पति गृह जाने की अनुमति के साथ उसके सजने सँवरने के लिए अनेक द्रव्य और वस्त्राभूषण प्रदान करते हैं।

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्॥

इस शकुन्तला को वनवास के बन्धु (साथी) वृक्षो द्वारा (पतिगृह) जाने के लिये आनुमति मिल गयी है। क्योंकि मनोहर कोयल के शब्द (कूक) को इन (वृक्षो) के द्वारा इसप्रकार प्रत्युत्तर बनाया गया है। अर्थात् इन वृक्षों ने कोयल की कूक द्वारा शकुन्तला को पतिगृह जाने के लिये प्रकारान्तर से अनुमति दे दी है।

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाडुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः॥

कोई वन देवता कह रहा था कि शकुन्तला का पतिगृह गमन का मार्ग जो की कमलिनियों से हरित सरोवरों से मनोहर मध्य भाग वाला है तथा जिसमें छाया प्रधान वृक्षों के द्वारा सूर्य के किरणों का ताप रोंक दिया गया है, कमल पराग के समान कोमल धूलि वाला तथा मंद एवं सुखद वायु वाला एवं कल्याणकारी बनें अर्थात् उसका मार्ग, कमल विकसित सरोवरों से मनोहर एवं मार्ग के दोनों ओर खड़े छाया प्रधान वट आदि वृक्षों द्वारा सूर्यताप से रहित हो। उसके मार्ग की धूलि कमल पराग के समान कोमल हो और जिसमें मंद एवं सुखद वायु बह रही हो, इस प्रकार उसका मार्ग मंगलमय हो।

उगलित दर्भ कवला मृग्या परित्यक्त नर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूरणीव लताः।।

शकुंतला की विदाई के समय प्रियंवदा कहती है कि तपोवन के हर प्राणी, क्या मनुष्य, क्या तपोवन के पशु-पक्षी, सभी का हृदय इस विदाई से पीड़ित है। हिरणों ने भी कुश के ग्रास उगल दिए हैं और मोरों ने नाचना छोड़ दिया है तथा लताएं पीले पत्तों को गिराकर मानो अपने आंसू बहा रही हों।

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः॥

शकुन्तला को वनज्योत्स्ना से स्नेहालिंगन करते देखकर काश्यप मुनि कहते हैं कि मैंने तो तुम्हारे विवाह के लिए पहले ही जिस पुरुष का संकल्प किया था, उस अपने अनुरूप पति को तुम अपने पुण्यों से ही प्राप्त हो गयी हो ''गुरोः पुनरस्य अनुरूप वर प्रदाने संकल्पः'' प्रथमांकगत इस कथन के अनुसार स्वयं काश्यप मुनि दुष्यन्त से शकुन्तला का विवाह करना चाहते थे। यह वन ज्योत्स्ना लता भी अपने अनुरूप पति आम्र वृक्ष से मिल गयी है, अर्थात् इसने भी अपने अनुरूप पति को प्राप्त कर लिया है, अतः अब मैं तुम दोनों के विवाह कार्य से निश्चिंत हो गया हूँ।

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिदीनां तैलं न्यधिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥

शकुन्तला के यह पूछने पर कि कौन मेरे वस्त्र को खींच रहा है, काश्यप मुनि कहते हैं कि यह तुम्हारा पुत्रवत माना गया वही मृग तुम्हारे मार्ग को अब नहीं छोड़ रहा है और तुम्हारे वस्त्र को खींच कर तुम्हें वापिस लौटना चाहता है, जिसके कुशाग्र भाग से छिदे हुए मुख पर तुम घाव भरने वाले हिंगोट के तेल को लगाया करती थी तथा

जिसे तुमने श्यामाक धान्य की मुट्ठियों से पाला था, अब उसी मातृ के कारण यह तुम्हें नहीं छोड़ रहा है।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै-र्नवाम्बुभि:दूरविलम्विनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

परोपकारी जन स्वतः ही विनयशील होते हैं, किसी प्रकार के प्रदर्शन के लिए अथवा किसी भी प्रकार दबाव में आकर वे विनम्रता नहीं दिखाते, उनमें विनयशीलता एक स्वाभाविक गुण ही होता है, सज्जन अत्यधिक समृद्धि पाकर भी विनीत बने रहते हैं, मेघ जब नव जल से पूर्ण होते हैं तब वे स्वतः ही नीचे पृथ्वी पर लटक आते हैं, इसीप्रकार वृक्ष भी फल आने पर झुक जाते हैं।

अतः वास्तव में वेद, पुराण, साहित्य, आदि ग्रंथो में मानव कल्याण हेतु अनेकों सूत्रों को पिरोया गया है जहाँ ऋषि, मुनि आदि इन ग्रंथों के माध्यम से बहुलता से समन्वय किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य में अनेकों ग्रंथों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है जहाँ पर मानव और प्रकृति के बीच पर्यावरण का बहुत ही उपयोगिता है।

उपसंहार:-

इस शोध पत्र में अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक पर्यावरणीय अध्ययन से सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख विशेषकर मानव और प्रकृति के प्रगाढ़ सम्बन्धों को प्रस्तुत करने वाले उदाहारणों के अंशों को ही निबद्ध किया गया है। महाकवि कालिदास ने उक्त नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में एक ओर प्रकृति चित्रण वन के पशु, पक्षियों, नदी, तालाब, पेड़, पौधे, पर्वत, पहाड़, झरना, बादल, जल आदि के द्वारा मानव कल्याण तथा प्रकृति प्रेम को दर्शाया है, वहीं पर्यावरण के प्रति मानव की क्या-क्या जिम्मेदारियाँ हैं उन्हें बखूबी निभाने के लिए प्रेरित किया है। जैसे शकुन्तला के पति गृह जाने के समय वन के

मृग, मयूर, पेड़ पौधे अपना प्रेम लुटाते हैं वहीं शकुन्तला के जाने के विरह में भी दुखी हैं। जैसे शकुन्तला जबतक पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों को जबतक पानी नहीं पिला देती तबतक वह खुद नहीं कुछ खाती-पीती है, वृक्षों की वल्लरी और लताएँ , पुष्प आदि सुन्दर होते हुए उसको रुचिकर लगते हैं लेकिन वह उन्हें नहीं तोड़ती है।

ठीक उसीप्रकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी मानव कल्याण हेतु पर्यावरण को अपनाना होगा जिससे हमारा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का कल्याण होगा।

अतः मानव को प्रकृति से प्रेम के लिए अग्रसर होना होगा तभी हम सभी एक अच्छा पर्यावरण और वातावरण प्राप्त कर पायेंगे। अभिज्ञानशाकुन्तल में पर्यावरणीय प्रसंगों के अध्ययन इस शोधपत्र में प्रधानत: मानव और प्रकृति के मध्य सहअस्तित्व, सहयोग व प्रेम को स्पष्ट देखते हुए पर्यावरण की वर्तमान समस्या को दूर किया जा सकता है। वास्तव में हमारे साहित्य और धर्मग्रन्थ हमें प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित करने का एक अनूठा उपाय बताते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. अथर्ववेद, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ. वसुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, मथुरा
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, बाबूराम त्रिपाठी, आगरा
5. मेघदूतम्, तरणीश झा
6. ऋतुसंहार, शिव प्रसाद द्विवेदी
7. मेघदूतम्, डॉ. दया शंकर शास्त्री
8. मेघदूतम्, डॉ. बलवान सिंह यादव
9. ऋतुसंहार, मूलचन्द्र पाठक

Green Verses: Ecocritical Discourses in Indian English Poetry

Prof. (Dr.) Rajeev Yadav
Professor, Department of English,
Netaji Subhash Chandra Bose Government Girls PG College,
Aliganj, Lucknow

Abstract:

This paper examines Indian English poetry as a significant site of ecocritical discourse, foregrounding how poets respond imaginatively and ethically to environmental change in postcolonial India. Written against the backdrop of rapid industrialization, urban expansion, and ecological displacement, Indian English poetry moves beyond elegiac representations of nature to interrogate the cultural, spiritual, and political dimensions of environmental degradation. Through close readings of select poems by Nissim Ezekiel, A. K. Ramanujan, Keki N. Daruwalla, Mamang Dai, and Meena Alexander, the study explores how ecological consciousness is articulated through metaphorical landscapes, formal experimentation, mythic memory, and gendered perspectives.

The paper argues that these poets construct an eco-poetic vision that challenges anthropocentric paradigms and exposes the entanglement of ecological loss with questions of identity, displacement, and social justice. Sacred groves, rivers, forests, and urban ruins emerge as symbolic terrains where indigenousecological ethics confront modern developmentalist ideologies. Drawing on theoretical frameworks of ecocriticism, ecofeminism, and postcolonial environmental thought, the study situates Indian English poetry within a broader discourse of environmental justice, emphasizing literature's role in fostering ecological awareness and ethical responsibility. Ultimately, the paper demonstrates that Indian English poetry functions not merely as a reflection of environmental crisis but as a critical intervention that reimagines human–nature relationships in an era of ecological precarity.

Keywords: Ecocriticism; Indian English Poetry; Environmental Justice; Postcolonial Ecology; Ecofeminism; Sacred Landscapes; Urbanization; Ecopoetics; Human–Nature Relationship

Introduction: Ecocriticism in the Indian Context

Ecocriticism—a literary approach that examines literature's engagement with the physical environment—has gained traction across global literary studies. Defined by Cheryll Glotfelty as "the study of the relationship between literature and the physical environment," ecocriticism prompts readers to question how texts encode environmental values and anxieties (Glotfelty xviii). In India, this approach acquires distinct urgency and nuance: the country's long-standing spiritual traditions, indigenous ecological knowledge systems, and contemporary struggles with industrial capitalism and climate stress create a layered context for eco-poetic expression.

Indian English poetry has often been marginal in environmental literary discourse, overshadowed by Anglophone nature writing in Western traditions. Yet poets working in English from the Indian subcontinent offer rich and varied engagements with ecological themes. Their work reflects not only nature's aesthetic appeal but also the political, cultural, and ethical crises associated with its degradation. This paper examines how Indian English poets register ecological ruptures through metaphoric structures, formal innovation, mythic allusion, and intersectional concerns, thus contributing to an emergent ecocritical poetics rooted in the subcontinent's distinct histories and geographies.

Sacred Ecologies and Indigenous Imagination

The ecological imagination in Indian poetry often begins with the notion of sacred landscapes—forests, rivers, hills—that embody cultural memory and spiritual vitality. Sacred groves, for instance, represent deep ecological custodianship rooted in prehistoric and tribal traditions. They function as living archives of community identity, biodiversity conservation, and spiritual practice. Mamang Dai and A.K. Ramanujan try to explore sacred ecologies through their indigenous imagination with different perspectives. Mamang Dai seeks a divine living presence in the Nature while A.K. Ramanujan frequently juxtaposes historical consciousness with ecological sensibility.

Mamang Dai: Nature as Living Presence

In the poetry of Mamang Dai, nature emerges not as a passive backdrop but as an active, sentient presence. Her verse fuses

indigenous cosmologies with ecological consciousness. In River Poems, Dai writes:

"In the forest,
even the silence breathes." (Dai 32)

The personification of silence as "breathing" disrupts conventional subject-object binaries, presenting nature as animate and relational. This animistic sensibility reflects indigenous ecological ethics, where land is inseparable from community practices, belief systems, and collective memory. Instead of a nature to be dominated, the forest is a co-participant in cultural life. Scholars of indigenous environmental literature emphasize such reciprocal worldviews. For example, Anjana Sharma notes that Dai's poetry "articulates an eco-cultural resistance to the homogenizing effects of globalization and environmental exploitation, restoring sacred landscapes as sites of survival and identity" (Sharma 211). Dai's imagery resists depictions of nature as passive or ornamental, positioning it instead as an ethical agent whose desecration constitutes cultural loss.

A.K. Ramanujan: History, Myth, and River Memory

A.K. Ramanujan's poetry frequently juxtaposes historical consciousness with ecological sensibility. In "A River," he critiques how contemporary poets romanticize environmental catastrophe rather than engage with lived ecological conditions:

"The new poets still write only of the floods." (Ramanujan 25)

By emphasizing the fixation on flood imagery, Ramanujan reveals a deeper cultural amnesia: society memorializes dramatic natural events while ignoring ongoing environmental suffering. This critique reflects what Rob Nixon terms "slow violence"—the gradual, often unnoticed destruction of ecosystems and communities that unfolds invisibly over time (Nixon 2). Ramanujan's verse thereby positions environmental degradation as not only physical destruction but also cultural erasure.

Urbanity and the Erosion of Ecological Sensibility

While indigenous landscapes offer a sacred ecology, modern urban environments often represent ecological rupture, disconnection, and moral decay. Indian English poets who dwell in metropolitan spaces frequently capture the alienation intrinsic

to urban life. Nissim Ezekiel and Keki N. Daruwala makes effort to show urban ambiance and imbalance ecologies.

Nissim Ezekiel: Irony and Urban Desolation

Nissim Ezekiel, a pivotal figure in modern Indian English poetry, often contrasts urban sterility with lost ecological rhythms. In Urban, he writes:

"The hills are not what they were, they die slowly." (Ezekiel 53)

Here, hills do not evoke Romantic sublimity but limp toward decay. Ezekiel's tone, marked by irony and detachment, mirrors the estrangement of city dwellers from the living landscape. The city becomes a place where ecological memory fades and the sensory richness of nature is replaced by monotonous routines and environmental insensitivity. The urban environment, in Ezekiel's representation, thus embodies not only physical decay but spiritual emptiness. His stark imagery critiques the technological and bureaucratic modernity that severs humans from sensory and spiritual engagement with nature.

Keki N. Daruwalla: Nature's Fury and Ethical Chaos

Keki N. Daruwalla's poetry often merges natural imagery with mythic force and socio-political critique. In The Ghaghra in Spate, the river becomes almost vengeful:

"The river… eats into the roots of houses." (Daruwalla 88)

The river's destructive power destabilizes the anthropocentric assumption of human control over nature. Daruwalla's terrain is violent, elemental, and unpredictable, signaling not just environmental chaos but ethical crisis. His work reflects what Lawrence Buell describes as "toxic consciousness," an awareness of environmental harm that implicates cultural values, economic priorities, and political failures (Buell 35).

By mobilizing mythic and elemental registers, Daruwalla reframes nature not as static scenery but as an active force that exacts consequences for human hubris. The river's wrath becomes an embodied critique of exploitative technologies, state indifference, and the moral bankruptcy of progress defined solely in economic terms.

Ecofeminist Perspectives: Nature and Gendered Bodies

Ecofeminism explores how patriarchal domination of women parallels the exploitation of nature. Indian English poetry often enacts this parallel, linking ecological loss with gendered

vulnerability. Meena Alexander in her poetry mixes gender issues with ecological issues.

Meena Alexander: Gender, Exile, and Environmental Absence

Meena Alexander's poetry intertwines gendered subjectivity with ecological absence. In House of a Thousand Doors, she declares:

"There are no trees, no leaves to fall
only walls I cannot scale." (Alexander 104)

The absence of trees symbolizes ecological desolation; the enclosing walls resonate with psychological and gendered confinement. Alexander's urban landscapes become zones of alienation where both nature and women's agency are circumscribed by structures of power. Critics have noted that Alexander's work "represents the ecological and corporeal as co-constitutive sites of memory and loss," revealing how environmental degradation and gendered identities are intersectingly dispossessed in postcolonial contexts (Paranjape 172). Her verse presents a world where the rupture of the natural world parallels fragmentation of self, culture, and belonging.

Ecofeminism and Indian Ecological Poetics

The ecofeminist thread in Indian English poetry resists romanticization of nature. Instead, poets like Alexander align ecological desolation with social inequalities, colonial histories, and patriarchal violence. As Vandana Shiva argues, the domination of women and nature emerges from the same systems of control embedded in colonial modernity and capitalist exploitation (Shiva 86). Indian ecofeminist poetics thus becomes a vehicle for critiquing structures that oppress both the environment and marginalized bodies.

Postcolonial Eco-Consciousness

Indian English poetry is deeply shaped by the legacies of colonial ecological restructuring—deforestation, commodification of land, infrastructural mega-projects, and displacement. Postcolonial ecocriticism must acknowledge how environmental injustice is entangled with historical processes of power and dispossession. Rob Nixon's concept of "slow violence" highlights the gradual, overlooked nature of many ecological harms. Rather than sudden catastrophes, environmental degradation often unfolds over years, inflicting

deep social and psychological damage that remains invisible. Indian English poets register this slow violence through metaphors of erosion, forgetting, and decay. Ramanujan's river imagery, Ezekiel's dying hills, and Daruwalla's engulfing rivers dramatize histories of ecological loss that are not spectacular but cumulative—affecting water security, forests, and cultural memory alike.

This emerging tradition of Indian ecopoetics resists both colonial narratives of conquest and neoliberal ideologies of development. It highlights how ecological destruction disproportionately affects the poor and indigenous populations, aligning with Nixon's observation that environmental harm often intersects with social injustice. Poets thus become cultural witnesses, not merely aesthetic observers. Their work challenges dominant paradigms that equate modernization with progress and instead insists on remembering displaced ecologies and disrupted lifeworlds.

Metaphor, Form, and Ecological Imagination

The formal structures of Indian English poetry—metaphor, fragmentation, narrative layering—play a crucial role in articulating ecological consciousness. Metaphor enables poets to connect ecological phenomena with emotional, cultural, and historical meanings. Daruwalla's rivers are more than hydrological features; they embody ancestral memory and social upheaval. Dai's breathing silence invokes sacred reciprocity between humans and forests. Ramanujan's river becomes a symbol of selective memory. Through metaphor, these poems render ecological loss palpable and ethically urgent. Sacred ecologies often appear in lyrical, meditative forms that evoke continuity and balance. In contrast, depictions of urban and industrial landscapes frequently employ fragmentation, syntactic rupture, and irony—formal strategies that mimic ecological disruption and psychological dislocation. Ezekiel's terse couplets and Daruwalla's mythic registers reflect divergent formal responses to ecological themes.

Towards a Poetics of Environmental Justice

Indian English poetry refuses to reduce ecological concern to pastoral nostalgia. Instead, it constructs a poetics of environmental justice—one that foregrounds ethical

responsibility, cultural memory, and resistance to systems that commodify land, labor, and life. These poets highlight that ecological degradation is inseparable from cultural displacement, economic inequity, and historical violence. Ursula Heise's notion of an "eco-cosmopolitan" literary imagination, which connects local environmental narratives to global ethical frameworks, is instructive here. Indian ecopoetics locates local ecologies within broader planetary concerns while retaining cultural specificity (Heise 10). Through their verse, poets imagine interconnections among landscapes, bodies, and histories—challenging readers to perceive ecological crisis as a shared but differentiated human condition.

Conclusion

Indian English poetry, read through an ecocritical lens, reveals a vibrant and politically engaged engagement with environmental themes. Whether through the sacred forests of Mamang Dai, the urban alienation of Nissim Ezekiel, the mythic rivers of Keki Daruwalla, the critical memory of A.K. Ramanujan, or the gendered ecologies of Meena Alexander, these poets articulate a nuanced ecological consciousness that is cultural, ethical, and urgent. Their work does more than lament ecological destruction—it critiques the power structures that perpetuate it, challenges dominant narratives of progress, and reimagines human-nature relationships in ways that affirm justice, memory, and interdependence. Indian ecopoetics thus contributes to a global discourse of environmental justice, rooted in local histories yet resonating with planetary urgency.

Works Cited

- Alaimo, Stacy. Bodily Natures: Science, Environment, and the Material Self. Indiana University Press, 2010.
- Alexander, Meena. Illiterate Heart. Northwestern University Press, 2002.
- ———. The Shock of Arrival: Reflections on Postcolonial Experience. South End Press, 1996.
- Buell, Lawrence. The Environmental Imagination: Thoreau, Nature Writing, and the Formation of American Culture. Harvard University Press, 1995.
- ———. Writing for an Endangered World: Literature, Culture, and Environment in the U.S. and Beyond. Harvard University Press, 2001.

- Dai, Mamang. River Poems. Writers Workshop, 2004.
- ———. The Balm of Time. Penguin Books India, 2017.
- Daruwalla, Keki N. Collected Poems: 1970–2005. Penguin Books, 2006.
- Datta, Amaresh. "Ecology and Ethnicity in North-East Indian Writing." Indian Literature, vol. 45, no. 4, 2001, pp. 42–56.
- DeLoughrey, Elizabeth, and George B. Handley, editors. Postcolonial Ecologies: Literatures of the Environment. Oxford University Press, 2011.
- Ezekiel, Nissim. Collected Poems: 1952–1988. Oxford University Press, 2005.
- Gaard, Greta. Critical Ecofeminism. Lexington Books, 2017.
- Gaard, Greta, and Patrick D. Murphy, editors. Ecofeminist Literary Criticism: Theory, Interpretation, Pedagogy. University of Illinois Press, 1998.
- Glotfelty, Cheryll. "Introduction: Literary Studies in an Age of Environmental Crisis." The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology, edited by Cheryll Glotfelty and Harold Fromm, University of Georgia Press, 1996, pp. xv–xxxvii.
- Heise, Ursula K. Sense of Place and Sense of Planet: The Environmental Imagination of the Global. Oxford University Press, 2008.
- Huggan, Graham, and Helen Tiffin. Postcolonial Ecocriticism: Literature, Animals, Environment. Routledge, 2010.
- Morton, Timothy. Ecology Without Nature: Rethinking Environmental Aesthetics. Harvard University Press, 2007.
- ———. The Ecological Thought. Harvard University Press, 2010.
- Mukherjee, Upamanyu Pablo. Postcolonial Environments: Nature, Culture and the Contemporary Indian Novel in English. Palgrave Macmillan, 2010.
- Nixon, Rob. Slow Violence and the Environmentalism of the Poor. Harvard University Press, 2011.
- Paranjape, Makarand. Making India: Colonialism, National Culture, and the Afterlife of Indian English Authority. Springer, 2012.
- Ramanujan, A. K. The Collected Poems of A. K. Ramanujan. Oxford University Press, 1995.
- ———. "Is There an Indian Way of Thinking?" Contributions to Indian Sociology, vol. 23, no. 1, 1989, pp. 41–58.
- Sharma, Anjana. "Indigenous Geographies and Poetics of Resistance: Reading Mamang Dai." Postcolonial Ecologies,

edited by Elizabeth DeLoughrey and George B. Handley, Oxford University Press, 2011, pp. 206–221.

- Shiva, Vandana. Staying Alive: Women, Ecology and Development. Zed Books, 1989.
- ———. Earth Democracy: Justice, Sustainability, and Peace. South End Press, 2005.
- Slowik, Michael. "Urban Modernity and Environmental Loss in Nissim Ezekiel." Journal of Indian Writing in English, vol. 39, no. 2, 2011, pp. 67–79.

Role of *vāyu* (the air), *jala* (the water), *deśa* (the land) and *kāla* (the time or seasons) in development and management of epidemics as per *Carakasaṃhitā* - A narrative review

Dr. Pallavi Dattatray Nikam,
Associate Professor and Head of Department of
Basic Principles of *Aayurveda*,
Ayurved Seva Sangh's Ayurved Mahavidyalaya, Nashik

Abstract:

Epidemics have challenged human societies across millennia. Carakasaṃhitā, the classical text of āyurveda identifies epidemics by the concept of janapadoddhvaṃsa (destruction of communities) long before the modern scholars described it. As per Carakasaṃhitā, the epidemics arise from the simultaneous vitiation of common environmental factors: vāyu (the air), jala / udaka (the water), deśa (the land) and kāla (the time or seasons). This narrative review explores how these four factors are conceptualized in Carakasaṃhitā, what is their role in epidemic development, and discusses measures for prevention and management in the epidemic context. The aim is to clarify the Ayurvedic epidemiological paradigm and highlight its relevance for modern understanding of outbreaks. The discussion highlights the relevance of these concepts in contemporary public-health and environmental contexts.

Keywords: *Carakasaṃhitā*, *janapadoddhvaṃsa*, air, water, land, time, seasons, epidemic, *āyurveda*

1. Introduction:

Carakasaṃhitā is one of the chief treatises of *āyurveda* which deals mainly with *kāyacikitsā* (medicine) branch of Indian system of traditional medicine. In the third chapter of *Vimāna sthāna* (a section*)* of *Carakasaṃhitā*, there is detailed description of epidemics which develop due to vitiation of or abnormalities in *vāyu* (the air), *jala*/ *udaka* (the water), *deśa* (the land) and *kāla* (the time or seasons) along with their treatment and management in general. This chapter is structured as a didactic dialogue between *ācārya* (the teacher) *Ātreya* and his disciple *Āgniveśa*. It

adopts a question-and-answer format characteristic of numerous sections within the *Carakasaṃhitā*, reflecting the traditional pedagogical method of knowledge transmission in classical literature of *āyurveda*.

In previous chapters of *Vimāna sthāna*, *Caraka* has describe dietary causes of diseases whose consumption varies in every individual. Therefore chances, intensity, and presentation of disease developed because of them also varies in every individual. After that in the third chapter of *Vimāna sthāna Caraka* has described epidemics which develop simultaneously in every individual of specific population due to some common vitiated factors. *Cakrapāṇi*[1] the commentator of *Carakasaṃhitā* explains that it is not necessary that all disease should develop due to improper/abnormal diet and behavioral regimen; some diseases develop due to another factors. He explains that *hetu*s (etiological factors) are of two types- *sādhāraṇa* (common) and *asādhāraṇa* (specific). He included these four- *vāyu* (the air), *udaka* (the water), *deśa* (the land) and *kāla* (the time or seasons) in common etiological factors which cause disease at a same time in whole population with similar sign-symptoms.

2. The Concept of *janapadoddhvaṃsa* in *Carakasaṃhitā*:

In *Carakasaṃhitā*[2], *ācārya Ātreya* is described as observing, during a walk along the banks of the river *Gaṅgā*, *vaikārika* (unusual or abnormal) changes in natural and cosmic phenomena. These include disturbances in the *nakṣatras* (constellations), *grahagaṇa* (planets), *candra* (moon), *sūrya* (sun), *vāyu* (air), *agni* (fiery elements), and *diśas* (directions or

References:

[1] *Agniveśa, Caraka, Cakrapāṇidatta. Carakasaṁhitā* with *Āyurvedadīpikā* Commentary. Yādavajī TA, editor. Vārāṇasī: *Chaukhambā Surabhāratī Prakāśana*; 2013. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 240-245. Verse 1, p. 240.

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary -Vol 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 3,4, p. 567.

surrounding environment). *Ātreya* interprets these anomalies as indicators of environmental imbalance, suggesting that such disturbances can diminish the inherent *rasa*, *vīrya*, *vipāka*, *prabhāva* (potency) of medicinal plants. This decline, in turn, reduces their therapeutic value. To safeguard against this, he instructs his disciples to collect and preserve medicinal herbs before these environmental disruptions occur—before the soil and vegetation lose their natural strength—so that these medicines remain effective during outbreaks or epidemics.

The chapter further presents an early conceptual model of epidemic causation, explaining that when shared environmental determinants such as *vāyu* (air), *jala* (water), *deśa* (land), and *kāla* (time or season) become vitiated, large-scale illness and the decline of entire *janapada* (communities) may follow. *Ācārya Caraka*[1] emphasizes that such collective diseases arise even when individuals vary in *prakṛti* (constitution), diet, age, or physical strength, highlighting the role of environmental rather than personal factors. *Deśa* as the physical terrain, its soil, vegetation, climate, and human settlements. Together, these insights reflect an integrative ecological perspective in classical *āyurveda*- recognizing that human health is deeply interconnected with environmental stability and cosmic balance, a view that parallels modern ecological and public health frameworks.

3. Role of the Four Environmental Factors:

3.1. *Vāyu* (air)-

In the *Carakasaṃhitā*, *vāyu* (air) is recognized as one of four primary environmental factors whose vitiation contributes to *janapadoddhvaṃsa* (epidemic). *Caraka*[2] describes vitiated or

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary- Vol 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 6, p. 568.

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006.

disturbed *vāyu* as 'excessively still or turbulent, extremely cold, hot, dry, or sticky, blowing contrary to the season [becoming unseasonal], and contaminated with foul smell, moisture, sand, or smoke.' Given that air is a shared element, its derangement can affect entire populations simultaneously.

From an Ayurvedic epidemiological perspective, such deranged air promotes the dissemination of disease and the vitiation of doshas at a community level. In epidemic contexts, vitiated air represents a critical environmental determinant.

3.2. *Jala* (water)-

Jala (water) is second factor out of the four principal environmental determinants whose vitiation contributes to *janapadoddhvaṃsa* (epidemic). Vitiated *jala*, as described in *Carakasaṃhitā*,[1] , may exhibit abnormalities in odor, color, or taste; possess excessive *kleda* (viscosity (viscosity); lack presence of aquatic birds; support reduced aquatic fauna; or exist in dried or polluted reservoirs. These characteristics indicate that compromise in water quality or aquatic ecological balance facilitates the propagation of disease within populations. The text underscores that such contaminated or improperly managed water within a habitat can precipitate widespread disease. He further observes that vitiation of *jala* is more challenging to prevent than that of *vāyu* (air), and if unmitigated, contributes to extensive affliction.

Caraka's perspective aligns with contemporary understanding of water-borne disease outbreaks, contamination of water bodies, and ecological disruptions that enhance vector-mediated or water-borne transmission.

3.3. *Deśa* (land)-

Vimānasthāna, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 7, p. 568.

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3- *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 7, p. 568.

Deśa refers to a geographical region encompassing its terrain, soil composition, climatic conditions, spatial organization of habitations, population density, and environmental attributes. When these conditions become unfavourable—due to factors like land degradation, overcrowding, or poor sanitation—disease may spread widely across the population. Within the *Carakasaṃhitā*[1], *deśa* is conceptualized as a fundamental determinant of health, wherein adverse regional conditions—such as altered land use, overcrowding, or unsanitary environments—predispose populations to widespread disease. *Caraka*[2] describes a *vitiated deśa* (land or region) as one where the soil's colour, smell, taste, or texture becomes abnormal; the terrain is overly moist and infested with serpents, wild animals, locusts, mosquitoes, flies, rodents, owls, jackals, and other creatures; vegetation grows excessively (specifically *ulupa* grass), and the atmosphere of this area is disturbed by wind, smoke, or dust; often accompanied by distress calls from birds and dogs, and erratic behavior among animal groups indicative of environmental stress or fear. In these settings, social and moral deterioration is also evident-virtues such as faith, truthfulness, modesty, and ethical conduct decline or disappear. Water bodies exhibit irregular fluctuations, including frequent overflow or contamination, while natural disasters such as meteorite falls, lightning strikes, and earthquakes occur more often. The environment itself becomes ominous, filled with disturbing sounds and sights. Celestial bodies like the sun, moon, and stars are frequently obscured by dry, reddish-grey clouds, creating a pervasive atmosphere of confusion, agitation,

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol 2. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Kalpasthāna*, Chapter 1- *Madanaphalakalapa*. p. 806-815. Verse 8, p. 807-808.

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 7, p. 569.

mourning, fear, and darkness- evoking a sense of being overshadowed by malevolent or chaotic forces.

The concept of *deśa* thus integrates elements of medical geography, ecology, and environmental health. *Deśa* a critical determinant in both the causation and treatment of disease.

In contemporary epidemiological terms, this aligns with the study of geographic and environmental factors- such as vector habitats, soil and wetland conditions, urban-rural variations, and ecological disturbances-that influence disease distribution.

3.4. *Kāla* (time or season)

Kāla (time or season) is the fourth but prime fundamental factors influencing health and disease. The *Carakasaṃhitā*,[1] highlights that disturbances in seasonal rhythms- such as untimely rainfall, delayed or premature monsoons, and extreme temperature fluctuations- can disrupt the equilibrium of environmental and bodily factors. Celestial and terrestrial imbalances lead to a decline in the natural potency of herbs and other life-sustaining elements, ultimately fostering disease and predisposing populations to epidemics. *Caraka* and commentator *Cakrapāṇidatta*,[2] regard *kāla* as the most critical among the environmental determinants- *deśa* (place), *jala* (water), and *vāyu* (air)- in precipitating pathological change.

In contemporary terms, this perspective aligns with the understanding of seasonality in infectious diseases, the health impacts of climate variability, and the interplay between time, pathogen dynamics, and host susceptibility.

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 7, p. 569.

[2] *Agniveśa, Caraka, Cakrapāṇidatta. Carakasaṁhitā* with *Āyurvedadīpikā* Commentary. Yādavajī TA, editor. Vārāṇasī: *Chaukhambā Surabhāratī Prakāśana*; 2013. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 240-247. Verse 10, p. 241.

4. Pathogenesis of Epidemics According to *Carakasaṃhitā*:

As mentioned earlier, according to *Carakasaṃhitā* the, the pathogenesis of *janapadodhwamsa* (epidemics) is attributed to the simultaneous vitiation of four universal environmental determinants- *vāyu* (air), *jala* (water), *deśa* (habitat), and *kāla* (season or time). When these factors become disturbed, they create an unfavorable milieu that affects large populations collectively, irrespective of individual variations in *prakṛti* (constitution), *āyu* (age), *bala* (strength), or *āhāra* (diet), owing to the commonality of the causative influences. The fundamental etiological factor called *mūla-hetu* underlying this disturbance is described as *adharma* (unrighteous conduct) or *prajñā-aparādha* (intellectual error), signifying moral and cognitive deviations within society that lead to ecological and physiological disharmony.[1] Unrighteous behavior is the main cause of destruction through war, violence, and divine retribution. People driven by greed, anger, and attachment, or who exploit the weak, create conflict and bring harm upon themselves and others. Likewise, neglecting moral or religious duties and showing disrespect toward elders, teachers, or sages can invite curses and punishments, leading to the downfall of individuals or entire communities, either immediately or in due time.[2]

From an Ayurvedic perspective, therefore, epidemic emergence is viewed as a multifactorial process encompassing not only biological agents but also environmental, temporal, and socio-ethical dimensions.

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 20, p. 571.

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 21-23, p. 571.

5. Management and Preventive Strategies for *janapadoddhvaṃsa* (epidemics) in *Carakasaṃhitā*:

Carakasaṃhitā provides a comprehensive framework for the prevention and management of epidemics, integrating environmental, community, and individual-level interventions. The text emphasizes both prophylactic and therapeutic measures, encompassing *śodhana* (purificatory) procedures**,** *śamana* (palliative) or *bṛṃhaṇa* (nourishing) measures**,** and *rasāyana* (rejuvenation) therapy**.**

Preventive strategies as the prior collection and judicious administration of *bhaiṣajya* (medicinal herbs) possessing appropriate *rasa*, *vīrya*, and *vipāka* to strengthen community resilience and mitigate the potential impact of widespread disease.[1]

1. Environmental and Community Interventions

Carakasaṃhitā[2] underscores the significance of maintaining ecological and public health parameters to prevent the onset and spread of epidemics as follows:

- **Avoidance of vitiated regions:** Individuals are advised to refrain from residing in areas characterized by environmental contamination or derangement; relocation is recommended when feasible.
- **Sanitation and hygiene:** Proper management of *vāyu* (air), *jala* (water), and *deśa* (overall environmental conditions within a locality) is emphasized to reduce

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 4, p. 567

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 10-13, p. 569-570.

epidemic susceptibility. This can be done by avoiding *adharma* of all forms mentioned erlier.

- **Surveillance of early indicators:** Monitoring the emergence of *pūrvā rūpa* (early disease manifestations) at the community level facilitates timely intervention.
- **Seasonal and lifestyle regulation:** Observance of *ṛtu-viśeṣa* (seasonal routines) and appropriate *āhāra-vihāra* (dietary and behavioral practices) aligned with *kāla* (temporal) and *deśa* (spatial) factors is advocated to enhance resilience.
- **Community ethics and conduct:** *Sad-vṛtti* (moral and societal observances) contribute to collective resistance and mitigation of epidemic risk.

2. Individual Preventive Measures[1]

- **Pre-epidemic preparation:** Collection and preservation of medicinal herbs prior to the manifestation of epidemic signs are recommended to ensure readiness.
- **Maintaining only good, favourable interpersonal contact:** Association with the righteous, the well-disposed and those who are approved by the elders.
- **Enhancement of host immunity:** *Rasāyana* (rejuvenation) therapies, *pañcakarma* (purification procedures), and adherence to appropriate dietary and lifestyle practices serve to augment *vyādhikṣamatva* (immunological resilience).

3. Therapeutic Interventions During Epidemic[2]

- **Individualized treatment selection:** *Śodhana* (purificatory interventions) are advised if patient

---

[1] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 12-13, p. 570.

[2] *Agniveśa, Caraka*, *Śuklā V*, *Tripāṭhī R. Carakasaṁhitā* with *Vaidyamanoramā Hindī* Commentary-Vol. 1. Śuklā V, *Tripāṭhī R,* editors. *Delhī*: *Chaukhambā Saṃskṛta Prakāśana*; 2006. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 567-579. Verse 12-13, p. 570.

strength permits; otherwise, *bṛṃhaṇa* (nourishing) or *śamana* (palliative) therapies are recommended.

- **Considerations for mass affliction:** During widespread epidemic events, therapeutic strategies must be carefully tailored to minimize the risk of iatrogenic complications.
- **Rejuvenation and post-epidemic recovery:** *Rasāyana* (rejuvenation) therapy, combined with regulated diet, lifestyle practices, and ethical conduct, is recommended to facilitate recovery and bolster long-term immunity.

Cakrapāṇidatta,[1] in his commentary emphasize that its harmful effects may be mitigated by relocation to a clean, uncontaminated environment. Conceptually, these descriptions align with contemporary understandings of air pollution, alterations in wind patterns, and aerosol-mediated pathogen transmission. Modern reviews have highlighted these correlations, reinforcing the relevance of classical Ayurvedic observations to the environmental and airborne determinants of epidemics.

6. Discussion:

The doctrine of *vāyu* (air), *jala* (water), *deśa* (habitat), and *kāla* (season or time) in the *Carakasaṃhitā* demonstrates striking conceptual parallels with principles of modern environmental epidemiology. These classical determinants correspond to contemporary concerns with air pollution, water quality, ecological context, and seasonal or climatic variation—all recognized as critical factors influencing the distribution and transmission of infectious diseases. For instance, vector-borne diseases exhibit clear *deśa–kāla* specificity, while airborne and waterborne outbreaks align closely with *vāyu* and *jala* respectively. *Caraka* identified climatic conditions, air pollution, water contamination, and ecological imbalance as the principal

[1] *Agniveśa, Caraka, Cakrapāṇidatta. Carakasaṁhitā* with *Āyurvedadīpikā* Commentary. Yādavajī TA, editor. Vārāṇasī: *Chaukhambā Surabhāratī Prakāśana*; 2013. *Vimānasthāna*, Chapter 3 – *Janapadoddhvaṃsanīya*. p. 240-247. Verse 9-11, p. 241.

generative factors of epidemic disease, resonating with the modern agent-host-environment triad.[1,2]

The *Carakasaṃhitā* emphasis on preventive strategies- such as the pre-emptive collection of medicinal herbs, environmental stewardship, and community-level health maintenance- also mirrors contemporary approaches to early warning systems, environmental surveillance, and public health preparedness.[3,4]

Nevertheless, certain epistemological and methodological differences remain evident. The framework of *āyurveda* does not employ the modern taxonomies of "virus," "bacterium," or "vector," nor does it encompass quantitative modeling or microbiological specificity. Instead, it interprets epidemic causation through broader ethical and metaphysical categories such as *adharma* (moral disorder) and *prajñā aparādha*

---

[1] Kadam SS. Understanding environmental pollution: types, effects, and solutions. World J Pharm Res. [Internet]. 2023 [cited 2025 Nov 05];12(8). Available from: https://www.wisdomlib.org/science/journal/world-journal-of-pharmaceutical-research/d/doc1386093.html

[2] Munzel T, Hahad O, Daiber A, Landrigan PJ. Soil and water pollution and human health: what should cardiologists worry about? Cardiovascular Research. 2022;119(2):440-449.

[33] World Health Organization. "2.2 Epidemics and pandemics prevented" in WHO results report: 2020 mid-term review. Geneva: WHO; 2021. Available from: https://www.who.int/about/accountability/results/who-results-report-2020-mtr/outcome/2020/2.2-epidemics-and-pandemics-prevented-results-report-achievements [Accessed 2025 Nov 05].

[4] Kamalrathne T, Amaratunga D, Haigh R, Kodituwakku L. Need for effective detection and early warnings for epidemic and pandemic preparedness planning in the context of multi-hazards: Lessons from the COVID-19 pandemic. Int J Disaster Risk Reduct. 2023;92:103724.

(cognitive or behavioral error), which integrate social, moral, and environmental dimensions of health. This synthesis of ethical governance and ecological awareness underscores the holistic orientation of *āyurveda*- offering a complementary worldview that situates public health within an interdependent moral- ecological framework rather than a purely biomedical paradigm.

Conclusion:

The *Carakasaṃhitā*, delineates a classical paradigm for epidemic diseases grounded in the perturbation of four shared environmental and temporal factors: *vāyu* (air), *jala* (water), *deśa* (habitat), and *kāla* (season or time). Identification of disturbances in these factors provides a dual framework of etiological understanding and preventive-therapeutic intervention, encompassing environmental regulation, seasonal regimens, social conduct, and host fortification. *Carakasaṃhitā* establishes a multidimensional approach to epidemic management, integrating macro-environmental considerations with individualized clinical care. In the face of contemporary and emerging epidemics, these classical insights may offer valuable complementary perspectives to inform modern public health strategies and preventive medicine.

❑❑❑

वैश्विक-संस्कृत-मञ्च

Global Sanskrit Forum

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com
Webiste : https://globalsanskritforum.org

ISBN 935655509-5
9789356555099